यौगिक सूक्ष्म व्यायाम
धीरेन्द्र ब्रह्मचारी

यौगिक सूक्ष्म व्यायाम

प्रथम पुष्प

लेखक
धीरेन्द्र ब्रह्मचारी

धीरेन्द्र योग प्रकाशन

प्राप्ति-स्थान

विश्वायतन योगाश्रम

पो० वैष्णवी देवी कटड़ा, जम्मू-काश्मीर

विश्वायतन योगाश्रम

पो० बा० नं० २११, नई दिल्ली

अपर्णा आश्रम

ए-५०, फ्रैन्ड्स कालोनी

नई दिल्ली

अपर्णा आश्रम

मानतलाई

जिला उधमपुर

जम्मू-काश्मीर

अपर्णा आश्रम

७८-ए/डी, गांधी नगर

जम्मू-काश्मीर

यौगिक सूक्ष्म व्यायाम के प्रथम संस्करण का

द्वितीय पाकेट संस्करण

मूल्य १६/- ~~मूल्य~~ :

प्रकाशक :

धीरेन्द्र योग प्रकाशन

ए-५०, फ्रैन्ड्स कालोनी, नई दिल्ली

मुद्रक :

न्यूटेक फोटो लिथोग्राफर्स

झिलमिल इन्डसट्रियल एस्टेट

दिल्ली-११००३२

समस्तमनीषिभूषित महर्षि कार्त्तिकेयजी

समर्पण

महर्षिस्तीर्थपादोऽयं कार्त्तिकेयो महाप्रभुः ।
विदध्यात्संततं शन्नो दिव्यधामगतो हरिः ।।१।।

अयमयं निखिलेशरघूत्तमो विजयमित्रनिरीहयदूत्तमः ।
परमया दययाविरभूत्क्षितौ सुजनतासुखशान्तिविवृद्धये ।।२।।

अपि च वाग्भिरतीव मनोहरं सदुपदेशमदाज्जगते विभुः ।
करपदादि समेन्द्रियसंघकैर्हितकृदस्य स विश्वसुहृत्परः ।।३।।

अखिलयोगरहस्यमनुत्तमं मयिकुपात्रतमे कृपया ह्यधात् ।
स समदुःखविनाशनहेतुकं मम गुरुर्य इहास्ति दिवंगतः ।४।।

पादारविन्देष्वनुशिक्षितास्ताः क्रियाः समस्ता नितरां प्रकाश्य ।
गुरोः परेशस्य महाविभूतेः समर्पयेऽहं शिशुधीरचन्द्रः ।।५।।

महर्षिजी का संक्षिप्त परिचय

अम्भोजकल्पकलिताम्बकचारुदिव्यक्षेपैर्नृणां त्रिविधतापविनाशयन्तम् ।
योगेन वल्गुवचसा नवभक्तिभिश्च योगेश्वरेश्वरगुरुं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ।।

प्राणी जब भवाब्धि के उत्ताल तरंगों की असह्य वेदना-भँवर में असहाय और अनाथ की नाई ईश्वर की ओर करुण दशा में त्राहि-त्राहि करता हुआ डूबने लगता है, जब दुर्जन दोषाक्लान्त महीमण्डल अपनी विकृत प्रकृति सहचरी के साथ गरीय भारोद्धार के लिए प्रभु का आह्वान करता है, जब मानव-जगत् की परिस्थितियाँ दैन्य तथा दयनीय हो जाती हैं, तब उपर्युक्त सत्यशक्ति साधक-साधनों को उल्लसित करने तथा असत्य-अज्ञान को निरसित करने के लिए, विश्व को उद्भासित करते हुए महा-महिम गुणगणाकर प्रभु महाविभूतिमान स्वरूप को धारण कर विश्व-हित के लिए अवनितल पर पदार्पण करते हैं।

दयासिन्धु प्रभु के उन स्वरूपों में से एक विशेष विभूतिमान स्वरूप, दिव्य महापुरुष, अनन्त श्री विभूषित, ब्रह्मनिष्ठ महर्षि श्री कार्तिकेयजी भी हैं। ऐसे महापुरुषों का आना पृथ्वीतल पर केवल लोककल्याण के लिए ही हुआ करता है। ऐसे महापुरुषों का मिलन भवत्प्राप्ति सदृश ही या उससे भी अधिक महत्व की घटना है, जो बिना भगवान की असीम अनुकम्पा से प्राप्त नहीं होती :—

निगमागम पुराणमत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहिं संदेहा ।।
संत सिद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही ।।

राम की कृपा से संत मिलते हैं और संतों की कृपा से परमार्थ-विवेक। ऐसे संतों की वाणी भगवान सर्वेश्वर प्रभु की सर्वाङ्गीण शक्ति है। भक्तों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि उनकी वाणी का महत्त्व भगवान की वाणी से भी श्रेष्ठ है। भगवान की वाणी दुष्टों का निग्रह और शिष्टों का अनुग्रह करनेवाली होती है, पर संतों की वाणी सब पर समान रूप से अनुग्रह-रूप है।

भगवान की वाणी में शासन का भाव है और संत की वाणी में प्रेम का स्वभाव। भगवान की वाणी में सत्ता का गुण है, पर संत की वाणी में सत्य का सौन्दर्य। प्रभु की वाणी में प्रभाव और संत की वाणी में सद्भाव है।

अनादि काल से सर्वेश्वर भगवान ने ऐसे महापुरुषों के रूप में आकर मानव का कल्याण किया है तथा तत्त्वज्ञान का बोध कराकर जीवन के भवसागर से पार उतारा है। कहा भी है :—

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत् ।
न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः ।।
गुरुः प्लावयिता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते ।
विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तदुभयं त्यजेत् ।।

अर्थात्——जैसे ज्ञान-विज्ञान के बिना मोक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार सद्गुरु से सम्बन्ध हुए बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु इस संसार-सागर से पार उतारनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौका के समान बताया गया है। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है, फिर उसे नौका और नाविक दोनों की ही अपेक्षा नहीं रह जाती।

महर्षिजीका आविर्भाव भारतवर्ष के उत्तर-प्रदेश में एक सुप्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल में हुआ था। आप बाल्यावस्था से ही प्रतिभासम्पन्न तथा योग के पूर्ण रहस्यज्ञ थे। बहुत छोटी अवस्था में ही आप में पूर्ण प्रज्ञा प्रतिष्ठित थी। सुना जाता है कि ग्रामीणों की जब कोई वस्तु खो जाती और वे आकर आपसे पूछते, तब आप झट बताते कि वह वस्तु अमुक स्थान पर है या अमुक मनुष्य ने ली है। एक बार उसी छोटी अवस्था में एक महापुरुष ने आपकी परीक्षा के लिए आपके सामने संस्कृत महाभारत ग्रन्थ रख दिया और पढ़ने को कहा। आपने उसे महान् विद्वान् की भाँति धारा-प्रवाह रूप से पढ़ दिया। यज्ञोपवीत संस्कार में आपने स्वयं गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया था। इस प्रकार आपका शैशव महत्वपूर्ण घटनामय था।

आप उपवीत के बाद ही पर्वतीय प्रान्त कैलाश, मानसरोवर, द्रोणाद्रि, गन्धमादन और सुमेरु आदि अनेक पर्वतों के विजन तपःपूत शिखरों पर बहुत दिनों तक विचरते रहे। फिर निरहैतुक करुणावरुणालय बदरीविपिनविहारी भगवान् बदरीनारायणजी ने त्रिविधतापाक्लान्त विश्व के उद्धारमात्र के लिए आपके आविर्भाव का मुख्य निदान निर्देश किया। साथ ही आपके अपने सदाचार, उपदेश, खान-पान, चलन, वलन, दर्शन, अभिभाषण, साधन, भजन, पठन, पाठन, निर्देशन, शयन-सम्मिलन, योग आदि सदाचारों से विश्व को विशेष कल्याण भाजन बनाने के लिए दिव्य आज्ञा दी।

आपका जीवन संसार के सामने एक महान् आदर्श जीवन था। आपके कलित कलेवर में उपासकों तथा भावुकों को अपने-अपने इष्ट का अनुदर्शन हुआ करता था, जिससे वे प्रभावित हो आप में ही इष्ट भावना रखकर आपकी पूजा से अपना अभीष्ट सिद्ध करते थे। आपकी वाणी द्वारा होनेवाले लाभों की महत्ता और व्यापकता का वर्णन मानव-बुद्धि की परिधि से बाहर है, क्योंकि आपकी वाणी-वीणा के एक-एक तार, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना और तान में मानव-मन के मर्मस्थलों को स्पर्श करने का विलक्षण गुण था तथा उसमें विश्व-हृदयहारिणी शक्ति का आनन्द प्राप्त होता था, जिसके फलस्वरूप वह जनता के मन पर मन्त्र का-सा काम करती थी।

आप जब पर्वतीय पठारों से नीचे उतर कर देश में आए थे, उसी समय आपका अभूतपूर्व दर्शन मुझे बिहार-स्थित बेनीपट्टी ग्राम में प्राप्त हुआ था। आपके दर्शन भाग से उस समय मुझे जो आनन्द मिला, उसका वर्णन मेरी लेखनी की शक्ति के बाहर की वस्तु है। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जिन्हें पाने के लिए युगों से मेरा मन प्यासा था, वह आज प्रत्यक्ष हुए हैं। आपके ग्राम में पधारते ही दूर-दूर के ग्रामों से जनता का समुद्र-सा उमड़ पड़ा। जो उनकी वाणी को सुनता, मुग्ध हो जाता। कोई कहता भगवान राम आए हैं, कोई कहता योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण इस रूप में आए हैं। आपमें वास्तव में अपूर्व क्षमता तथा सर्वज्ञता थी। भक्तों को प्रेम की पराकाष्ठा समझाते थे। ज्ञानियों को ज्ञान योग का उपदेश देते थे। योगियों को यौगिक क्रियाओं के विषय में विलक्षण ज्ञान कराते थे। गृहस्थों को

ग्रहस्थ धर्म सम्बन्धी आचार-विचार, भोजन-भजन आदि सारी बातों का उपदेश देते थे। आपके हृदय की विशालता अद्भुत थी। सारे समुदायों, सम्प्रदायों के प्रति असीम प्रेम की भावना से आपके उपदेश ओत-प्रोत रहते थे। सारे विश्व के प्राणियों की मङ्गल-कामना आपकी वाणी में निहित थी। ऐसी अद्भुत शक्ति के दर्शन मुझे जीवन में प्रथम बार हुए थे। मानव सम्बन्धी तथा हर क्षेत्र के जैसे राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक इत्यादि किसी भी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर प्रश्न करते ही प्रश्नकर्त्ता को मिलता था।

मुझे भी यहीं पर आपने अपने असीम अनुग्रह से अनुगृहीत किया। मेरी रुचि तथा ध्येय योग-मार्ग में बढ़ना था। मेरी जिज्ञासा को देख कर माता के समान अनुकम्पा कर योग के गोपनीय रहस्यों को समझाया तथा यौगिक क्रियाओं की अद्भुत प्रणाली, जो किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है, बताई। जनता के कल्याण के लिए ही आपका आविर्भाव हुआ था। अतएव उन गोपनीय क्रियाओं से विश्व का कल्याण करने की आपकी आज्ञा थी। इन क्रियाओं से सहस्रों के असाध्य से असाध्य रोग दूर हुए हैं तथा जन्मजन्मान्तरों के मलों का निवारण होकर उन्हें चित्त की एकाग्रता प्राप्त हुई। आपकी अनुकम्पा की विलक्षण महत्ता है। इसके बाद आपने असंख्य लोगों का उद्धार करते हुए उज्जैन, इन्दौर, राजपूताना, ब्रज, उत्तर-प्रदेश आदि स्थलों में पर्यटन कर इस विश्व को सुख-शान्ति का संदेश देकर अन्त में श्री गुप्तारघाट, फैजाबाद दिव्यधाम श्री अवध में साढ़े तीन सौ वर्ष की दीर्घायु में मंगलवार ता० २४-६-५३ को गोधूली वेला में सायं ८।। बजे सिद्धासन में विराजते हुए अपने लीला-कलेवर का संवरण किया।

—धीरेन्द्र ब्रह्मचारी

श्रद्धाञ्जलिः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणामपि श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठविद्वद्वरिष्ठाणाम्, विविधविद्यातत्त्वविज्ञजनमण्डलालंकारभूतानामपि ब्रह्मविद्यामलकवत्प्रत्यक्षीकृतानन्तकोटिब्रह्माण्डाण्डपिण्डाणाम्, जीवन्मुक्तावस्थयाऽशेषकृत्यानामपि मानवक्लेशकरुणयाऽऽर्द्रयाणहृदयानाम्, आर्यान्तःशीलसदाचारादर्शधौरेयाणामपि विश्वात्मतयाऽऽत्मीयां तनूमकिञ्चनत्वेन विभाव्यमानानाम्, सर्वोदात्ततया राजनीतिधर्मनीत्यायुर्वेदसांख्ययोगन्याय वैशेषिकवेदान्तादि दार्शनिकसिद्धान्तानुभवितप्रसारेण च धवलीकृताशानामपि विश्वायतनयोगाश्रमसर्वोत्कृष्टयौगिकसाधनप्रणाल्या मानवमात्रत्वेन विश्वोद्धारकाणाम्, त्रयोदशमासंयावन्मातृगर्भवासानन्तरं बाल्यादेवाधिगतात्मबोधतयाऽष्टवार्षिक्याऽल्पीयस्यैव वयसालंकृतसुरभारतिकविरत्नमण्डलमण्डनानामपि स्वात्मानमनभिज्ञमनधीतमिव च मन्यमानानाम्, कैवल्यस्थित्यात्मानन्दाब्धिनिषण्णानामपि भुव्यवतारितसत्याब्धिलोकानाम्, श्रीगौरीशंकरांकक्रीडनकलितव्यसननाम्, योगिवर्याणाम् अनन्तश्रीविभूषितानां श्रीमहर्षिकार्त्तिकेयानां चरणारविन्देषु सादरं सहृदय्याः कोटिशः प्रणामाञ्जलयः सन्तुन्तरामोम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

विश्वसेवक
हरिभक्त चैतन्य
विश्वायतन योगाश्रम
जम्मू-काश्मीर
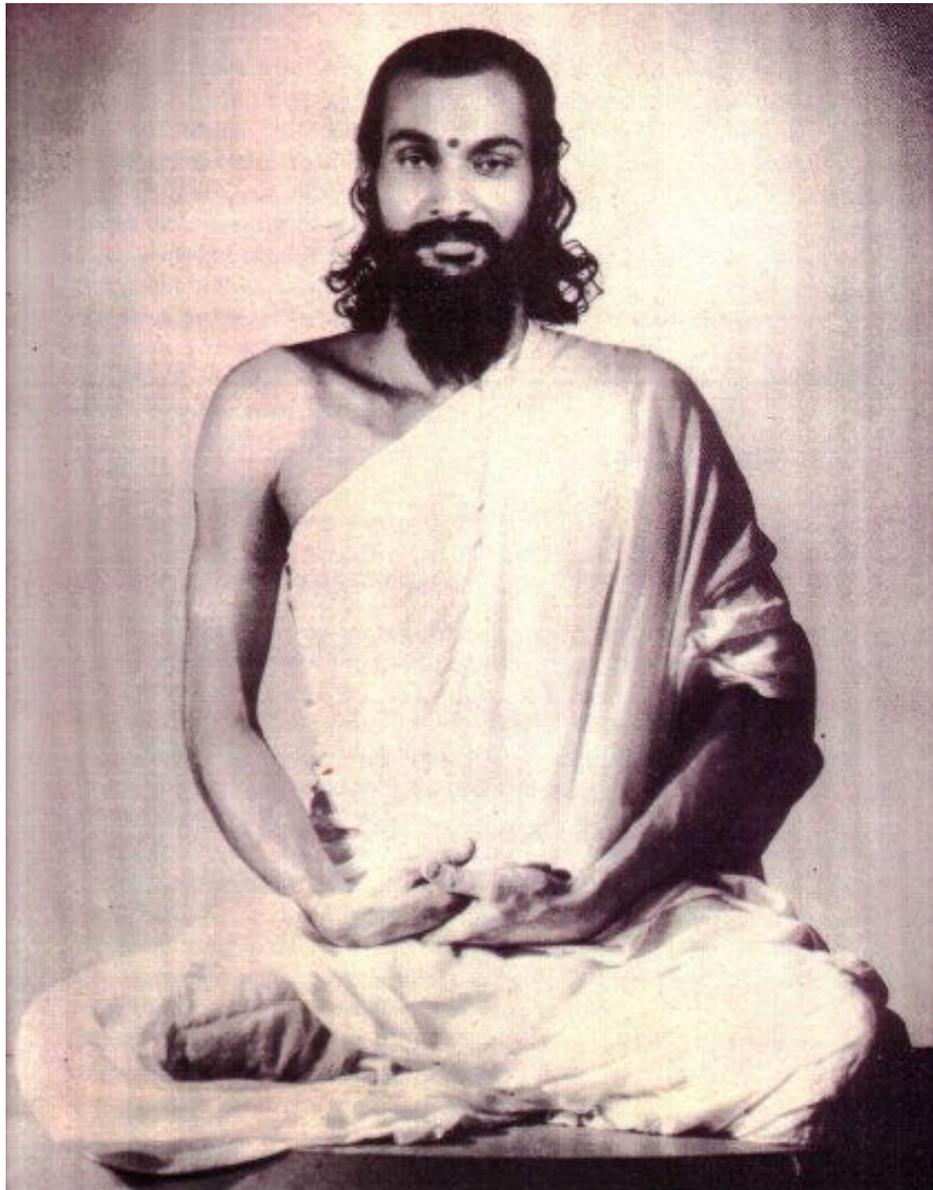
Dhirendra Brahmachari 1953

यौगिक साधनों की महत्ता

योग-विद्या का कोई ज्ञान मुझे नहीं है। न योग वाङमय से ही परिचित हूँ। तथापि अन्य साधारण लोगों की तरह योग की अनन्त महिमाओं का वर्णन जब तब सुनता रहा हूँ। अभी हाल में विश्वायतन योगाश्रम, काश्मीर, के दो योगियों—श्री धीरेन्द्र ब्रह्मचारी और हरिभक्त चैतन्य—से परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। मेरा स्वास्थ्य वर्षों से अच्छा नहीं रहता। इधर दो-ढाई साल से मधुमेह का शिकार रहा हूँ। कुछ महीने पूर्व कलकत्ते गया था, तो मित्रों से इन महात्माओं के विषय में सुना था। यह दोनों महात्मा लगभग एक वर्ष से यौगिक क्रियाओं का शिक्षण कलकत्ते के नागरिकों को दे रहे हैं। इन क्रियाओं से अनेकों ने लाभ उठाया है और पुराने-पुराने रोग भी दूर हो गये हैं। यह सब मित्रों से सुनकर मैंने भी इन क्रियाओं का अनुभव लेने का निश्चय किया। कलकत्ते रहकर इन महात्माओं की कृपा से कुछ क्रियाओं का अभ्यास किया। कुछ तो अद्भुद् क्रियाएँ हैं, जैसे "शंखप्रक्षालन" की क्रिया। सूक्ष्म व्यायाम भी अत्यन्त वैज्ञानिक लगते हैं। अभ्यास लगभग एक मास से जारी है। इस थोड़े समय में ही बहुत लाभ का अनुभव कर रहा हूँ। शरीर हल्का लग रहा है। मन अधिक प्रसन्न है। पेशाब में चीनी नहीं आ रही है। खून में भी चीनी पहले से कम है। निश्चित रूप से तो कुछ महीने बाद ही कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य में क्या-क्या अन्तर पड़ा है, परन्तु २४-२५ दिनों के ही अभ्यास से जो लाभ हुआ, वह थोड़ा नहीं है।

यहाँ योग की प्रशंसा करने नहीं बैठा हूँ। उसकी आवश्यकता ही क्या है? जब अनन्त ऋषि-मुनियों ने उसकी प्रशंसा गाई है, जब योगेश्वर श्रीकृष्ण ने उसकी बड़ाई की है और भगवान् बुद्ध ने योगाभ्यास से ज्ञान प्राप्त किया था, तो मुझ जैसे अवना और नानुभवी व्यक्ति के कथन का क्या महत्त्व हो सकता है? मैं यहाँ इतना ही कहना चाहता हूँ कि यह दुःख की बात है कि यह प्राचीन भारतीय विद्या आज भारतीय जीवन से लुप्त हो गई है। पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा, चिकित्सा आदि का भूत इस तरह हम पर सवार है कि अपने देश की इस अनमोल वस्तु का हम तिरस्कार ही कर रहे हैं। इस विद्या के जाननेवाले भी इस वातावरण से क्षुब्ध होकर जनजीवन से दूर पड़ गये हैं। इस अवस्था में यह प्रसन्नता का विषय है कि कुछ ऐसे योगी हैं, जो समाज में आकर फिर से इस दिव्य विद्या को फैलाने का शुभ प्रयास कर रहे हैं। इनमें ही विश्वायतन योगाश्रम के यह दो योगी हैं, जिनका जिक्र ऊपर आया है और जिन्होंने इस पुस्तक को तैयार किया है। हिन्दी भाषा में इस विषय पर ऐसी दूसरी पुस्तक नहीं है। शायद अन्य किसी भाषा में भी न हो। हजारों वर्षों के अनुभवों और प्रयोगों का सार यहाँ संग्रहीत है। यद्यपि आध्यात्मिक साधनों का वर्णन इस पुस्तक में नहीं-सा है, तथापि शारीरिक सुधार के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी होती ही है। यदि शरीर स्वस्थ हो जाता है और उस पर क़ाबू करना हम सीख लेते हैं, तो योग की अगली क्रियाएँ सुगम हो जाती हैं। यह पुस्तक इस प्रकार योगाभ्यास की पहली सीढ़ी है। इसमें प्रत्येक क्रिया का, सुन्दर चित्रों के साथ, ऐसा सरल और सविस्तर वर्णन है कि हर साधारण व्यक्ति भी इसे अच्छी तरह समझ सकता है। इस पुस्तक का अधिक-से-अधिक प्रचार हो, इसमें देश का कल्याण मैं मनाता हूँ।

३१-७-५६
कलकत्ता

श्रीमन्नारायण (हस्ताक्षर)

विश्व-कल्याणार्थ ईश-प्रार्थना

हे परम पिता, हे विश्व-पिता
हे राष्ट्रपिता,. हे जगदाधार,
हे करुणामय, दीन दयालो,
पूर्ण गुरो, हे अपरम्पार,
हे परेश अब शीघ्र कृपा करि,
हमें दीजिए शुद्ध विचार,
जिससे जनता के सेवक बन,
नाथ करें सुखमय संसार।

विश्व - कल्याणात्मक नारे

- विश्व का---कल्याण हो!
- सभी---कर्त्तव्यपरायण हों!!
- परस्पर---प्रेम हो!!!

दो शब्द

प्राचीन काल में भारतीय आर्यों ने मनन, चिन्तन तथा ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में जो अवदान दिया था, उसका प्रमाण आज भी पुरातन भारतीय वाङ्मय में हमें प्राप्त होता है। हमारे ऋषि-महर्षियों के उसी ऊर्ध्वमुखी मनन और चिन्तन के परिणाम का एक अंग भारतीय योग-विद्या भी है। इस विद्या के द्वारा शारीरिक और मानसिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास भी साधित होते हैं। अतः यह विद्या विश्व में अद्वितीय है, जिसका ज्ञान भारत के अतिरिक्त और किसी भी देश को पहले प्राप्त न था।

मैं योग विद्या का एक साधारण विद्यार्थी हूँ। गुरुदेव की कृपा से जो कुछ थोड़ा-सा ज्ञान अर्जित कर सका हूँ उसी के द्वारा मैंने प्रस्तुत पुस्तक में यौगिक व्यायाम और आसनादि का परिचय भर देने की चेष्टा की है। इस पुस्तक से जन-साधारण को यौगिक साधनों के विषय में जानकारी भी मिलेगी और जो यौगिक स्थूल-सूक्ष्म व्यायाम का अभ्यास करना चाहेंगे उनके लिए यह सहायक भी सिद्ध होगी। यदि इस पुस्तक से जनसाधारण का थोड़ा भी कल्याण हो सका तो मैं अपना परिश्रम सार्थक और अपने को कृतार्थ समझूँगा।

देश के लोकप्रिय नेता श्री जयप्रकाश नारायण ने यौगिक सूक्ष्म व्यायाम के सम्बन्ध में अपना अभिमत प्रकट कर इसके महत्व पर जो प्रकाश डाला है, उसके लिए मैं उनका बहुत आभार मानता हूँ। इनके साथ ही मैं अपने सहयोगी श्री हरिभक्त चैतन्य जी ब्रह्मचारी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने पुस्तक की विस्तृत भूमिका लिख कर इसकी उपादेयता को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। इसके साथ ही इस पुस्तक को पाठकों के कर-कमलों तक पहुँचाने का सारा श्रेय सर्वश्री सेठ बाबू लालजी जालान (फर्म–सूरजमल नागरमल जालान, कलकत्ता), सविता बहन मेहता (सुपुत्री, नैनजी भाई कालीदास, बम्बई) और कन्हैया लालजी चिलांगिया (कलकत्ता) को है जिन्होंने आर्थिक सहायता देकर इसकी छपाई का पूरा प्रबन्ध करा दिया। इसके लिए मैं इन तीनों महानुभावों का आभार मानता हूँ। इस स्थल पर मैं श्री सत्यनारायण जी अग्रवाल (कलकत्ता) को भी नहीं भूल सकता जिनके क्रियात्मक सहयोग के कारण ही यह सब कुछ हो सका। मैं इनका भी आभारी हूँ।

अन्त में एक निवेदन है कि इस अकिंचन से जो कुछ भी त्रुटि हुई हो विज्ञजन उसे क्षमा करते हुए अपने अनमोल सुझावों और सम्मतियों से यदि मुझे अवगत करावें तो बड़ा ही उपकार मानूँगा।

—धीरेन्द्र ब्रह्मचारी

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
यौगिक सूक्ष्म व्यायाम	
उच्चारणस्थल तथा विशुद्धचक्र की शुद्धि	१
प्रार्थना	१
बुद्धि तथा धृति-शक्ति-विकासक	२
स्मरणशक्ति-विकासक	७
मेधाशक्ति-विकासक	७
नेत्रशक्ति-विकासक	८
कपोल-शक्ति-वर्धक	१३
कर्ण-शक्ति-वर्धक	१४
ग्रीवा-शक्ति-विकासक (१)	१४
ग्रीवा-शक्ति-विकासक (२)	१६
ग्रीवा-शक्ति-विकासक (३)	१६
स्कन्ध तथा बाहुमूल-शक्ति-विकासक	२०
भुजबन्ध-शक्ति-विकासक	२०
कोहनी-शक्ति-विकासक	२७
भुजबल्ली-शक्ति-विकासक	२८
पूर्णभुजा-शक्ति-विकासक	२८
मणिबन्ध-शक्ति-विकासक	३७
करपृष्ठ-शक्ति-विकासक	३८
करतल-शक्ति-विकासक	३८
अँगुली-मूलशक्ति-विकासक	३८
अँगुली-शक्ति-विकासक	५३
वक्षःस्थल-शक्ति-विकासक (१)	५३
वक्षःस्थल-शक्ति-विकासक (२)	५४
उदर-शक्ति-विकासक (अजगरी १)	५६
उदर-शक्ति-विकासक (२)	५६
उदर-शक्ति-विकासक (३)	६०
उदर-शक्ति-विकासक (४)	६०
उदर-शक्ति-विकासक (५)	६०
उदर-शक्ति-विकासक (६)	६५
उदर-शक्ति-विकासक (७)	६५
उदर-शक्ति-विकासक (८)	६५
उदर-शक्ति-विकासक (९)	६६
उदर-शक्ति-विकासक (१०)	६६
कटि-शक्ति-विकासक (१)	७५
कटि-शक्ति-विकासक (२)	७५
कटि-शक्ति-विकासक (३)	७६
कटि-शक्ति-विकासक (४)	७६
कटि-शक्ति-विकासक (५)	८५
मूलाधारचक्र-शुद्धि	८५
उपस्थ तथा स्वाधिष्ठानचक्र-शुद्धि	८६
कुण्डलिनी-शक्ति-विकासक	८६
जंघा-शक्ति-विकासक (१)	९०
जंघा-शक्ति-विकासक (२)	९०
जानु-शक्ति-विकासक	९५
पिण्डली-शक्ति-विकासक	९६
पादमूल-शक्ति-विकासक	९६
गुल्फ, पादपृष्ठ, पादतल-शक्ति-विकासक	१०५
पादांगुली-शक्ति-विकासक	१०५
यौगिक स्थूल व्यायाम	
रेखागति	१०७
हृद्गति (इञ्जनदौड़)	१०७
उत्कूर्दन (जंपिंग)	१११
ऊर्ध्वगति	१११
सर्वाङ्गपुष्टि	११२

विषय	पृष्ठ-संख्या
शीर्षासन	
शीर्षासन	११७
नाभि-परीक्षा	
नाभिचक्र	१३१
नाभिटल जाने का कारण	१३२
नाभि-परीक्षा केवल पुरुषों के लिये	१३२
नाभि-परीक्षा केवल महिलाओं के लिये	१३५
नाभि-परीक्षा स्त्री-पुरुष दोनों के लिये	१३५
नाभि ठीक करने की विधि	१३५
षट्कर्म	
कुञ्जल—गजकरणी	१५१
नेति—मातङ्गिनी	१५७
सूत्रनेति का निर्माण	१५७
सूत्रनेति करने की विधि	१५८
जलनेति	१५८
दुग्धनेति	१६०
घृतनेति	१६०
वस्त्रधौति	१६०
वस्त्रधौति बाहर निकालने की विधि	१६५
दण्डधौति	१६६
नौलि	१६६
वाम और दक्षिण नौलि	१६६
वस्ति	१७०
त्राटक	१७२
भस्त्रिका	१७६
बाघी	१८०
शंखप्रक्षालन—वारिसार	१८२

चित्र-सूची

चित्र	चित्राङ्क
उच्चारणस्थल तथा विशुद्धचक्र-शुद्धि की स्थिति	१
,, ,, क्रिया	२
प्रार्थना	३
बुद्धि तथा धृति-शक्ति-विकासक	४
स्मरण-शक्ति-विकासक	५
मेधा-शक्ति-विकासक	६
नेत्र-शक्ति-विकासक	७
कपोल-शक्ति-वर्धक	८
,,	९
कर्ण-शक्ति-वर्धक	१०
,,	११
ग्रीवा-शक्ति-वर्धक	१२
	१३
ग्रीवा-शक्ति-वर्द्धक	१४
,,	१५
स्कन्ध तथा बाहुमूल-शक्ति-वर्धक	१६
भुजबन्ध-शक्ति-विकासक	१७
,,	१८
कोहनी-शक्ति-विकासक	१९
,,	२०
,,	२१
,,	२२
भुजबल्ली-शक्ति-विकासक	२३
,,	२४
पूर्णभुजा-शक्ति-विकासक	२५
,,	२६

चित्र		चित्राङ्क
मणिबन्ध-शक्ति-वर्धक	..	२७
,,	..	२८
,,	..	२९
,,	..	३०
करपृष्ठ-शक्ति-विकासक	..	३१
,,	..	३२
,,	..	३३
,,	..	३४
करतल-शक्ति-विकासक	..	३५
,,	..	३६
,,	..	३७
,,	..	३८
अँगुलीमूल-शक्ति-विकासक	..	३९
,,	..	४०
अँगुली-शक्ति-विकासक	..	४१
,,	..	४२
वक्षःस्थल-शक्ति-विकासक	..	४३
,,	..	४४
उदर-शक्ति-विकासक	..	४५
,,	..	४६
,,	..	४७
,,	..	४८
,,	..	४९
,,	..	५०
,,	..	५१
उदर-शक्ति-विकासक	..	५२
,,	..	५३
,, वाम नौलि	..	५४
,, दक्षिण ,,	..	५५
,, मध्य नौली	..	५६
कटि-शक्ति-विकासक	..	५७
,,	..	५८
,,	..	५९
,,	..	६०
,,	..	६१
,,	..	६२
,,	..	६३
,,	..	६४
,,	..	६५
मूलाधारचक्र-शुद्धि	..	६६
उपस्थ तथा स्वाधिष्ठानचक्र-शुद्धि	..	६७
कुण्डलिनी-शक्ति-विकासक	..	६८
जंघा-शक्ति-विकासक	..	६९
,,	..	७०
,,	..	७१
जानु-शक्ति-विकासक	..	७२
पिण्डली-शक्ति-वर्धक	..	७३
पादमूल-शक्ति-विकासक	..	७४
,,	..	७५
गुल्फ पादपृष्ठ पादतल	..	७६
पादांगुली-शक्ति-विकासक	..	७७
शवासन	..	७८

यौगिक स्थूल व्यायाम की चित्र-सूची

चित्र		चित्राङ्क
रेखागति	..	७९
हृद्गति	..	८०
उत्कूर्दन	..	८१
ऊर्ध्वगति	..	८२
सर्वाङ्गपुष्टि	..	८३
,,	..	८४
शीर्षासन	..	८५
शीर्षासन	..	८६

चित्र		चित्राङ्क
शीर्षासन	..	८७
,,	..	८८
,,	..	८९
,,	..	९०
,,	..	९१
,,	..	९२
,,	..	९३
,,	..	९४
शवासन	..	९५
नाभिचक्र		
नाभि-परीक्षा	..	९६
,,	..	९७
नाभि-परीक्षा केवल महिलाओं के लिए		९८
नाभि-परीक्षा स्त्री-पुरुष दोनों के लिए		९९
नाभि-ठीक करने की विधि	..	१००
,,	..	१०१
,,	..	१०२
,,	..	१०३
ऊपर टली नाभि ठीक करने की विधि	..	१०४
स्वयं नाभि ठीक करने की विधि	..	१०५
,,	..	१०६
,,	..	१०७
,,	..	१०८

चित्र		चित्राङ्क
षट्कर्म		
कागासन	..	१०९
कुञ्जल	..	११०
कुञ्जल-क्रिया	..	१११
सूत्रनेति	..	११२
नासिका में घी डालने की विधि	..	११३
जलनेति	..	११४
जलनेति के पश्चात् नासिका से जल निकालने की विधि	..	११५
दुग्धनेति	..	११६
वस्त्रधौति	..	११७
दण्डधौति	..	११८
मध्यनौलि	..	११९
वामनौलि	..	१२०
दक्षिणनौलि	..	१२१
वस्ति	..	१२२
वस्ति के बाद का मयूरासन	..	१२३
त्राटक कर्म	..	१२४
कपालभाति	..	१२५
सर्पासन	..	१२६
ऊर्ध्वहस्तोत्तानासन	..	१२७
कटिचक्रासन	..	१२८
उदरकर्षासन	..	१२९

बुद्धि तथा धृति मण्डल
स्मृतिमण्डल - सहस्रारविन्द
कपोल
भ्रूमध्य आज्ञाचक्र
पलक
तारिका पुतली
नासिकारन्ध्र
ओष्ठ
मुखद्वार
विशुद्धचक्र
स्कन्ध
ग्रीवा
बाहुमूल
वक्षःस्थल
मनोवहानाड़ी अनाहतचक्र
भुजबन्ध
कोहनी
उदर
भुजवल्ली
कटि
नाभिचक्र
स्वाधिष्ठानचक्र
उपस्थ
मणिबन्ध
अंगुलीमूल
करपृष्ठ
अंगुली
करतल
जङ्घा
जानु
पेण्डुली
गुल्फ
पादपृष्ठ
पादांगुली
पादतल

यौगिक सूक्ष्म व्यायाम

१—उच्चारण-स्थल तथा विशुद्ध-चक्र की शुद्धि

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर ग्रीवा को समावस्था से आधा अंगुल पीछे की ओर झुकाते हुए तथा नेत्रों को पूर्ण रूप से खोलकर सामने देखते हुए मुख को बन्द रखें। चित्र नं० १ देखें।

क्रिया—चित्र नं० १ की स्थिति में खड़े होने के पश्चात् क्रिया आरम्भ करने के पूर्व दोनों हाथों को स्वाभाविक रूप में नीचे लाकर उच्चारण-स्थल पर ध्यान रखते हुए दोनों नासिकारन्ध्रों से लोहार की धौंकनी की भाँति उच्च स्वर करते हुए श्वास-प्रश्वास करें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० २ देखें।

विशेष—कण्ठकूप से हाथ के चतुरंगुल मूल से मापकर ठुड्डी और दृष्टि को सम रखने की अवस्था को ग्रीवा की समावस्था कहते हैं।

लाभ—नाड़ियों में कण्ठ के अन्दर जिस स्थान से शब्दोच्चारण होता है, वहाँ पर जो वात, पित्त, कफ, मज्जा-मेदादि अनुपयुक्त पदार्थों का संग्रह होता है, उसकी निवृत्ति होती है। तुतलापन दूर होता है। विचार करने की शक्ति बढ़ती है। कटु स्वर मधुर हो जाता है। संगीत का अभ्यास करनेवालों के लिए यह परम उपयोगी है। यदि स्वस्थ व्यक्ति इस क्रिया का अभ्यास करता रहे, तो उच्चारण-स्थल विशिष्ट शक्ति-सम्पन्न बन जायगा।

२—प्रार्थना

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर नेत्र बन्द रखते हुए हाथों को सम्पुट करके हृदय देश के ऊपरी विभाग में स्थित करें। तत्पश्चात् दोनों अँगूठों को कण्ठकूप से मिलाकर भुजबल्लियों से बलपूर्वक वक्षःस्थल को दबावें।

क्रिया—मन से बाह्यवृत्तियों को हटाकर प्रभु से प्रार्थना करें अर्थात् एक स्वरूप का ध्यान करें। ज्यों-ज्यों मन एकाग्र हो, भुजवल्लियों तथा हथेलियों को ढीला करें। मन एकाग्र न होने पर हाथों को बलपूर्वक दबाना चाहिए। चित्र नं० ३ देखें।

लाभ—इस क्रिया के अभ्यास से मानसिक विकारों की निवृत्ति, मनोवहा नाड़ी की ऊर्ध्वगति, इष्टानुकम्पा की प्राप्ति और शरीर के अनेक रोगों की निवृत्ति होती है। विशेषतया यह क्रिया चित्त की एकाग्रता के लिए बहुत उपयोगी है। आत्म-साक्षात्कार एवं परम शान्ति-प्राप्ति का यह अभ्यास अचूक साधन है। महात्मा बुद्ध को किसी महर्षि द्वारा इसी अभ्यास को बतलाये जाने पर बोधिवृक्ष के नीचे परम शान्ति प्राप्त हुई थी। इसी क्रिया के अभ्यास से वे काम (विषय-वासना) पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सके थे।

विशेष—"मनोवहा नाड़ी" अर्थात् वीर्य वहानेवाली नाड़ी—जिसके द्वारा मनन किया जाता है, उस नाड़ी का किंचित् भी नीचे प्रवाह होने पर मन चलायमान होने लगता है, और जब यह नाड़ी ऊर्ध्वमुखी रहती है, तो मन में एकाग्रता आती है। मन के एकाग्र होने पर ही सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने वश में रहती हैं। किसी भी विषय में अपने जीवन में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए मन की एकाग्रता परम आवश्यक है।

३—बुद्धि तथा धृति-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए मुख बन्द करके सिर को पीछे की ओर पूर्ण रूप से झुकावें। नेत्रों को पूर्ण रूप से खोलकर आकाश की ओर देखते हुए खड़े रहें।

क्रिया—शिखामण्डल में ध्यान रखते हुए दोनों नासिकारन्ध्रों से लोहार की धौंकनी की भाँति यथाशक्ति बलवेग प्रदान करते हुए श्वास-प्रश्वास करें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ४ देखें।

लाभ—शिखास्थान के नीचे बुद्धि-स्थल साधारण गाय के खुर के परिमाणवाला है। इस बुद्धिमण्डल के अन्दर घड़ी की सूई के समान एक नाड़ी निरन्तर घूमती रहती है, जो कि सभी इन्द्रियों और अङ्ग-प्रत्यङ्गों को ज्ञान (सञ्ज्ञा) प्रदान करती है।
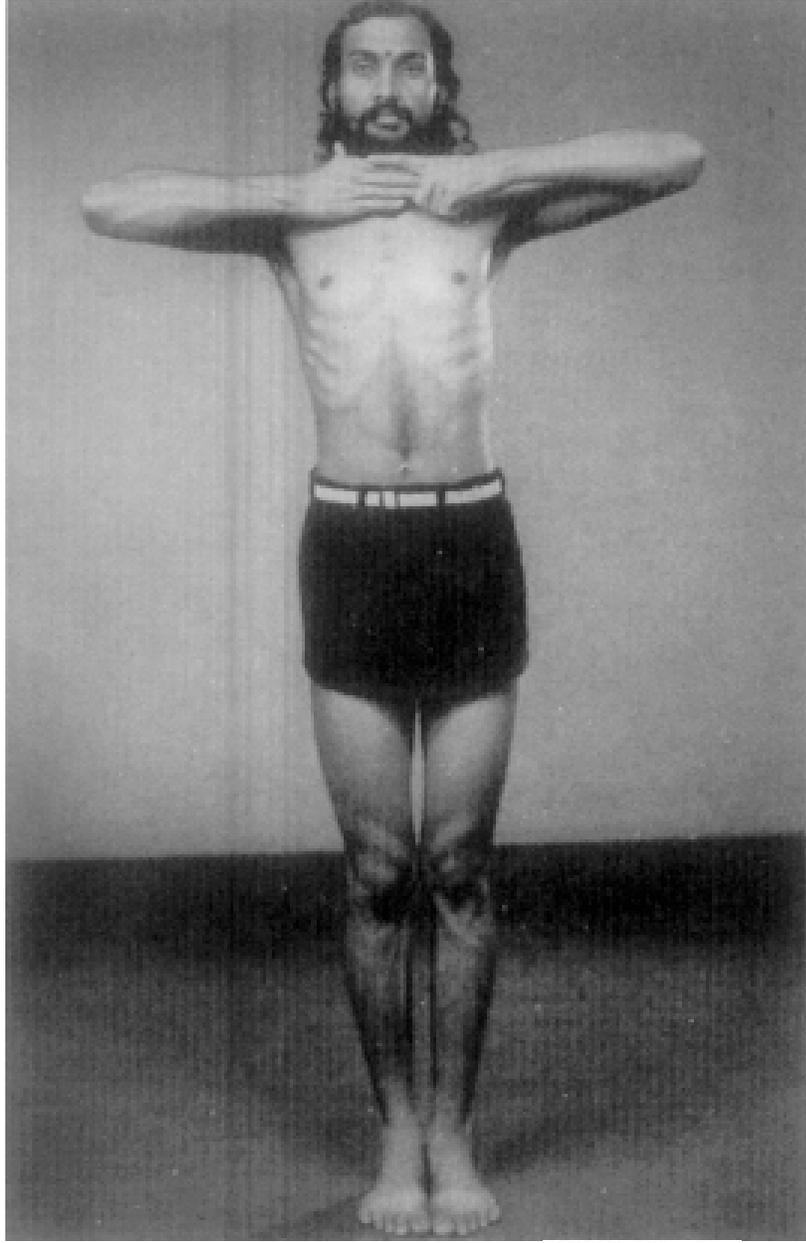
चित्र नं० १ क्रिया नं० २

उच्चारण-स्थल तथा विशुद्ध चक्र-शुद्धि नामक पहली क्रिया की स्थिति। इसमें समावस्था से आधा अंगुल ठुड्डी ऊंची की गई है।
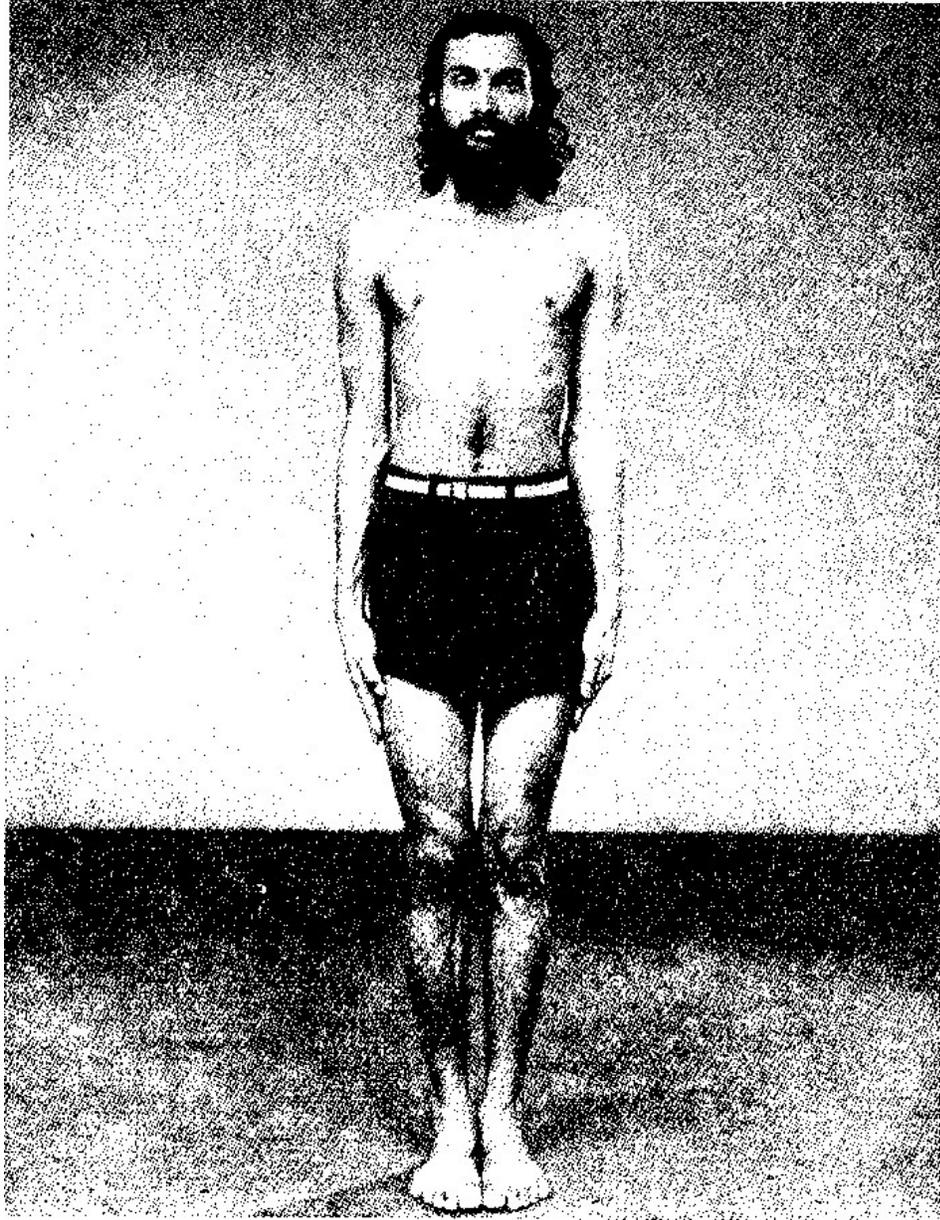
चित्र नं० २ क्रिया नं० १

उच्चारण-स्थल तथा विशुद्ध चक्र-शुद्धि की पहली क्रिया

इसमें श्वास-प्रश्वास किया जा रहा है।
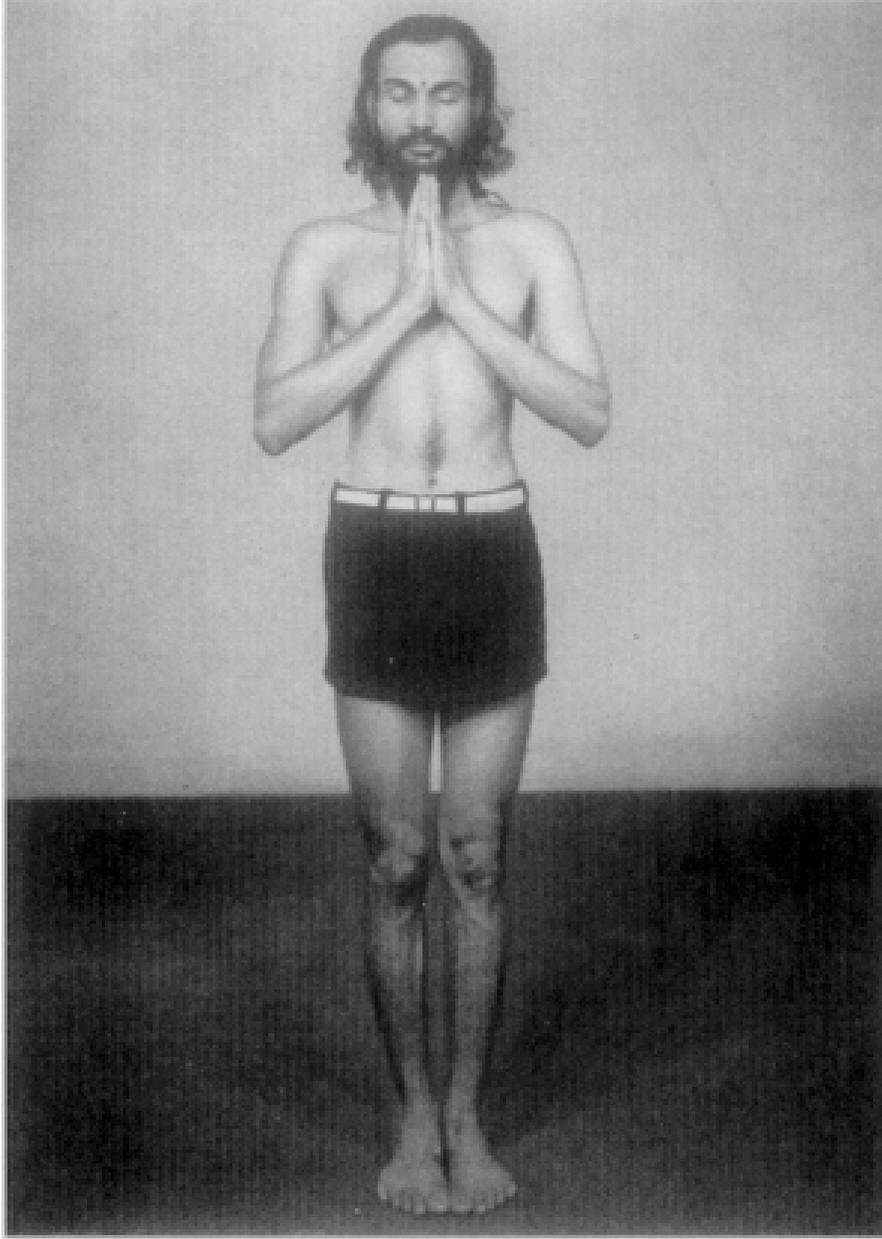
चित्र नं० ३

क्रिया नं० २

अन्त:करण की शुद्धि तथा चित्त की एकाग्रता के लिए यौगिक प्रार्थना की स्थिति।
इसमें अपने इष्ट स्वरूप का ध्यान किया जा रहा है।
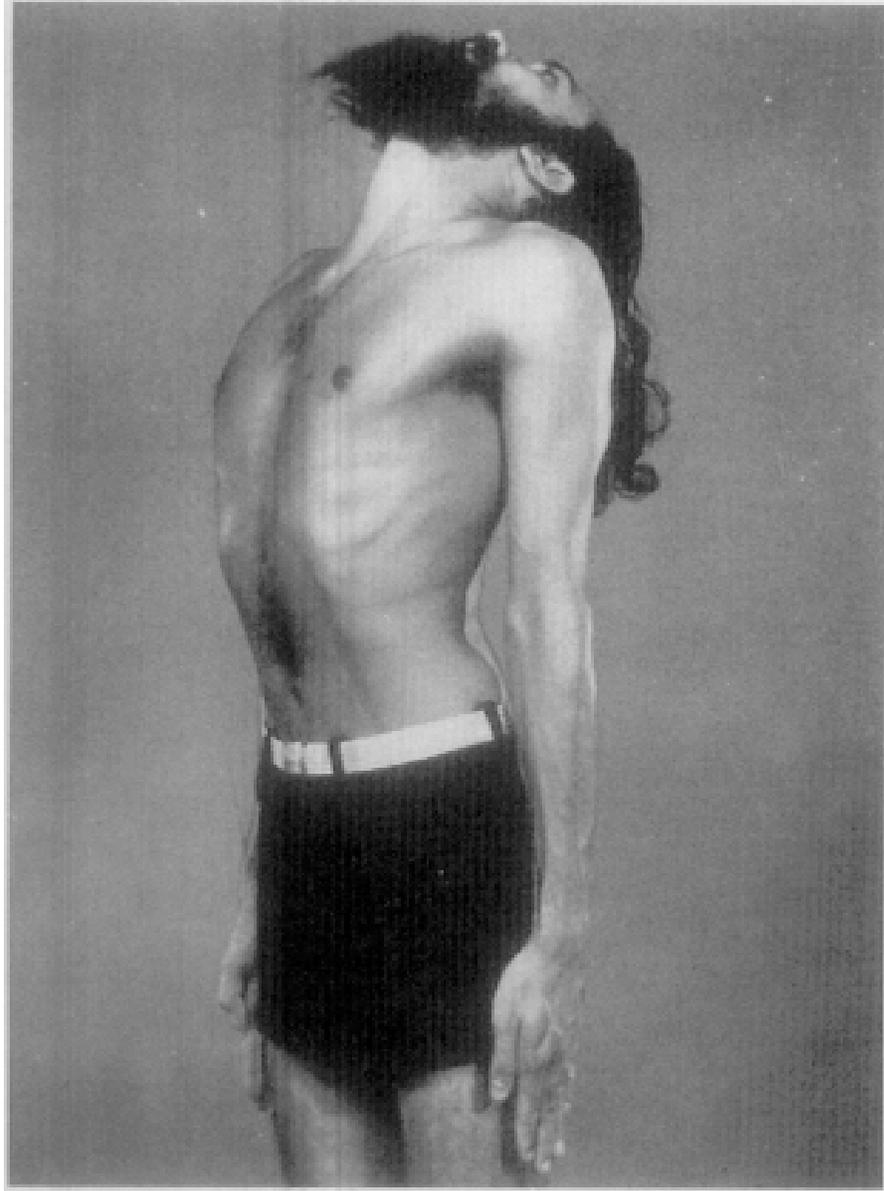
चित्र नं० ४ क्रिया नं० २

बुद्धि तथा धृति-शक्ति-विकासक क्रिया की स्थिति। इसमें शिखामण्डल में धारणा रखते हुए श्वास-प्रश्वास किया जा रहा है।

उसमें कफ आदि की विषमता होने पर नाड़ी की गति अवरुद्ध हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप बुद्धिमान्द्य, विस्मृति, विक्षेप, संशय आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इस क्रिया के अभ्यास से समस्त दोष दूर हो जाते हैं और बुद्धितत्व की विशुद्धि, धृति-शक्ति की वृद्धि तथा सद्बुद्धि प्रदान करनेवाले ज्ञानतन्तुओं की जागृति होती है।

४—स्मरण-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर पैरों से डेढ़ गज की दूरी पृथ्वी पर नीचे की ओर दृष्टि जमाकर खड़े हों। ग्रीवा समावस्था में ही रहे।

क्रिया—ब्रह्मरन्ध्र (दशमद्वार) सहस्रारविन्द में ध्यान रखते हुए, आन्तरिक बलवेग प्रदान करते हुए श्वास-प्रश्वास करें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ५ देखें।

लाभ—मस्तक और शिखा-स्थान के मध्य मस्तिष्क (स्मृतिमण्डल) में कफ आदि की विषमता से उत्पन्न होनेवाले पागलपन, भ्रान्ति, विस्मृति, उन्माद आदि रोगों की निवृत्ति होती है। यह क्रिया मस्तिष्क से अधिक परिश्रम करनेवालों की थकावट दूर करके अधिक-से-अधिक कार्य करने की क्षमता तथा स्मरण-शक्ति का विकास प्रदान करती है। स्वाध्यायशील, अन्य कलाकार विद्यार्थियों तथा वकीलों के लिए यह अभ्यास परम उपयोगी है।

५—मेधा-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर नेत्रों को बन्द करके ठुड्डी कण्ठकूप से लगाकर खड़े रहें।

क्रिया—गले के पीछे गढ़ीले स्थान, मेधाचक्र पर ध्यान रखकर आन्तरिक बल प्रदान करते हुए लोहार की धौंकनी की भाँति उच्च स्वर से श्वास-प्रश्वास करें।

विशेष—ध्यान रहे कि एक से पाँच क्रिया पर्यन्त श्वास-प्रश्वास करते समय जितने जोर से श्वास अन्दर खींचें, उतने ही जोर से श्वास बाहर छोड़ना चाहिए। (आरम्भिक क्रम २५ बार, चित्र नं० ६ देखें।)

लाभ—इस क्रिया से मेधा-स्थान में होनेवाले कफ आदि दोषों का विनाश होता है। परम प्रेम तथा आकर्षण-शक्ति की प्राप्ति होती है और प्राण सुषुम्णावाही होता है। उपनिषदों में इस क्रिया के विषय में बड़ा सुन्दर लिखा है :—

जालन्धरे कृते बन्धे कण्ठसंकोचलक्षणे ।
न पीयूषं पतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ।।

(योगकुण्डल्युपनिषत्)

अर्थात्—कण्ठसंकोचरूपी जालन्धर बन्ध लगाने से ऊपर सहस्रारबिन्द से टपकने-वाला अमृत बिन्दु जठराग्नि से भस्म नहीं होता है और प्राणवायु का निरोध करके कुण्ड-लिनीशक्ति को जागृत करता है ।

विशेष—उपर्युक्त एक से पाँच तक की समस्त क्रियाओं से मस्तिष्क में उत्पन्न होनेवाले वात, पित्त, कफादि दोष जो विस्मृति, विक्षेप, वुद्धिमान्द्य आदि रोगों के कारण बनते हैं, उनका नाश होता है और योगशास्त्रानुसार शरीर के समस्त चक्रों की शुद्धि तथा ग्रन्थि विभेदन हो जाता है ।

६—नेत्र-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए ग्रीवा को पूर्ण रूप से पीछे झुकाकर खड़े रहें ।

क्रिया—दोनों नेत्रों से पूर्णतया आन्तरिक बल प्रदान करते हुए भ्रूमध्य में निर्निमेष (बिना पलक झपके) देखते रहें । जब नेत्रों में थकावट प्रतीत हो अथवा अश्रुपात होने के पहले ही नेत्रों को बन्द कर लें । पुनः नेत्रों को खोलकर पहले की भाँति ही करें । आरम्भिक क्रम ५ मिनट । चित्र नं० ७ देखें ।

लाभ—इस क्रिया के अभ्यास से नेत्रों में होनेवाले समस्त दोषों की निवृत्ति होती है और नेत्रों की ज्योति बढ़ती है तथा गिद्धदृष्टि प्राप्त होती है । योगशास्त्र-विषयक उपनिषद् ग्रन्थों में इस क्रिया के विषय में ऐसा वर्णन है :—

मोचनं नेत्ररोगाणां निद्रादीनां कपाटकम् ।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम् ।।

अर्थात्—यह त्राटक नाम की क्रिया नेत्रों के समस्त रोगों को नष्ट करनेवाली है तथा निद्रा-तन्द्रा आदि को रोकने में कपाट (किवाड़) का कार्य करती है । इस त्राटक कर्म को सुवर्ण पेटिका के समान गुप्त रखना चाहिए ।

विशेष—इस क्रिया के साथ-साथ एक-दो और यौगिक क्रियाएँ करने से नेत्रों के अनेक दोष दूर हो जाते हैं । इस क्रिया का कम से कम ४० दिन निरन्तर अभ्यास करने
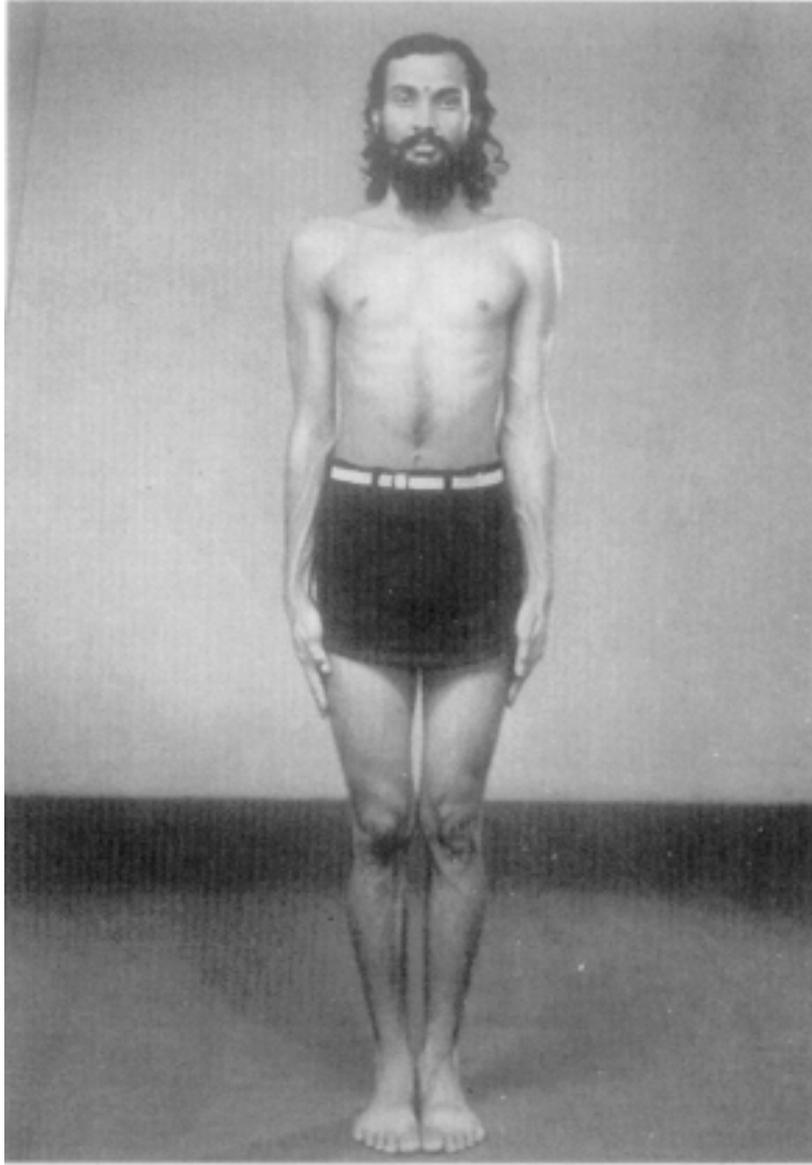
चित्र नं० ५ क्रिया नं० ४

स्मरण-शक्ति-विकासक नामक चौथी क्रिया की स्थिति और क्रिया। इसमें सहस्त्रारविन्द में धारणा रखकर डेढ़ गज की दूरी पर देखते हुए श्वास-प्रश्वास किया जा रहा है।
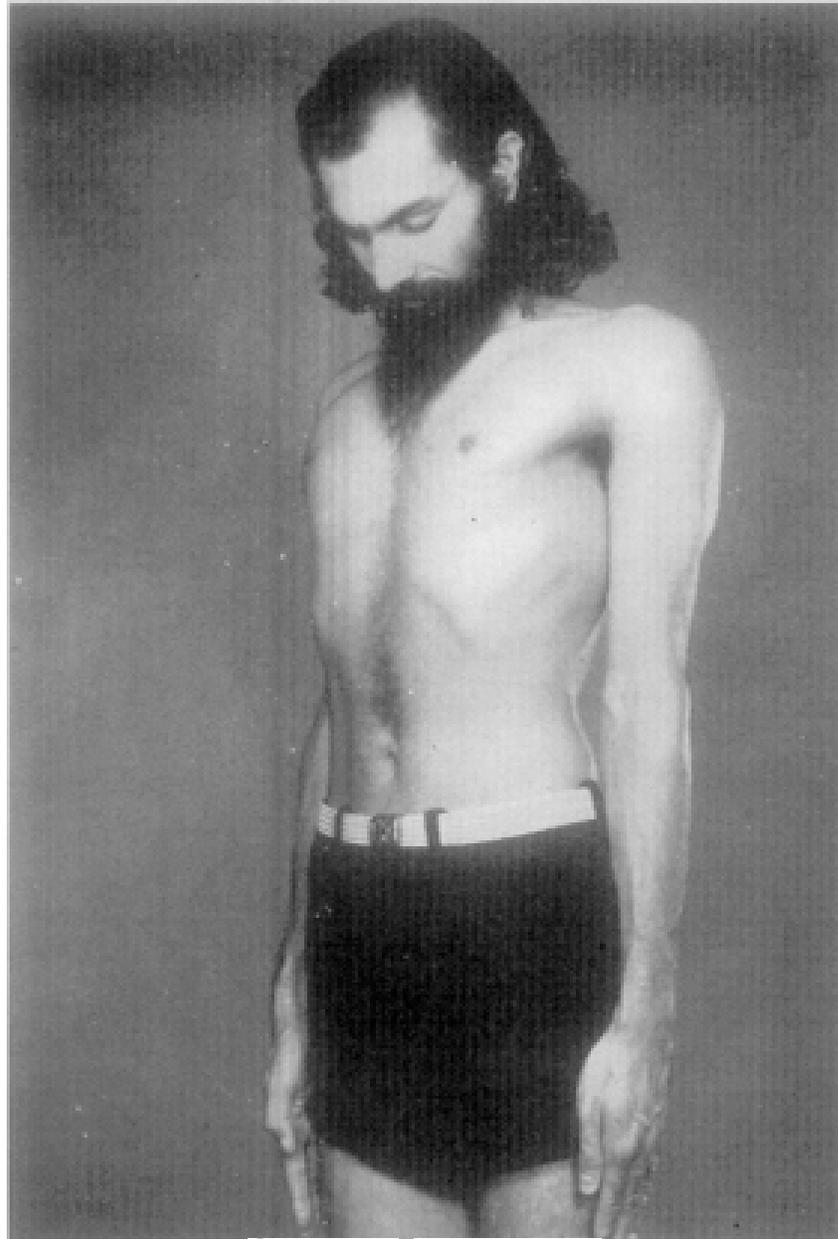
चित्र नं० ६ क्रिया नं० ५

मेधाशक्ति-विकासक नामक पाँचवीं क्रिया की स्थिति और क्रिया। इसमें ग्रीवा के पीछे गढ़ीले स्थान पर धारणा रखते हुए श्वास-प्रश्वास किया जा रहा है।
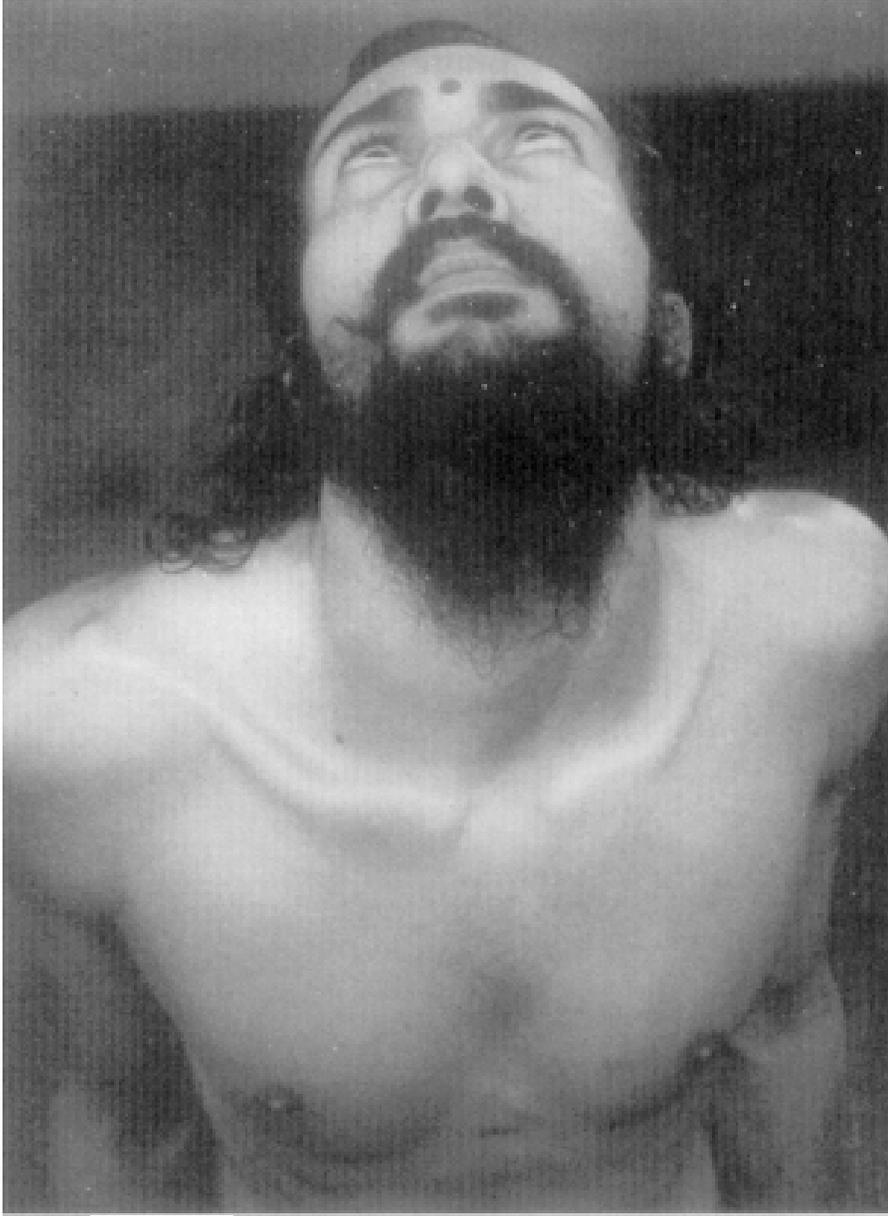
चित्र नं० ७ क्रिया नं० ६

नेत्रशक्ति-विकासक नामक छठी क्रिया की स्थिति और क्रिया। इसमें दोनों नेत्रों से भ्रूमध्य में निर्निमेष देखा जा रहा है।
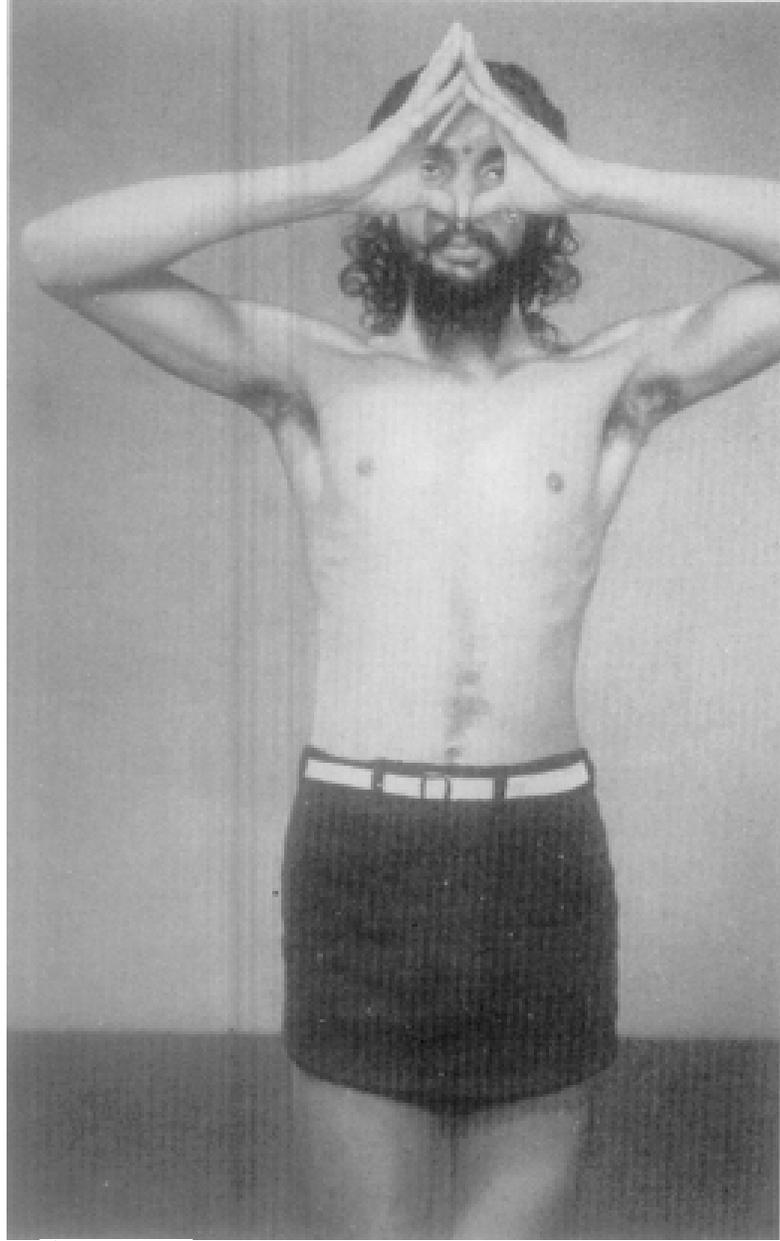
चित्र नं० ८ क्रिया नं० ७

कपोलशक्ति-वर्धक नामक सातवीं क्रिया की स्थिति। इसमें मुख को कौए की चोंच की भाँति बनाकर वेग से श्वास अन्दर खींच रहे हैं।

से उपनेत्र (चश्मा) लगानेवालों को ग्रायनक लगाने की ग्रावश्यकता नहीं रहती तथा स्वाभाविक नेत्रदृष्टि प्राप्त होती है।

७—कपोल-शक्ति-वर्द्धक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर दोनों हाथों की ग्राठों ग्रँगुलियों के ग्रग्रभाग को ग्रापस में मिलाकर दोनों ग्रँगूठों से दोनों नासिकारन्ध्रों को बन्द करके खड़े रहें। चित्र नं० ८ देखें।

क्रिया—मुख को कौवे की चोंच के सदृश बनाकर बाहर की वायु को सुर-सुर शब्द करते हुए बलपूर्वक ग्रन्दर खींचें। श्वास खींचते समय दोनों नेत्र खुले रहने चाहिए। तत्पश्चात् गालों को पूर्ण फुलाकर नेत्रों को बन्द करके ठुड्डी कण्ठकूप से लगावें। यथा-साध्य कुम्भक करने के पश्चात् ग्रीवा को समावस्था में लाकर दोनों नेत्रों से सामने देखते हुए नासिकारन्ध्रों द्वारा ग्रन्दर की वायु धीरे-धीरे बाहर निकालें। ग्रारम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ९ देखें।

लाभ—इस क्रिया के ग्रभ्यास से कपोलों पर लाली छा जाती है, किसी प्रकार के बाहरी सौन्दर्य-प्रसाधन की ग्रावश्यकता नहीं रहती। दाँतों की पुष्टि होती है। पायरिया, पीप ग्रादि मुख के सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं। मुख से दुर्गन्ध ग्रादि के दोष कुछ ही दिनों के ग्रभ्यास से बिलकुल दूर हो जाते हैं। चेहरे पर ग्रद्भुत कान्ति तथा ग्राकर्षण ग्राता है। पिचके तथा झुर्रियाँ पड़े गाल भर जाते हैं ग्रौर उनकी स्वाभाविक ग्रवस्था ग्रा जाती है। कपोलों पर होनेवाले मुहाँसे, फुन्सियाँ इत्यादि का निकलना बन्द हो जाता है। योगशास्त्र के ग्रन्थों में इस क्रिया का विशिष्ट वर्णन है :—

काकचञ्चुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैःशनैः।
काकी मुद्रा भवेदेषा सर्वरोगविनाशिनी॥

ग्रर्थात्—ग्रपने मुख को कौवे की चोंच के समान बनाकर धीरे-धीरे वायु को पीवें। इसे काकी मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा सभी रोगों को दूर करनेवाली है। ग्रौर भी कहा है :—

काकी मुद्रा परा मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
अस्याः प्रसादमात्रेण काकवन्नीरुजो भवेत्॥

ग्रर्थात्—यह काकी मुद्रा बहुत उत्तम है ग्रौर सब तन्त्रों में गुप्त है। इसके ग्रभ्यास से मनुष्य काक की भाँति रोग-रहित ग्रौर दीर्घायु हो जाता है।

प्रायः देखा जाता है कि गर्मी के मौसम में कौआ उड़ते-उड़ते जब प्यास से व्याकुल हो जाता है, तब चोंच खोलकर वायु पीने लगता है। इससे उसकी प्यास शान्त हो जाती है। इस प्रकार वायु पीने से अमृत के सूक्ष्म कण प्राप्त होते हैं, जिससे कौआ दीर्घायु हो जाता है। इसे यदि मनुष्य विधिपूर्वक करे, तो अनेक प्रकार के सिर-दर्द, मुख सूखना, पेट की गर्मी, नेत्रों के रोग, प्रमेह आदि दोष दूर होकर अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है। सिर से लेकर मूलाधार तक सभी नाड़ियों को तरावट तथा शक्ति मिलती है।

८—कर्ण-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर खड़े रहें।

क्रिया—मुख बन्द करके दोनों अँगूठों से दोनों कर्णरन्ध्रों को बन्द करें। दोनों तर्जनी अँगुलियों से दोनों नेत्र बन्द करें। दोनों मध्यमा अँगुलियों से दोनों नासिकारन्ध्रों को बन्द करें। दोनों अनामिका तथा दोनों कनिष्ठिका अँगुलियों से मुख बन्द करें। फिर मुखको कौवे की चोंच के सदृश बनाकर (चित्र नं० १० की भाँति) बाहर की वायु को अन्दर खींचकर गाल फुलाते हुए जालन्धर बन्द लगावें। यथाशक्ति कुम्भक करने के बाद ग्रीवा को समावस्था में लाते हुए दोनों नेत्रों को खोलकर धीरे-धीरे अन्दर की वायु को बाहर निकालें। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ११ देखें।

विशेष—कुम्भक के समय गाल पूर्णतया फूले रहेंगे।

लाभ—इस क्रिया के अभ्यास से कान में होनेवाले कर्णमूलादि समस्त रोगों की निवृत्ति होती है। श्रवण-शक्ति की वृद्धि एवं बहरापन दूर होता है और अविकसित कर्णरन्ध्रों की शक्तियाँ जागृत होती हैं। कहा भी है :—

श्रवणपुटनयनयुगलघ्राणमुखानां निरोधनं कार्यम्।
शुद्धसुषुम्णासरणौ स्फुटममलः श्रूयते नादः॥

अर्थात्—दोनों कान, दोनों नासिकारन्ध्रों, दोनों नेत्रों और मुखद्वार का निरोध करने पर सुषुम्णा का मार्ग शुद्ध हो जाता है तथा शुद्ध नाद सुनाई पड़ते हैं।

९—ग्रीवा-शक्ति-विकासक (१)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर खड़े रहें।
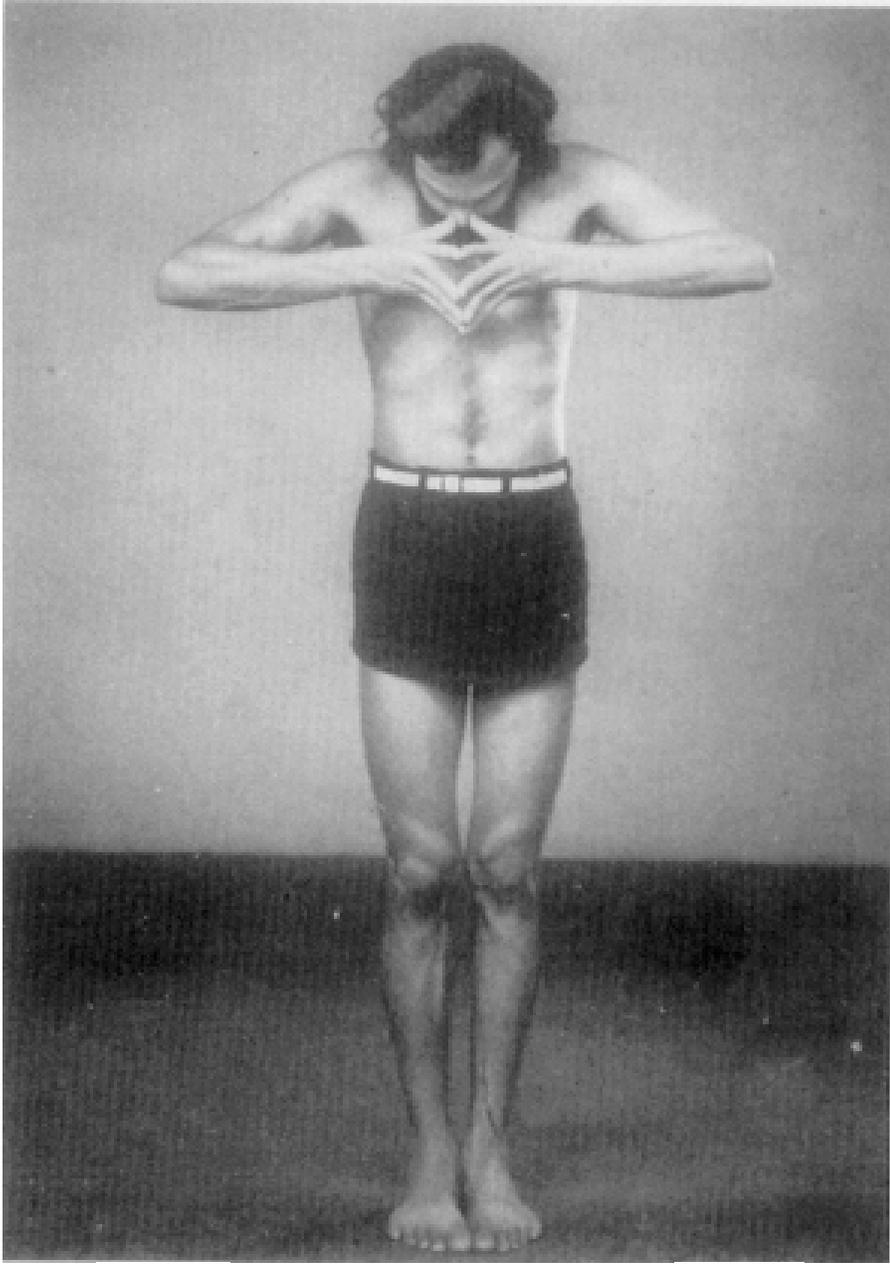
चित्र नं० ६ क्रिया नं० ७

कपोलशक्ति-वर्धक नामक सातवीं क्रिया। इसमें ठुड्डी को कण्ठकूप से लगा कर नेत्र बन्द करके कुम्भक कर रहे हैं।
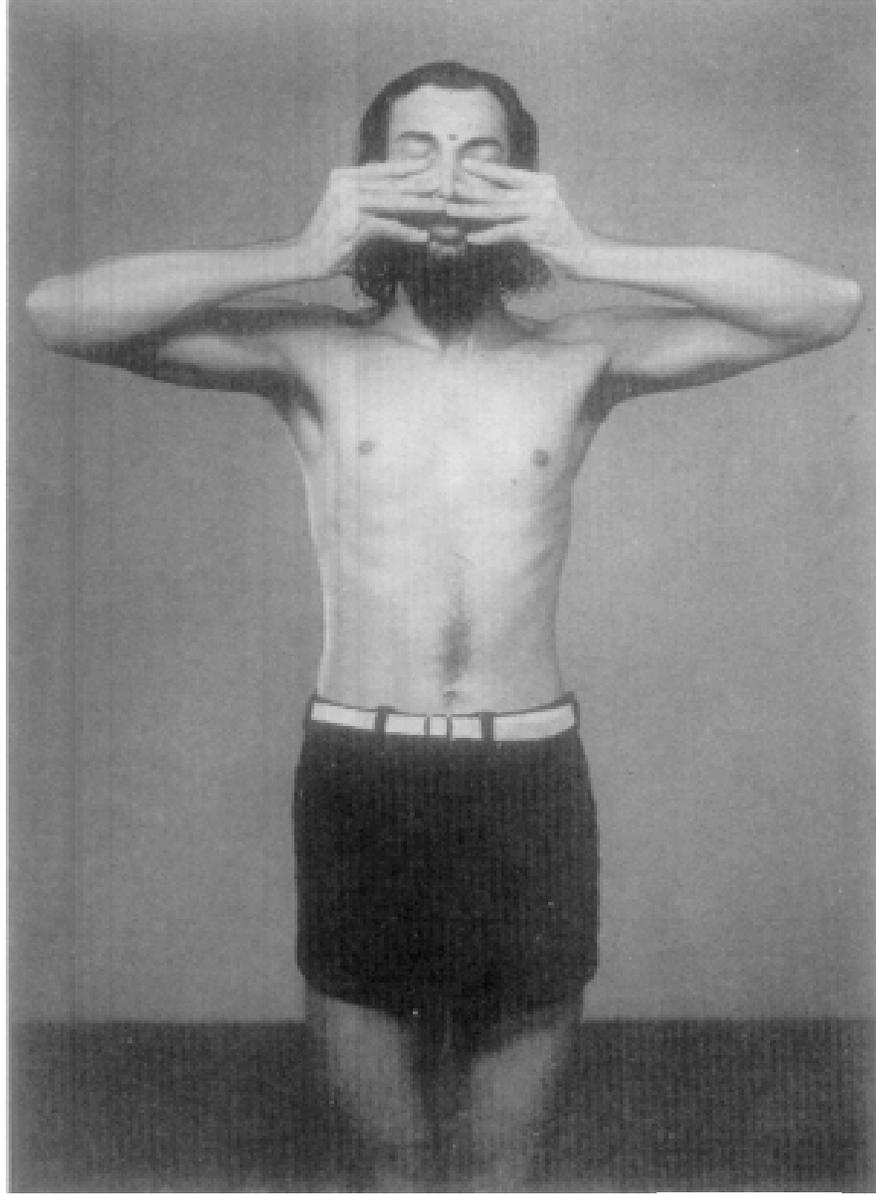
चित्र नं० १०　　　　　　　　　　　　　　　　क्रिया नं० ८

कर्णशक्ति-विकासक नामक आठवीं क्रिया की स्थिति। इसमें नेत्र, कान, नाक, मुख, सबको बन्द करते हुए, पुनः मुख को कौए की चोंच की नाईं बना कर वायु खींच रहे हैं।
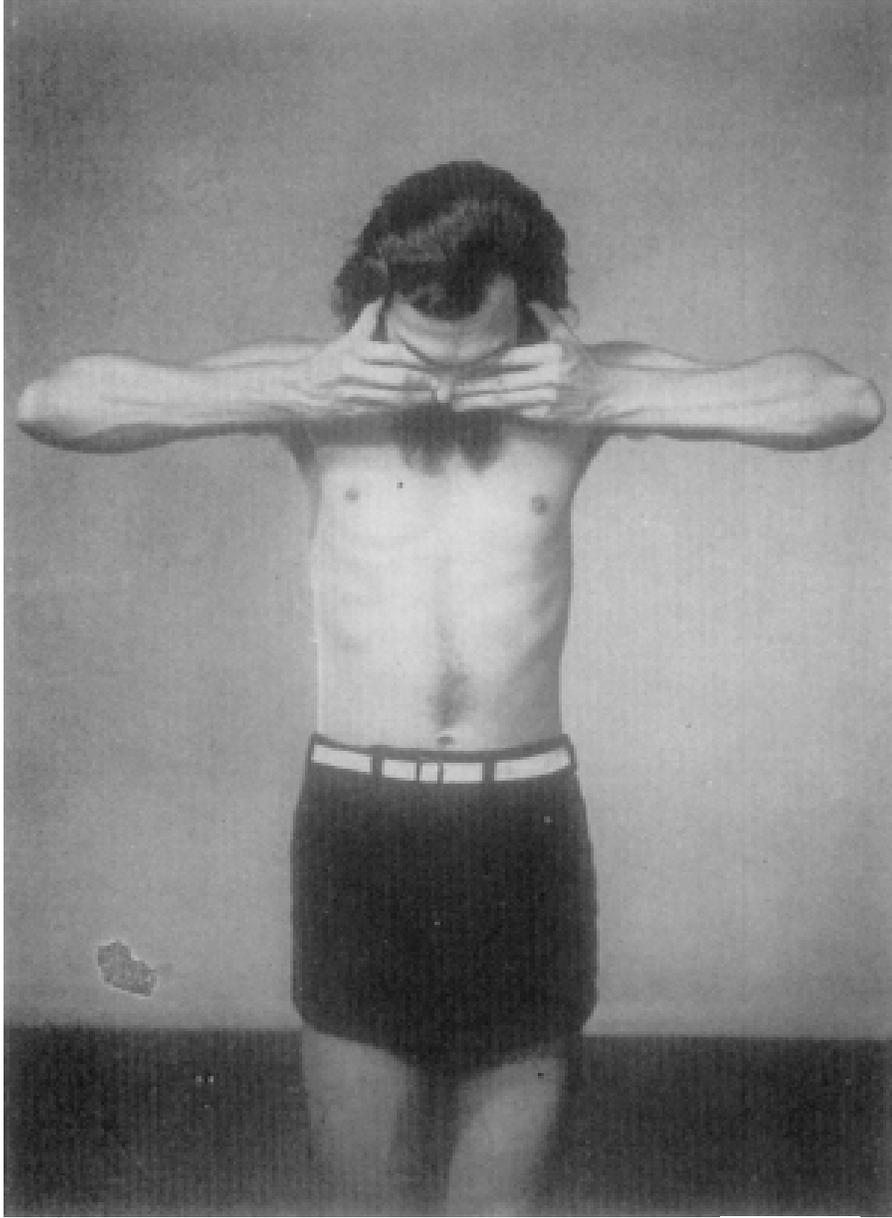
चित्र नं० ११ क्रिया नं० ८

कर्णशक्ति-विकासक नामक आठवीं क्रिया की जा रही है। इसमें गाल फुला कर कुम्भक किया जा रहा है।
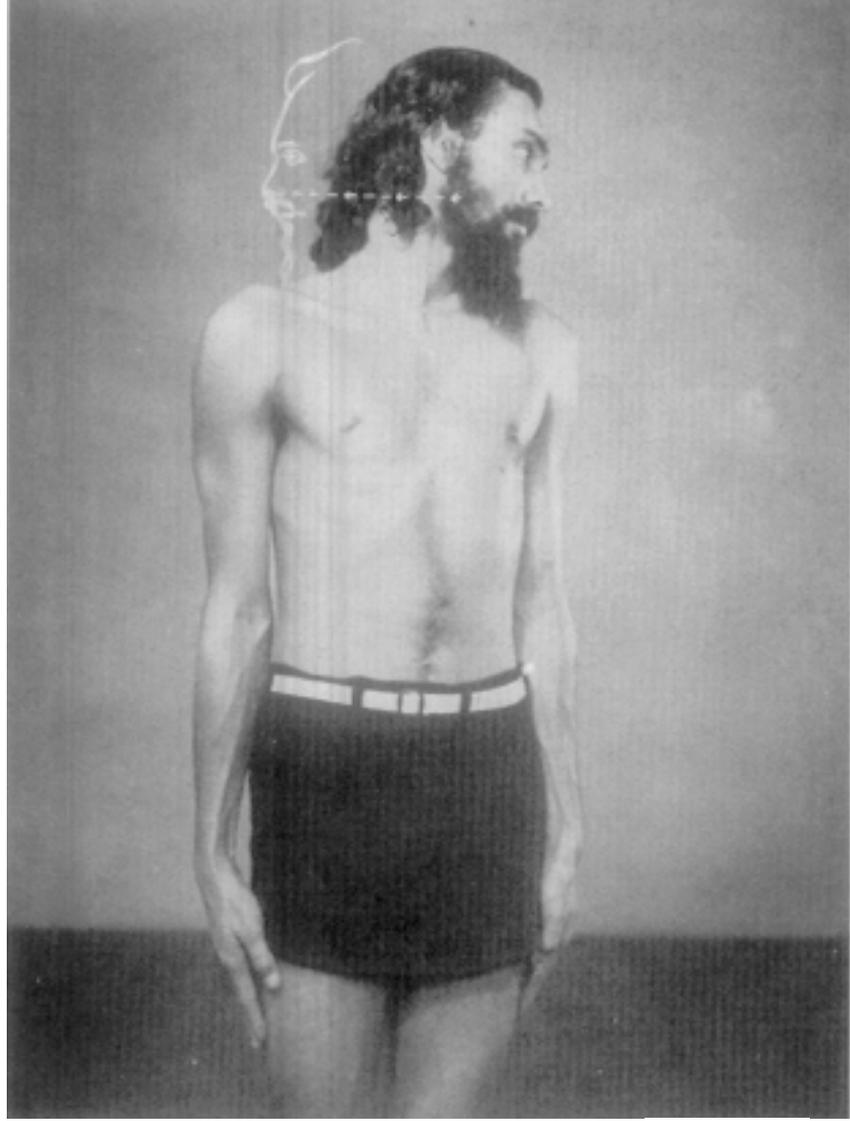
चित्र नं० १२ क्रिया नं० ९

ग्रीवाशक्ति-विकासक नामक नवीं क्रिया (क) की जा रही है। इसमें झटकेसे सिर को दायें-बायें ले जाया जा रहा है।

क्रिया (क)—ग्रीवा को ढीला करके क्रम से दायीं ओर तथा बायीं ओर झटका दें आरम्भिक क्रम १० बार। चित्र नं० १२ देखें।

क्रिया (ख)—पूर्व परिस्थिति में खड़े होकर ग्रीवा को झटके के साथ क्रमशः आगे तथा पीछे ले जायँ। जब झटके से ग्रीवा पीछे जावे, तो ग्रीवा का पृष्ठभाग पीछे मिल जाये, आगे झटका देने पर ठुड्डी कण्ठकूप से मिले। श्वास साधारण रहे। आरम्भिक क्रम १० बार। चित्र नं० १३ देखें।

१०—ग्रीवा-शक्ति-विकासक (२)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए मुख बन्द रहे तथा नेत्र खुले हुए रहें।

क्रिया—ठुड्डी को कण्ठकूप से लगाकर गले को बलपूर्वक कड़ा करते हुए बायीं ओर से आवृत्ताकार घुमाते हुए पूर्व स्थिति में आ जायँ। पुनः दाईं ओर से आवृत्ताकार घुमाते हुए पूर्व स्थिति में आ जायँ। श्वास की गति साधारण रहेगी। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० १४ देखें।

विशेष—ध्यान रहे कि क्रिया करते समय स्कन्ध ऊपर न उठे और गले को घुमाते समय कानों को स्कन्ध से मिलाने का प्रयत्न करें।

११—ग्रीवा-शक्ति-विकासक (३)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिका-रन्ध्रों से बलवेगपूर्वक श्वास-प्रश्वास इस प्रकार करें कि क्रिया करते समय गले की सारी नसें दिखलाई पड़ें, और जब श्वास खींचें, तब पेट फूले तथा जब श्वास छोड़ें, तब पेट पिचके। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० १५ देखें।

लाभ—उपर्युक्त ग्रीवा की तीनों क्रियाओं से ग्रीवा सम्बन्धी सारे दोष दूर होते हैं। ग्रीवा की स्थूलता नष्ट हो जाती है। इस क्रिया के अभ्यास से ग्रीवा सुन्दर, सुडौल तथा आकर्षक हो जाती है। गले के सारे विकार नष्ट हो जाते हैं। गले पड़ना (टान्सिल) कण्ठमाला, गलगण्ड, हंजीरा आदि बिना ऑपरेशन के ही ठीक हो जाते हैं। कण्ठ का

स्वर मधुर तथा सुरीला हो जाता है। तुतलापन तथा रुक-रुककर बोलनेवालों को ठीक करने में ये क्रियाएँ अद्वितीय हैं। इन क्रियाओं के साथ-साथ दो-तीन और क्रियाओं के निरन्तर अभ्यास से गूँगापन तथा गले के सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं। संगीत का अभ्यास करनेवालों के लिए ये क्रियाएँ परम उपयोगी हैं।

१२—स्कन्ध तथा बाहुमूल-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर इस प्रकार मुट्ठी बाँधकर खड़े हों कि अँगूठे मुट्ठियों के अन्दर रहें।

क्रिया—मुख को कौए की चोंच की नाईं बनाकर बाहर की वायु को भीतर खींचते हुए गाल फुलाकर ठुड्डी कण्ठकूप में लगावें। फिर दोनों भुजाओंको कड़ा करके बल-वेग-पूर्वक ऊपर-नीचे ले जायँ, जिस प्रकार साइकिल में पम्प द्वारा हवा भरते हैं। परन्तु इसमें क्रिया करते समय भुजाएँ सीधी ही रहें तथा स्कन्ध यथासाध्य ऊपर-नीचे जायँ। क्रिया के समय में श्वास रोके रखें। तत्पश्चात् गला सीधा करके पूर्व स्थिति में आकर नेत्र खोलें और नासिकारन्ध्रों से धीरे-धीरे वायु निकाल दें। इसी प्रकार इस क्रिया को बार-बार करें। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० १६ देखें।

लाभ—इस क्रिया के अभ्यास से स्कन्ध की हड्डियाँ, माँस-पेशियाँ, नस-नाड़ियाँ शुद्ध एवं सुडौल होकर अंग-प्रत्यंग की पुष्टि करती है।

१३—भुजबन्ध-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर इस प्रकार मुट्ठियाँ बाँधें कि अँगूठे अन्दर रहें। भुजाओं को कोहनी से इस प्रकार मोड़ें कि ९०° का कोण बन जाय। चित्र नं० १७ देखें।

क्रिया—दोनों हाथ बलवेगपूर्वक वक्षःस्थल के सामने झटके से ले जावें तथा पीछे ले आवें। पीछे आते समय कोहनी पूर्व स्थिति से किंचित् भी पीछे न जावे। आगे बढ़ाते समय भुजाएँ पृथ्वी के समानान्तर रहें तथा मुट्ठियाँ सीधी रखें। अँगूठे का भाग ऊपर की ओर रहे। क्रिया करते समय श्वास की गति साधारण ही रहेगी। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० १८ देखें।
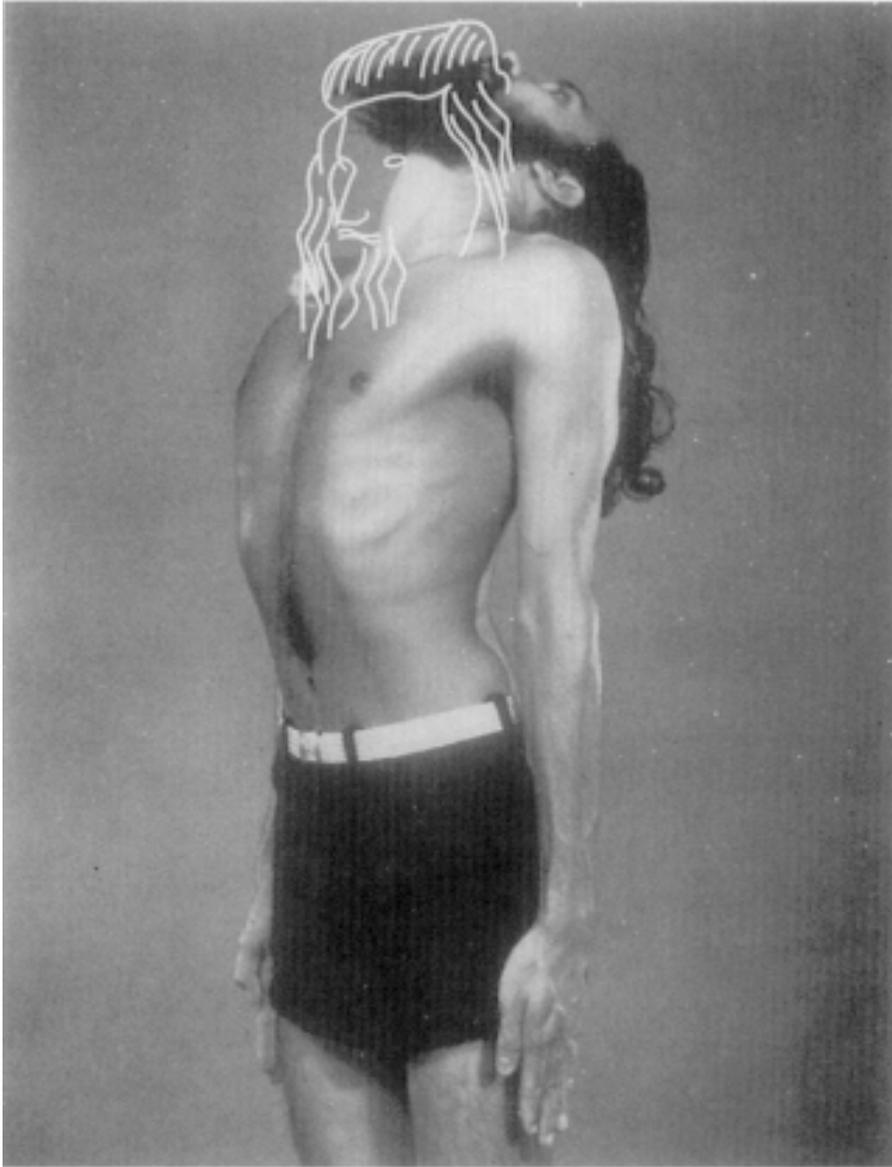
चित्र नं० १३ क्रिया नं० ९

ग्रीवाशक्ति-विकासक नामक नौवीं क्रिया का (ख) भाग।
इसमें झटके से सिर को आगे-पीछे ले जाया जा रहा है।
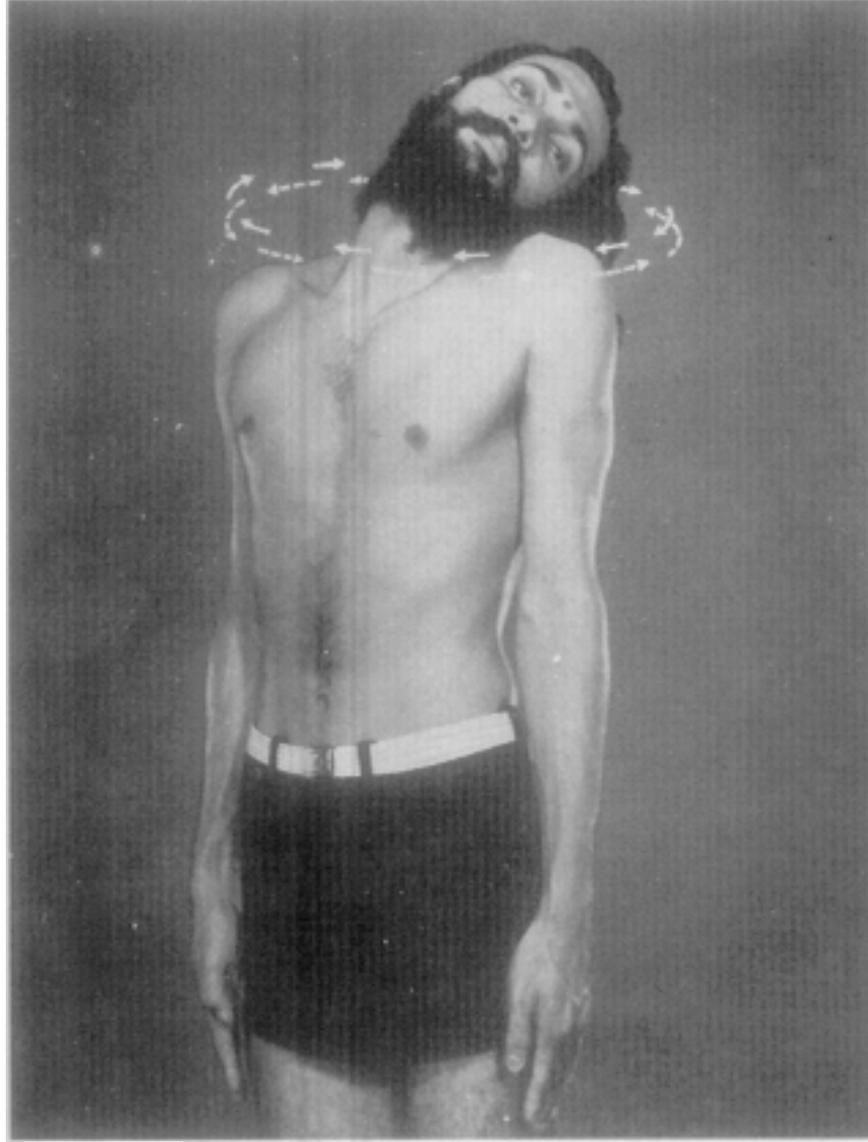
चित्र नं० १४ क्रिया नं० १०

ग्रीवा-शक्ति-विकासक नामक दसवीं क्रिया। इसमें ग्रीवा-सहित सिर को बायें से दायें और दायें से बायें बलपूर्वक चक्राकार घुमाया जा रहा है।
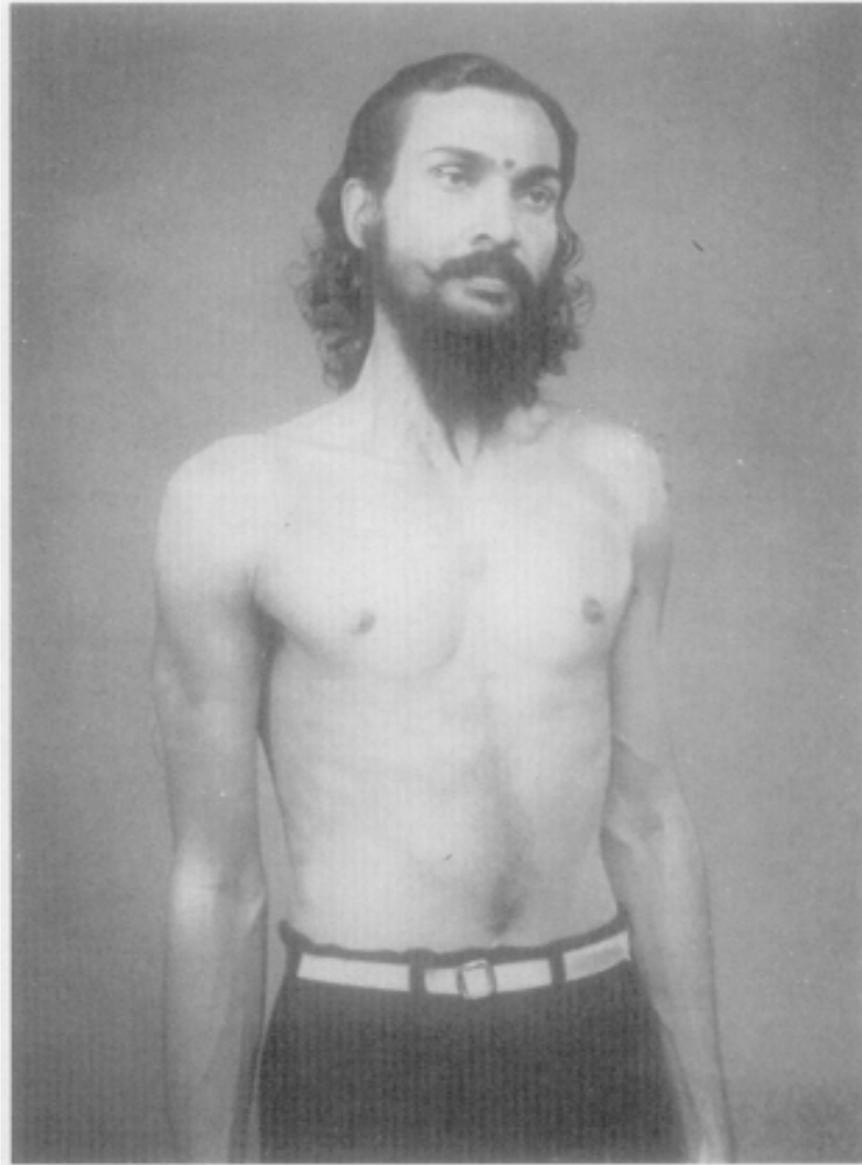
चित्र न० १५ क्रिया नं० ११

ग्रीवा-शक्ति-विकासक नामक ग्यारहवीं क्रिया। इसमें पेट को श्वास-प्रश्वास सहित फुलाते-पिचकाते हुए ठुड्डी को उत्तान देकर गले की नसें उभारी जा रही हैं।
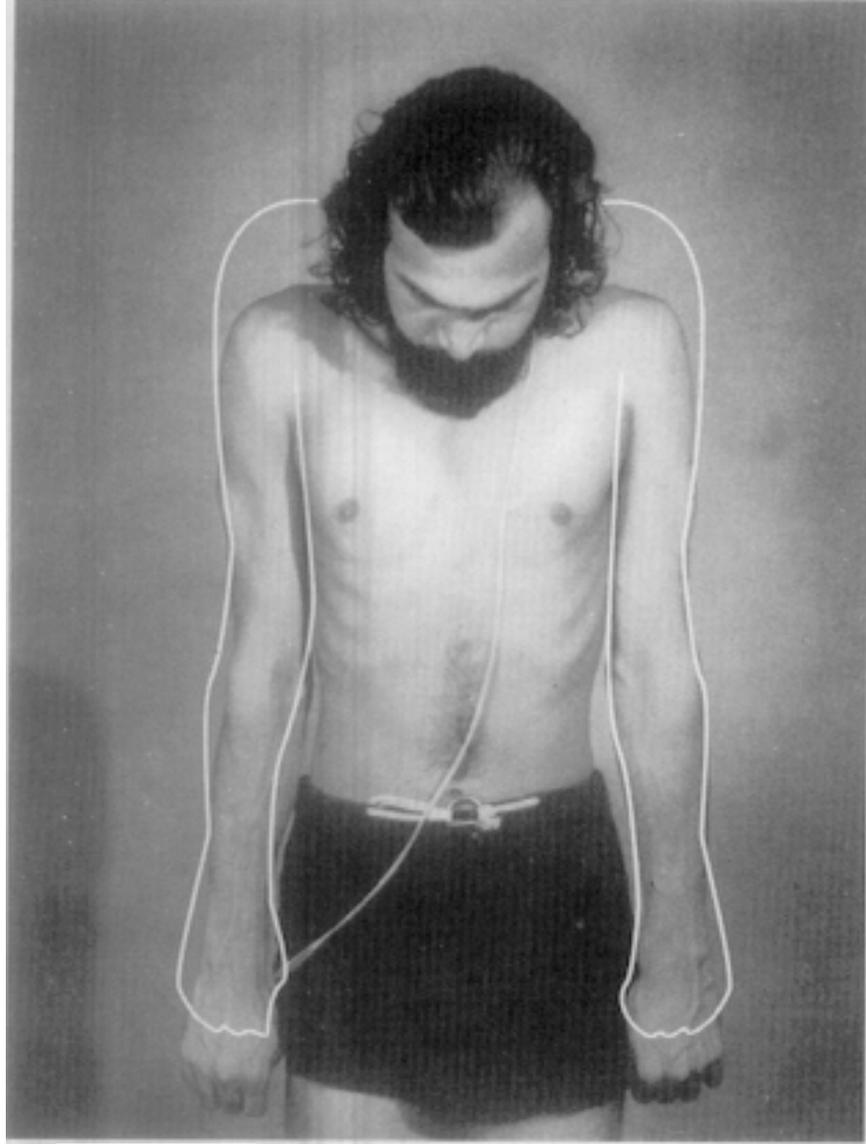
चित्र नं० १६ क्रिया न० १२

स्कन्ध तथा बाहुमूल-शक्तिवर्धक नामक बारहवीं क्रिया। इसमें श्वास भरकर कुम्भक करते हुए स्कन्ध विभाग को तीव्रता से ऊपर-नीचे ले जाया जा रहा है।
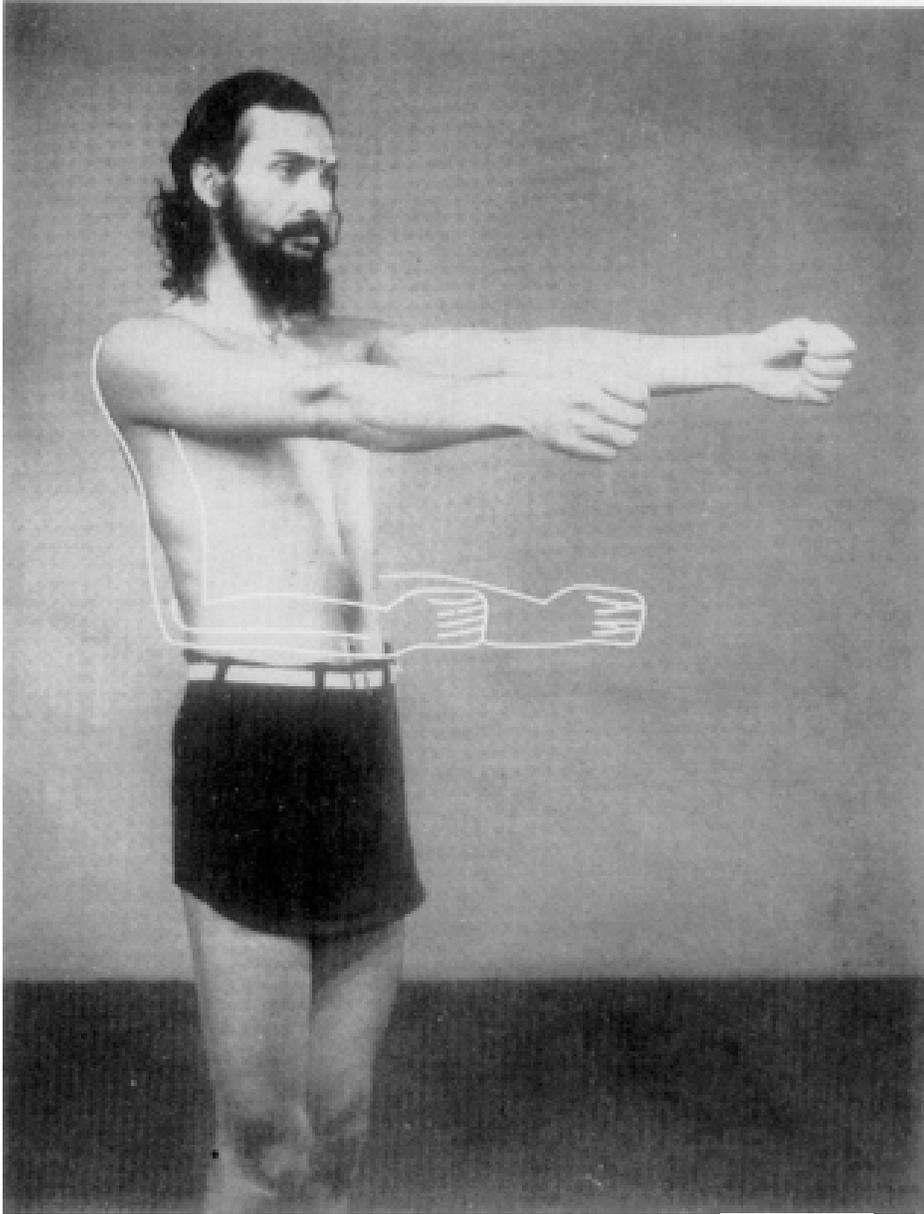
चित्र नं० १७ क्रिया नं० १३

भुजबन्ध-शक्ति-विकासक नामक तेरहवीं क्रिया की स्थिति। इसमें भुजबन्ध तथा भुजबल्ली को इस प्रकार स्थित किया है कि ९०° का कोण बन गया है।
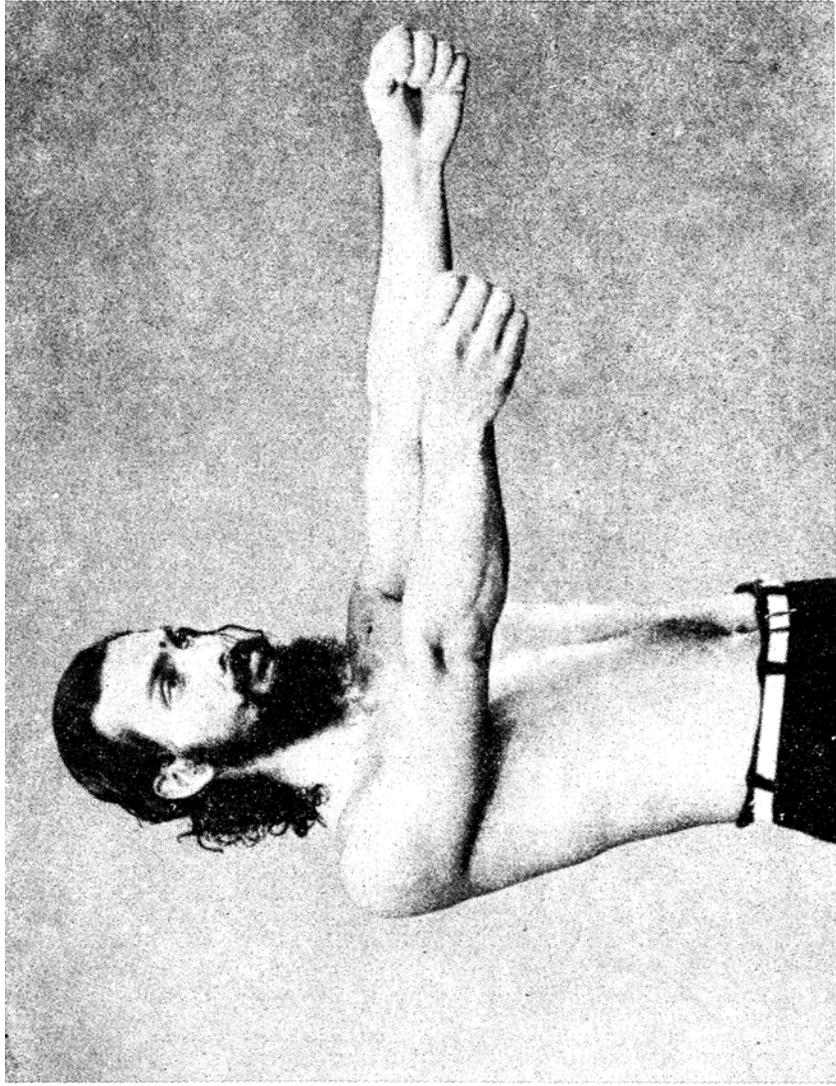
चित्र नं० १८ भुजबन्ध-शक्ति-विकासक नामक तेरहवीं क्रिया। इसमें झटके के साथ भुजाओं को बार-बार वक्षःस्थल के सामने किया गया है। क्रिया नं० १३

लाभ--इस क्रिया के अभ्यास से विकृत, दुर्बल, अति स्थूल आदि भुजाएँ हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर तथा सुडौल बनती हैं। भुजबन्ध में अपूर्व बल आता है। भुजा तथा स्कन्ध के सारे दोष दूर होते हैं। इस क्रिया के निरन्तर अभ्यास से भुजाएँ शुण्डाकार बनकर आकर्षक हो जाती हैं। मिलिट्री, पुलिस तथा लाठी आदि चलानेवालों के लिए यह क्रिया परम उपयोगी है।

१४--कोहनी-शक्ति विकासक

स्थिति (क)--पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए इस प्रकार ढीली मुट्ठियाँ बाँधें कि अँगूठे अन्दर रहें। तत्पश्चात् दोनों हाथों को इस प्रकार रखें, जैसे चित्र नं० १९ में हैं।

क्रिया (क)--कोहनी से अग्रभाग को झटके से इस प्रकार ऊपर लावें, जैसा चित्र नं० २० में है। नीचे लाते समय हाथ पूर्व स्थिति के समान ही रखें। आरम्भिक क्रम २५ बार।

स्थिति (ख)--पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए दोनों हाथ इस प्रकार खुले रखें कि अँगुलियाँ आपस में सटी रहें तथा करतल सामने की ओर रहें, जैसे चित्र नं० २१ में हैं।

क्रिया (ख)--क्रिया (क) की भाँति ही कोहनी से अग्रभाग को ऊपर लावें तथा नीचे ले जायें, जैसा चित्र नं० २२ में है।

विशेष--ध्यान रहे कि क्रिया करते समय भुजबल्ली स्कन्ध तक आये और नीचे जाते समय भुजबल्ली पूर्णतया नीचे आ जाये। भुजबन्ध अपने स्थान पर ही रहें। हाथ ऊपर-नीचे जाते समय स्कन्ध तथा जंघाओं से स्पर्श न करें।

लाभ--इस क्रिया के अभ्यास से कोहनी के दोष दूर होते हैं। हड्डियों के जोड़ पुष्ट होते हैं। नस-नाड़ियों में रक्त का भली-भाँति संचार होने लगता है। कोहनी से अग्रभाग में अपूर्व शक्ति आती है। इस क्रिया के निरन्तर अभ्यास से महिलाओं की भुजा कोहनी से आगे सुन्दर गोलाकार बनती है तथा पुरुषों की भुजा पुष्ट, आकर्षक एवं किंचित् चपटी बनती है।

१५—भुजबल्ली-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए खड़े रहें।

क्रिया (क)—प्रथम दाहिने हाथ को शिथिल रखकर गिद्ध-पंख की भाँति बगल में ऊपर-नीचे ले जायँ। हाथ सीधे ऊपर जायँ, परन्तु इस क्रिया को करते समय सिर तथा जंघा से स्पर्श न हो। हाथ का पंजा खुला रहे। अँगुलियाँ आपस में सटी हुई हों। जब हाथ ऊपर जाये, तो करतल बाहर की ओर रहे। चित्र नं० २३ देखें।

क्रिया (ख)—इसी प्रकार बायें हाथ से भी यह क्रिया करें।

क्रिया (ग)—इसके अनन्तर दोनों हाथों से यही क्रिया करें। दोनों हाथ एक साथ ऊपर जायँ तथा नीचे आयँ। ध्यान रहे, दोनों हाथ आपस में न मिलें और सिर तथा जंघा से स्पर्श न करें। चित्र नं० २४ देखें।

लाभ—इस क्रिया को निरन्तर करते रहने से दस हजार मन वायु में जितनी शक्ति होती है, उतनी ही शक्ति हाथों में आ जाती है। भुजबल्लियाँ सुन्दर, सुडौल और पुष्ट होती हैं।

१६—पूर्णभुजा-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए मुट्ठी बाँधकर खड़े रहें।

क्रिया (क)—मुट्ठी बाँधकर दोनों नासिकारन्ध्रों से बाहर की वायु अन्दर खींच कर श्वास रोकते हुए, दाहिनी भुजा को आगे से ऊपर की ओर आवृत्ताकार घुमाते हुए, वक्षःस्थल के सम्मुख पृथ्वी के समानान्तर हाथ को सामने की ओर झटके के साथ फेंकें और साथ ही फुंकार के साथ वायु नासिका से निकाल दें। चित्र नं० २५ देखें।

क्रिया (ख)—फिर इसी हाथ की मुट्ठी बाँधकर क्रिया (क) की भाँति ही उल्टा घुमायें।

क्रिया (ग)—यही क्रिया बाएँ हाथ की मुट्ठी बाँधकर आगे की ओर से आवृत्ता-कार घुमाते हुए, वक्षःस्थल के सम्मुख पृथ्वी के समानान्तर लाते हुए, फुंकार के साथ भीतर की वायु बाहर फेंकें।
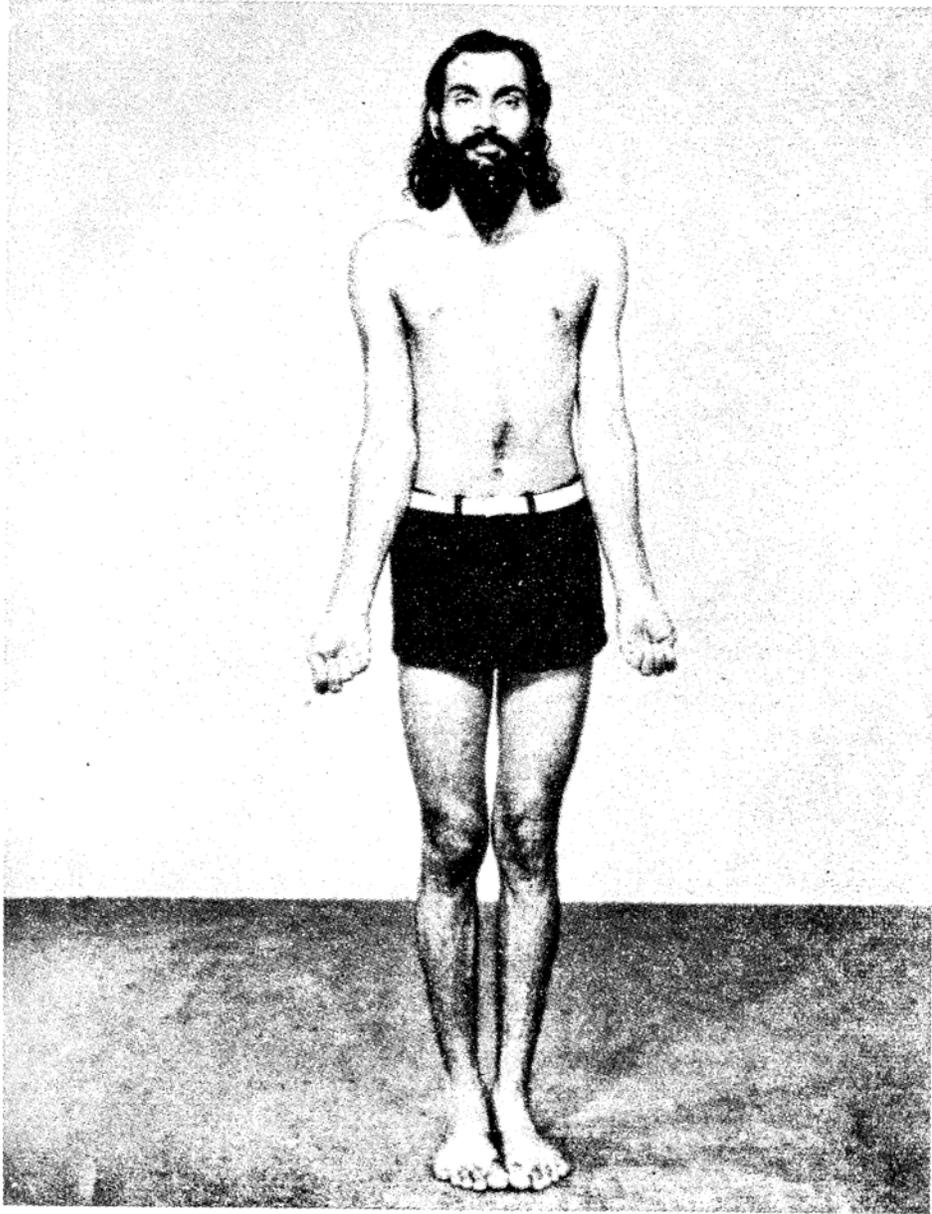
चित्र नं० १९ क्रिया नं० १४

कोहनी-शक्ति-विकासक नामक चौदहवीं क्रिया की स्थिति
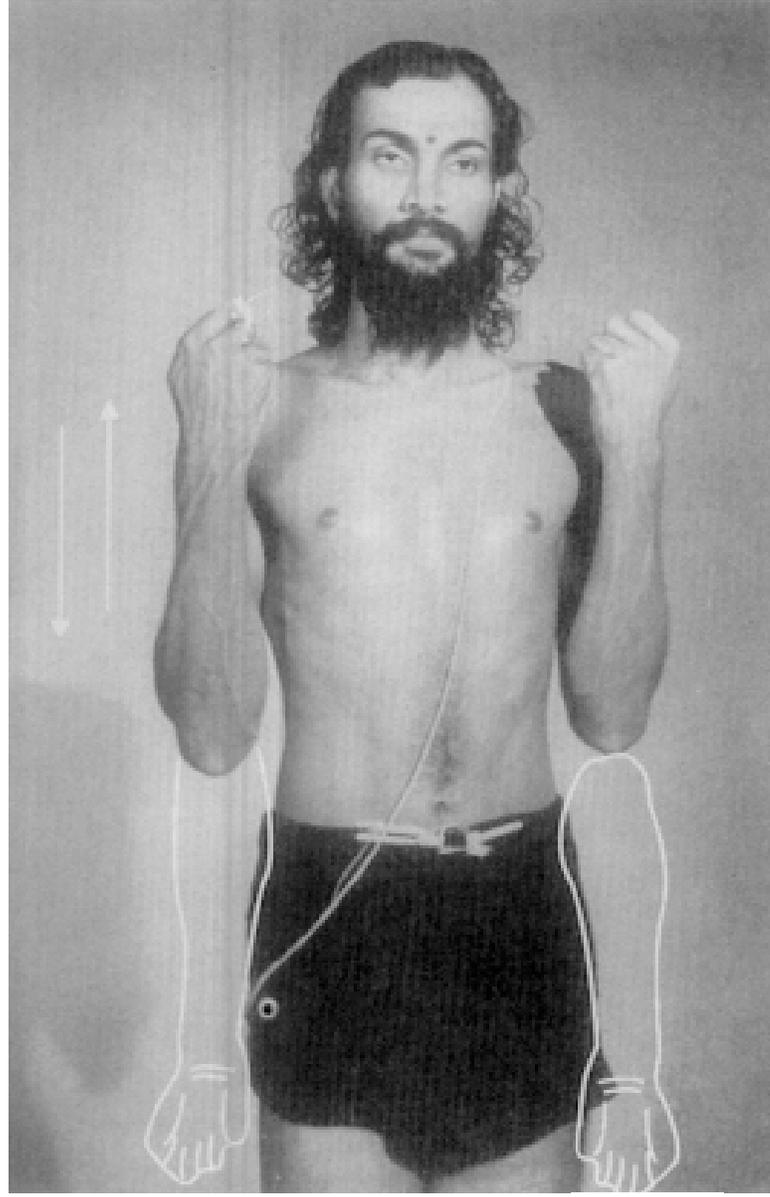
चित्र नं० २० क्रिया नं० १४

कोहनी-शक्ति-विकासक नामक चौदहवीं क्रिया। इसमें झटके के साथ भुजबल्लियों को भुजबन्ध के साथ बार-बार मिलाया जा रहा है।
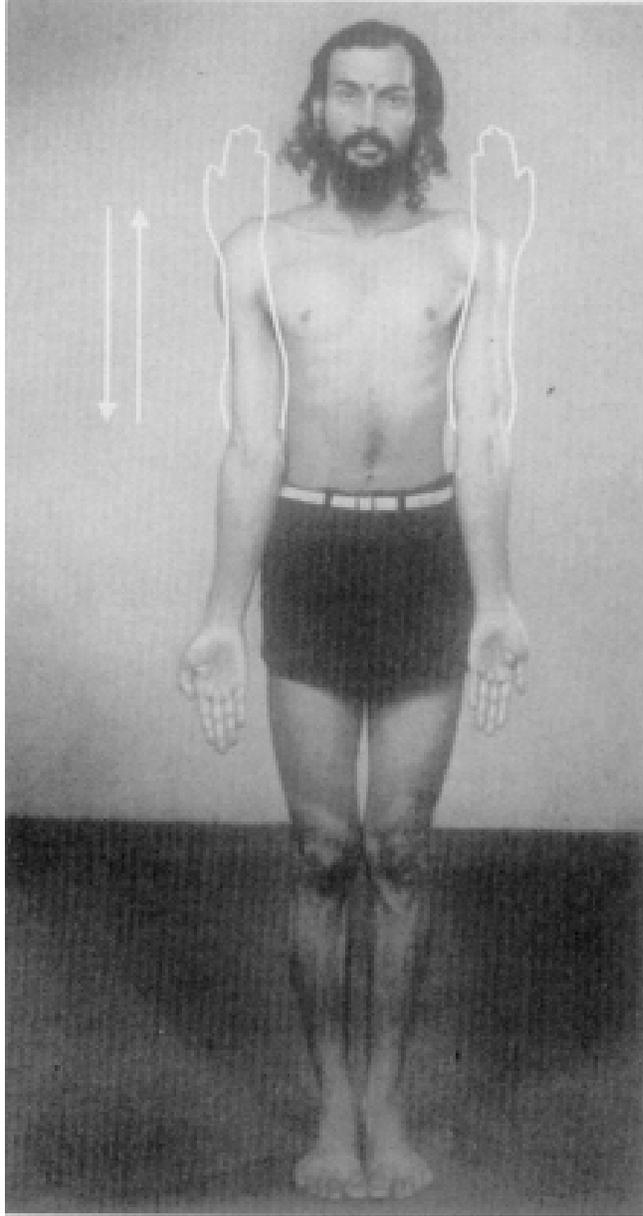
चित्र नं० २१ क्रिया नं० १४

कोहनी-शक्ति-विकासक नामक चौदहवीं क्रिया। इसमें अँगुलियों को खोलकर पूर्णरूप से सीधा किया गया है।

चित्र नं० २०　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　क्रिया नं० १४

कोहनी-शक्ति-विकासक नामक चौदहवीं क्रिया। इसमें झटके के साथ भुजवल्लियों को भुजबन्ध के साथ बार-बार मिलाया जा रहा है।
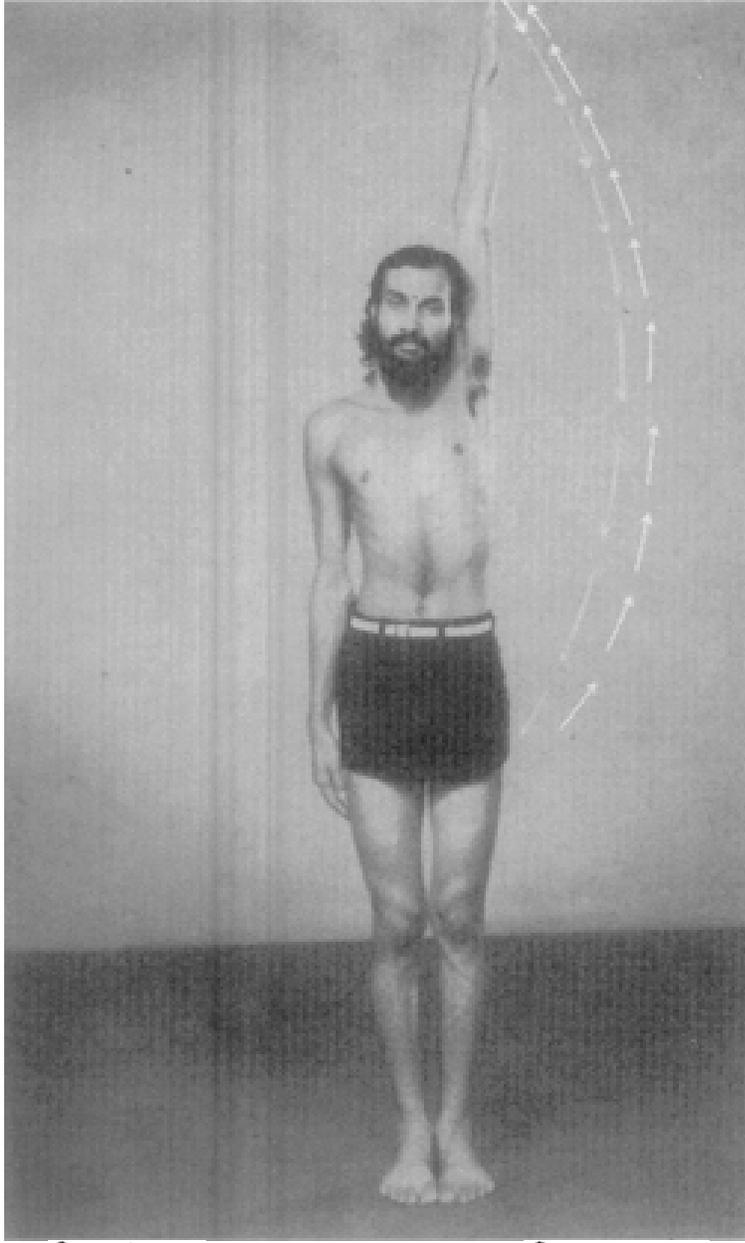
चित्र नं० २३ क्रिया नं० १५

भुजबल्ली-शक्ति-विकासक नामक पन्द्रहवीं क्रिया। इसमें हाथ को सीधा रखकर बार-बार पहले बाएँ हाथ को और फिर दाहिने हाथ को ऊपर-नीचे ले जाया जा रहा है।
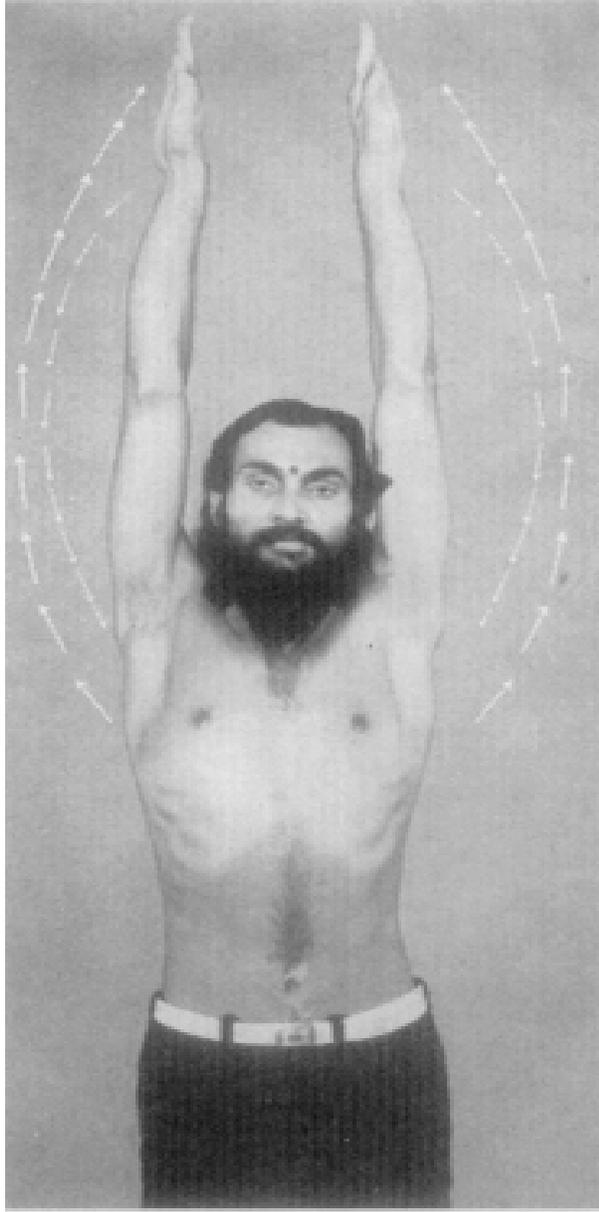
चित्र नं० २४ क्रिया नं० १५

भुजबल्ली-शक्ति-विकासक नामक पन्द्रहवीं क्रिया। इसमें दोनों हाथों को एक साथ ऊपर-नीचे ले जाया जा रहा है।
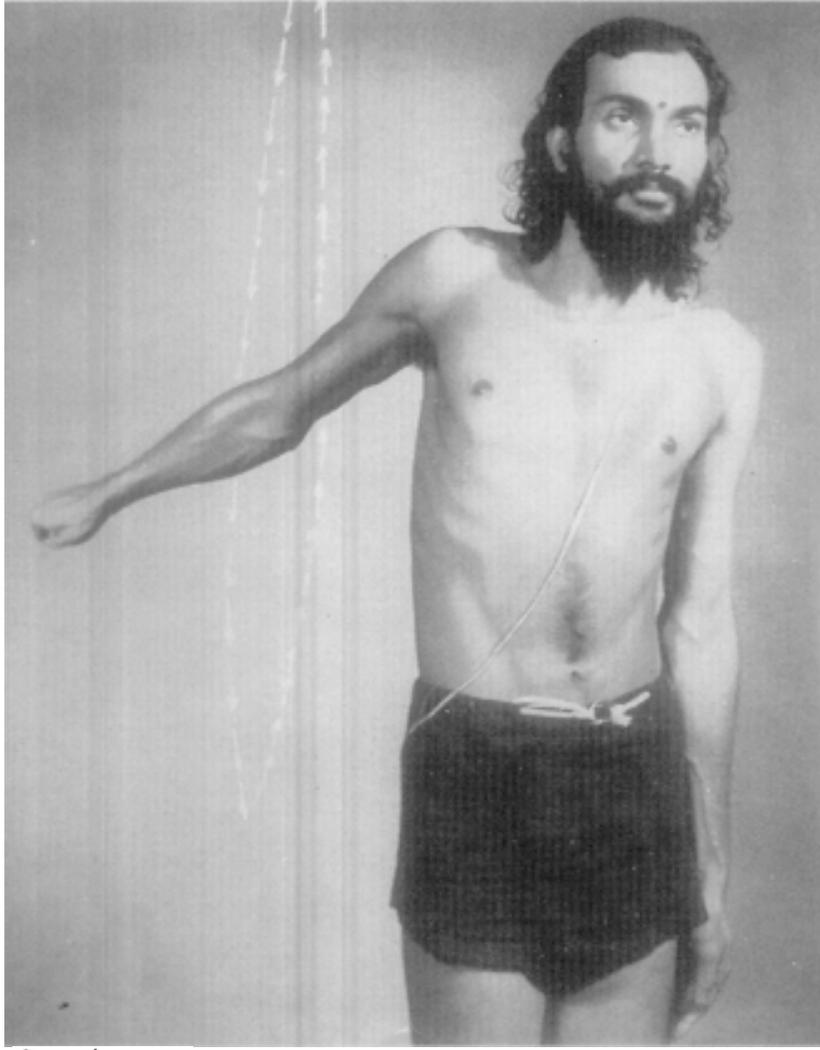
चित्र नं० २५ क्रिया नं० १६

पूर्णभुजा-शक्ति-विकासक नामक सोलहवीं क्रिया। इसमें नासिका से श्वास भरकर कुम्भक की स्थिति में भुजा को चक्राकार घुमाया जा रहा है।
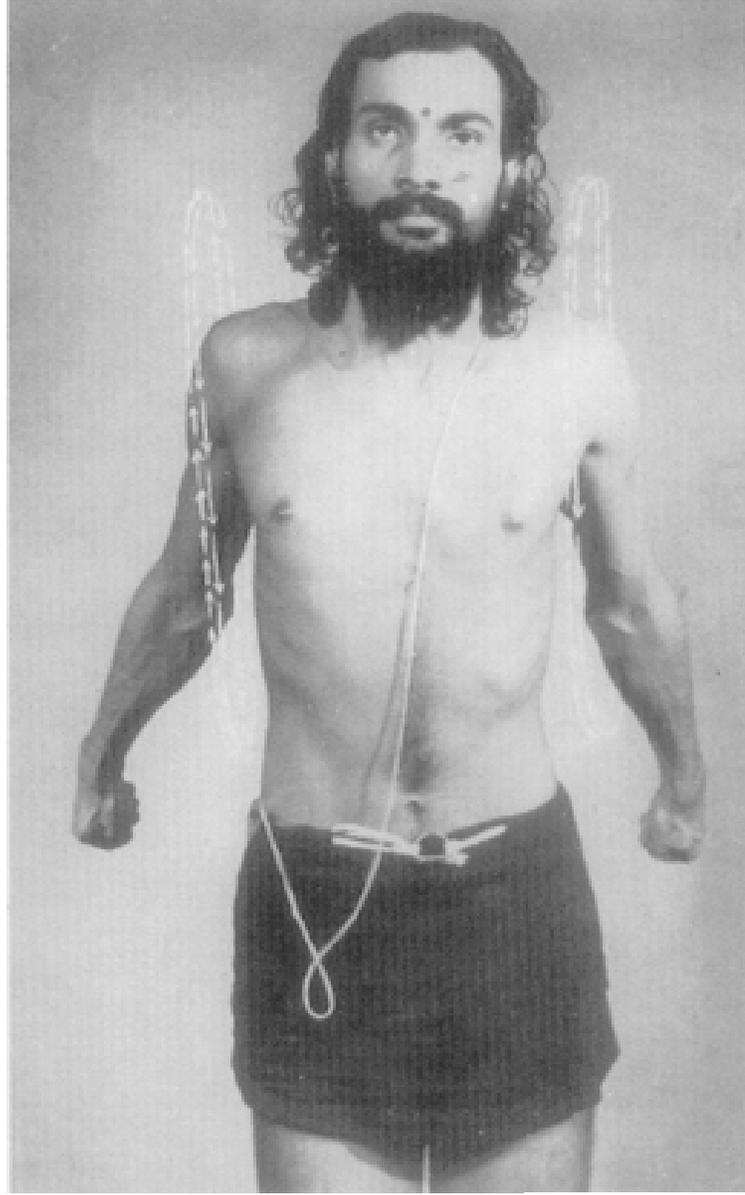
चित्र नं० २६ क्रिया नं० १६

पूर्णभुजा-शक्ति-विकासक नामक सोलहवीं क्रिया। इसमें नासिका से श्वास भरकर कुम्भक की स्थिति में दोनों भुजाओं को चक्राकार घुमाया जा रहा है।

क्रिया (घ)—फिर इसी हाथ की मुट्ठी बाँधकर क्रिया (ग) की भाँति ही उल्टा घुमायें।

क्रिया (ङ)—दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर आगे की ओर से आवृत्ताकार घुमाते हुए एक साथ ही वक्षःस्थल के सामने पृथ्वी के समानान्तर लाते हुए फुंकार के साथ भीतर की वायु को फेंकें।

क्रिया (च)—पुनः इस क्रिया में पहले की भाँति दोनों हाथों को विपरीत चक्राकार घुमावें। चित्र नं० २६ देखें।

लाभ—वायु की निवृत्ति तथा आन्तरिक नाड़ियों में पुष्टता आती है। हाथों के सौन्दर्य की वृद्धि होती है, कर मुलायम तथा सुडौल बनते हैं और भुजा पूर्णतया स्वाभाविक रूप से शक्तिसम्पन्न बन जाती है।

१७—मणिबन्ध (कलाई)-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर दोनों भुजाओं को वक्षःस्थल के सम्मुख पृथ्वी के समानान्तर सीने की चौड़ाई के समान फैलाते हुए खड़े रहें।

क्रिया (क)—ढीली मुट्ठी बाँधकर कलाई को बल के साथ ऊपर तथा नीचे लावें। नीचे लाते समय मुट्ठी का मुख भुजबल्ली से मिलाने का प्रयत्न करें और ऊपर लाते समय भी मुट्ठी के अग्रभाग को भुजबल्ली से मिलाने का प्रयत्न करें। भुजा यथासाध्य कड़ी रखें। आरम्भिक कम ५ बार। चित्र नं० २७ तथा २८ देखें।

क्रिया (ख)—भुजबन्ध को स्कन्ध के सम्मुख रखते हुए भुजबल्लियों को समेटकर वक्षःस्थल की ओर इस प्रकार लावें कि भुजबल्ली भुजबन्ध से कोहनी के स्थान पर ३५०° (तीन सौ पचास डिगरी) का कोण बन जाय। तत्पश्चात् कलाई को बल के साथ क्रिया (क) की भाँति ऊपर लायें तथा नीचे ले जायें। ध्यान रहे कि ऊपर-नीचे ले जाते समय मुट्ठी के अग्रभाग को भुजबल्ली से मिलाने का प्रयत्न करें। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० २६ तथा ३० देखें।

१८—करपृष्ठ-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर दोनों करतल खुले रहें और अँगुलियाँ आपस में सटी हुई हों, दोनों भुजाओं को वक्षःस्थल के सामने पृथ्वी के समानान्तर रखते हुए खड़े रहें।

क्रिया (क)—कलाई से अग्रभाग को क्रिया (१७) की भाँति ऊपर-नीचे ले जायें। चित्र नं० ३१ तथा ३२ देखें। (ख) इस क्रिया को भी क्रिया (१७) के (क) की भाँति कोहनी मोड़कर करें। चित्र नं० ३३ तथा ३४ देखें।

१९—करतल-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए हाथ के पंजों को पूर्णतया खोलकर अँगुलियों को अलग-अलग रखते हुए वक्षःस्थल के सामने पृथ्वी के समानान्तर भुजाओं को फैलाकर खड़े रहें।

क्रिया—कलाई से अग्रभाग को बल के साथ ऊपर लावें तथा नीचे ले जावें। ध्यान रहे कि ऊपर-नीचे लाते ले जाते समय अँगुलियों के अग्रभाग को भुजबल्ली से मिलाने का प्रयत्न करें। चित्र नं० ३५ तथा ३६ देखें। (ख) पूर्व परिस्थिति में खड़े होकर, कोहनी को मोड़कर, अँगुलियों को अलग-अलग रखकर, ऊपर-नीचे लावें तथा ले जावें। ध्यान रहे कि क्रिया करते समय ऐसी स्थिति हो, मानों अँगुलियाँ भुजबल्ली से मिलने जा रही हों। चित्र नं० ३७ तथा ३८ देखें।

२०—अँगुलीमूल-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर कलाई से अग्र विभाग को ढीला रखते हुए भुजा को वक्षःस्थल के सामने पृथ्वी के समानान्तर रखते हुए खड़े रहें।

क्रिया (क)—कलाई से पिछले हिस्से को पूर्णतया बल के साथ कड़ा करते हुए आगे के भाग को ढीला रखें। आरम्भिक क्रम ५ मिनट। चित्र नं० ३९ देखें।

क्रिया (ख)—कलाई से अग्र विभाग को क्रिया नं० २० (क) की भाँति ढीला रखते हुए कोहनी को मोड़कर पुनः क्रिया (क) की भाँति करें। आरम्भिक क्रम ५ मिनट। चित्र नं० ४० देखें।
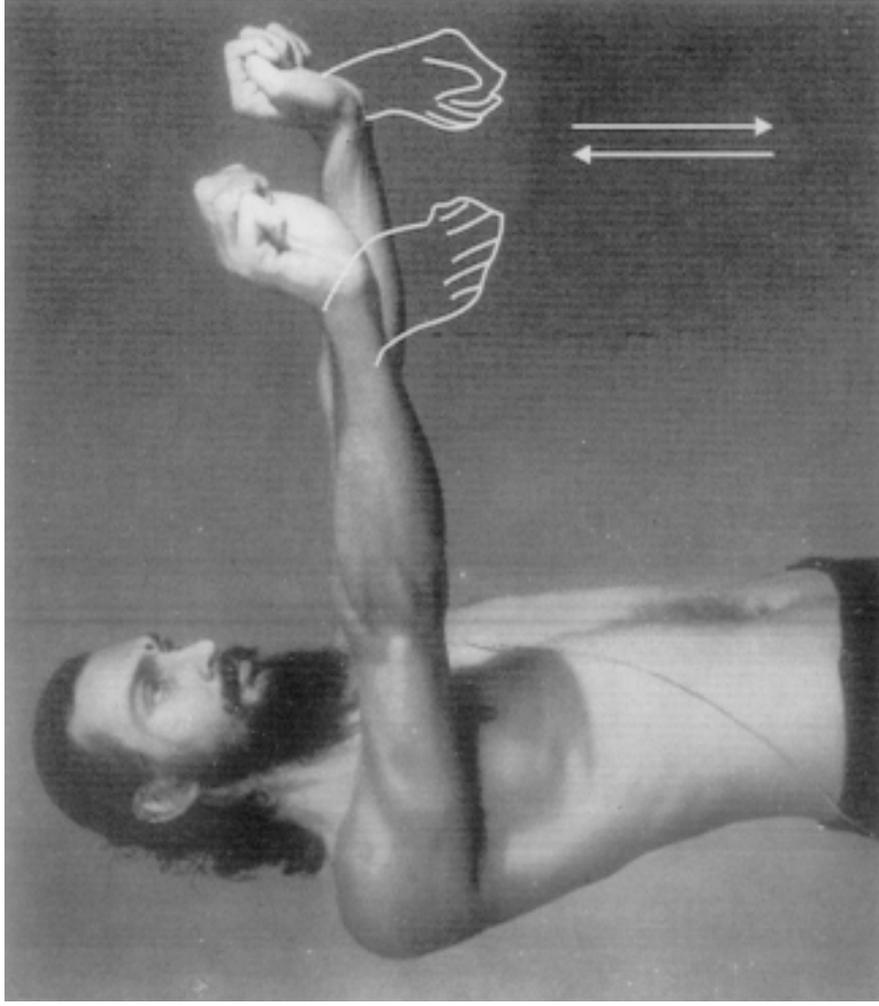
चित्र नं० २७ क्रिया नं० १७

(१) मणिबन्ध-शक्ति-वर्धक सत्रहवीं क्रिया। इसमें मणिबन्ध से आगे मुट्ठी को बलपूर्वक ऊपर की ओर मोड़ रहे हैं।
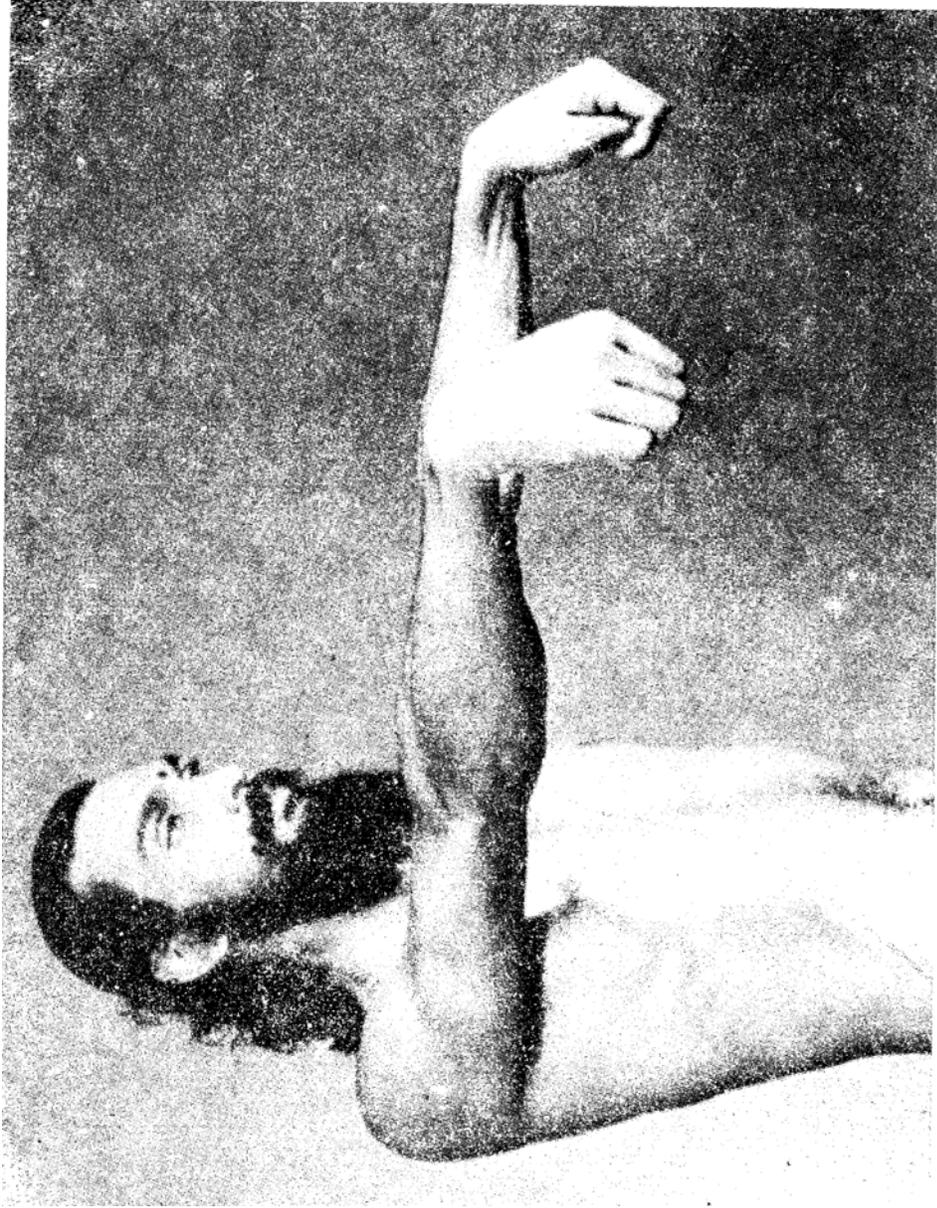
चित्र नं० २८ क्रिया नं० १७

(२) मणिबन्ध-शक्ति-वर्धक सत्रहवीं क्रिया। इसमें मणिबन्ध से आगे मुट्ठी को यथासाध्य बलपूर्वक नीचे की ओर मोड़ रहे हैं।
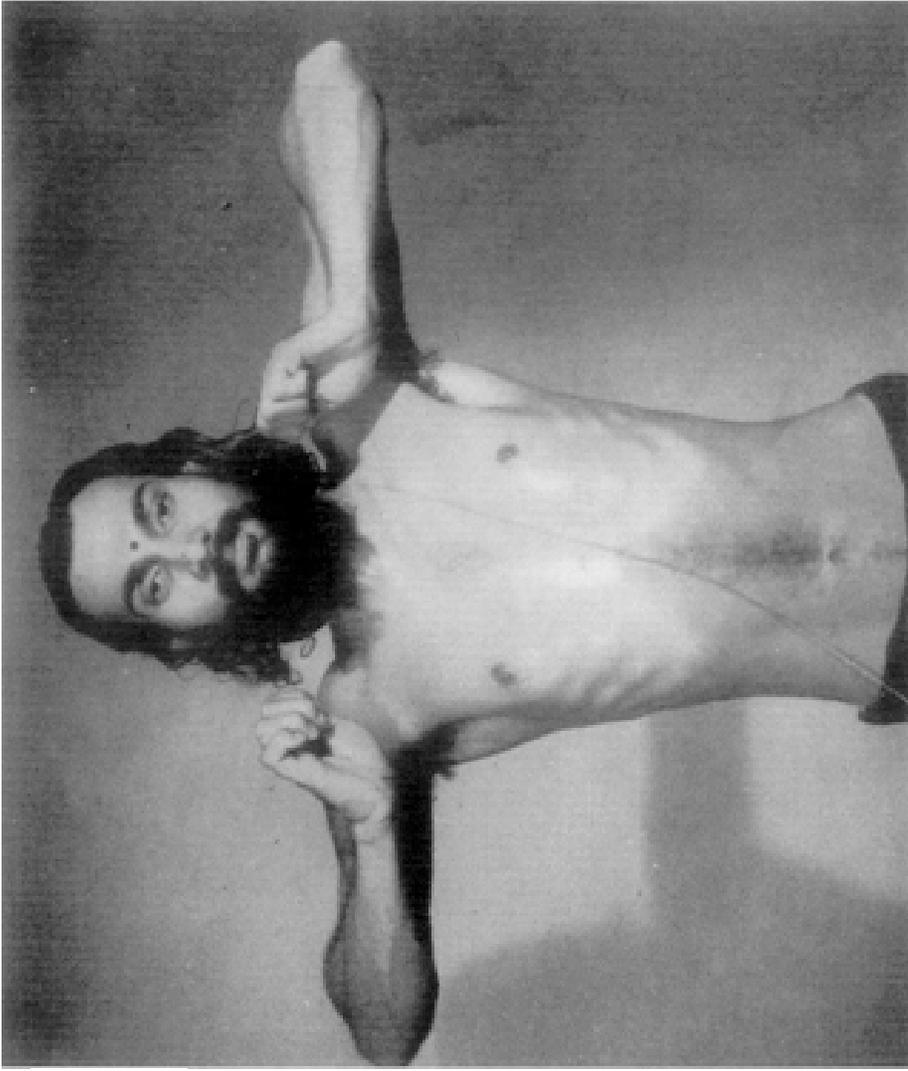
चित्र नं० २६ क्रिया नं० १७

मणिबन्ध-शक्ति-वर्धक सत्रहवीं क्रिया। इसमें मणिबन्ध से आगे मुट्ठी को वक्षःस्थल के पास बलपूर्वक ऊपर की ओर मोड़ रहे हैं।
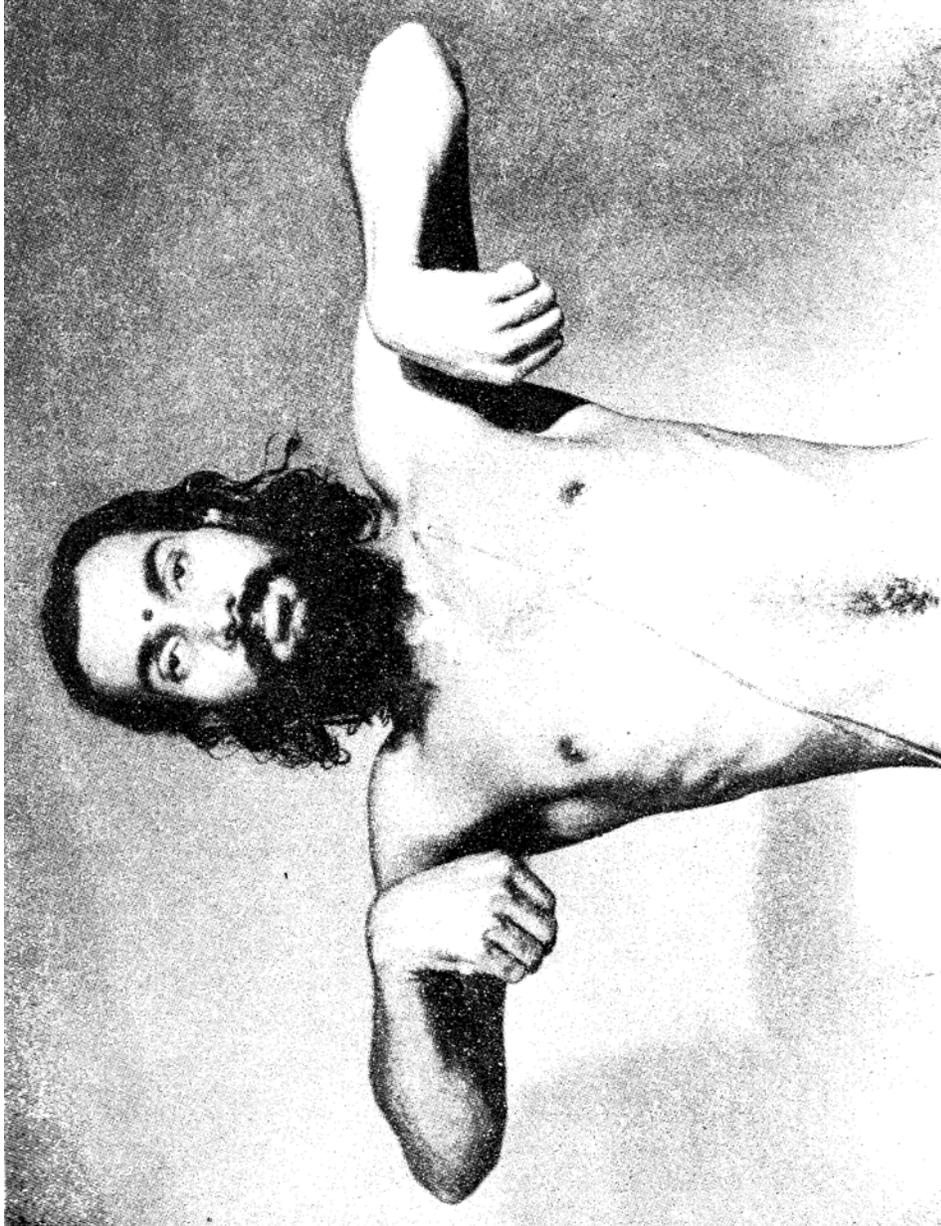
चित्र नं० ३०　　　　　　　　　　　　　　　　　　क्रिया नं० १७

मणिबन्ध-शक्ति-वर्धक सत्रहवीं क्रिया। इसमें मणिबन्ध से आगे मुट्ठी को वक्षःस्थल के पास बलपूर्वक नीचे की ओर मोड़ रहे हैं।
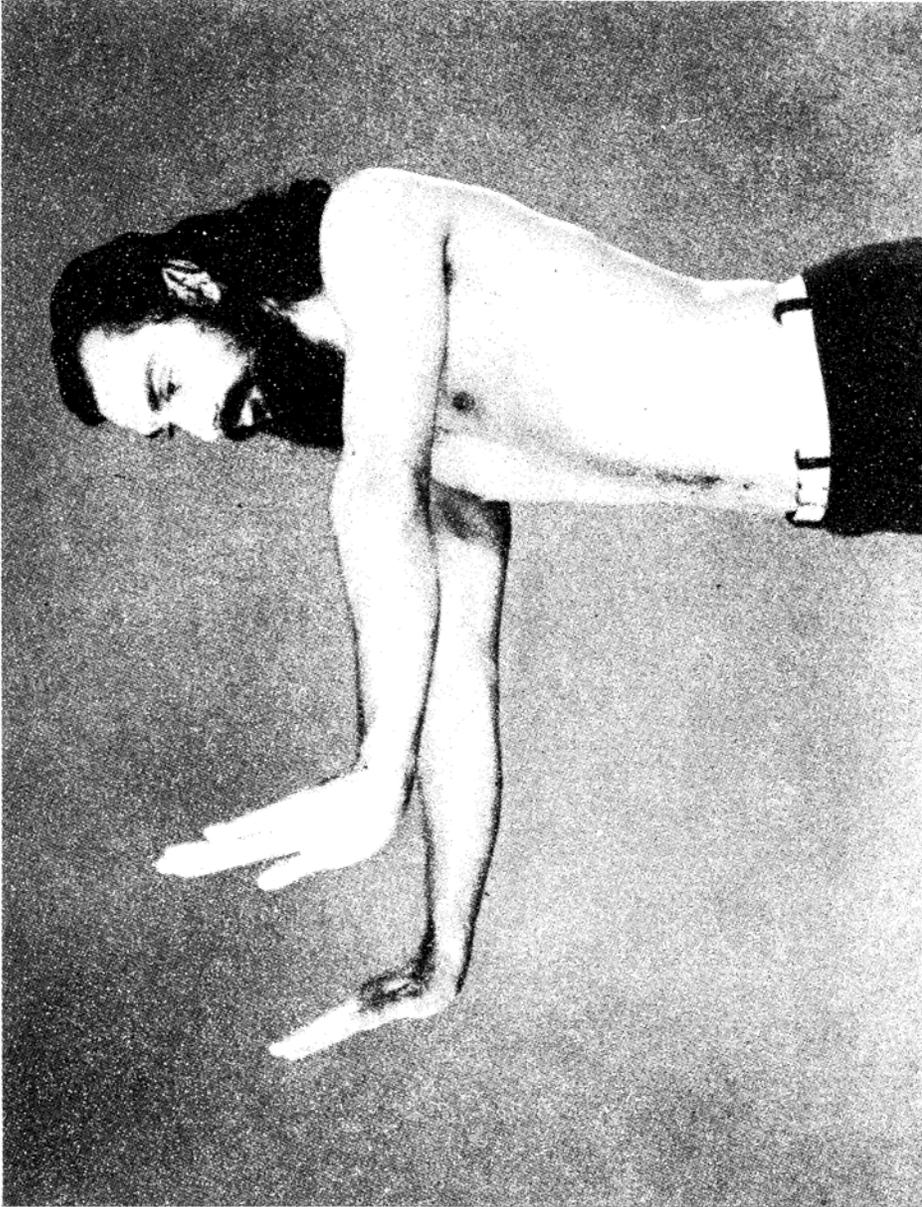
चित्र नं० ३१ क्रिया नं० १८

करपृष्ठ शक्ति-विकासक नामक अठारहवीं क्रिया। इसमें मुट्ठी खोलकर कलाई से अग्रभाग को यथासाध्य पूर्णबल के साथ ऊपर की ओर मोड़ रहे हैं।
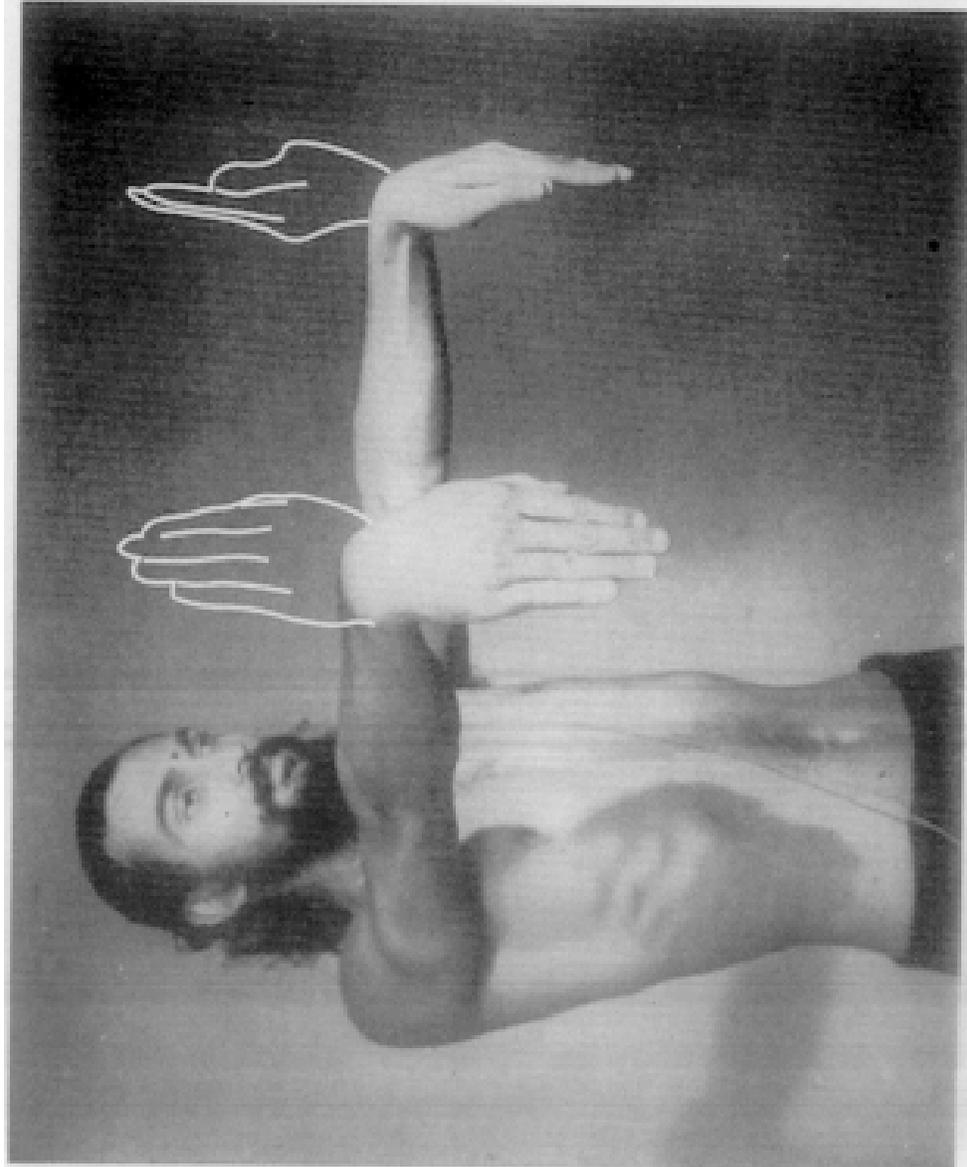
चित्र नं० ३२ क्रिया नं० १८

करपृष्ठ-शक्ति-विकासक नामक अठारहवीं क्रिया। इसमें मुट्ठी खोलकर कलाई से अग्रभाग को यथाशक्य पूर्णबल के साथ नीचे की ओर मोड़ रहे हैं।
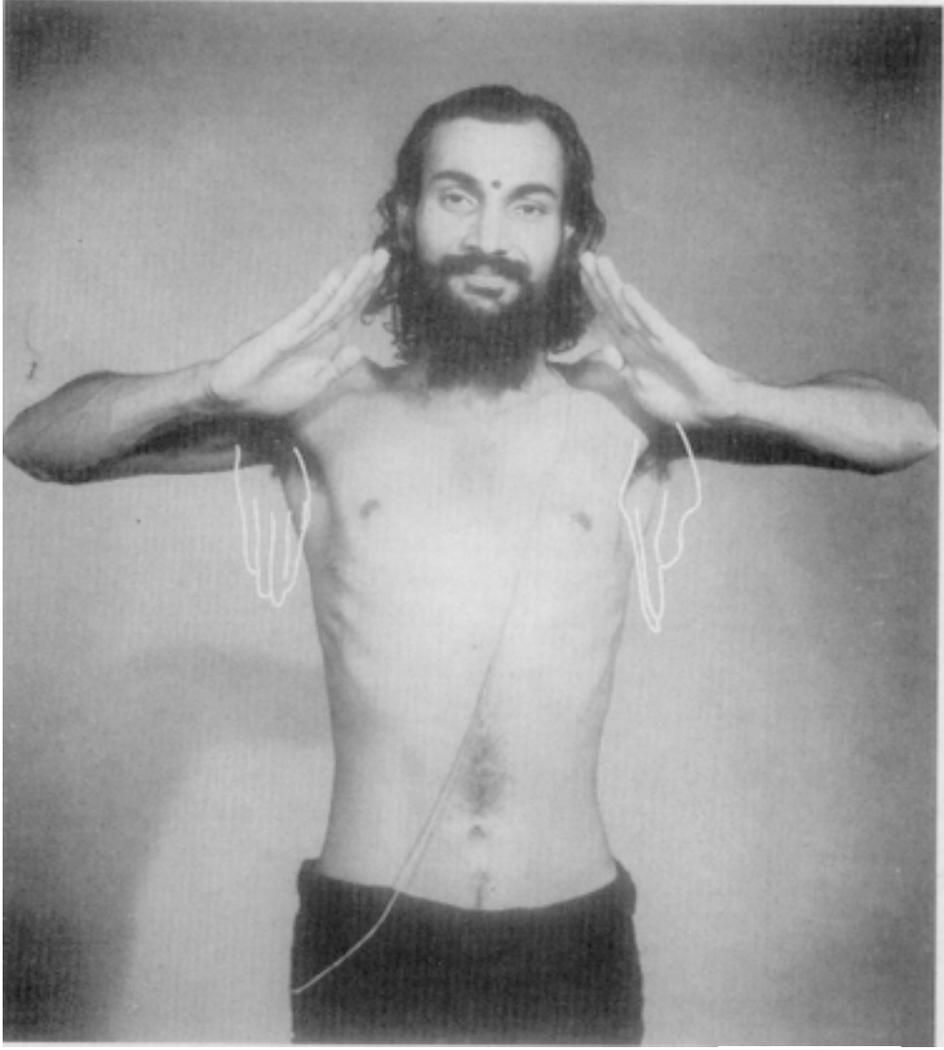
चित्र नं॰ २३ क्रिया नं० १८

करपृष्ठ-शक्ति-विकासक नामक अठारहवीं क्रिया। इसमें कलाई से अग्रभाग को वक्षःस्थल के पास बलपूर्वक ऊपर की ओर मोड़ रहे हैं।
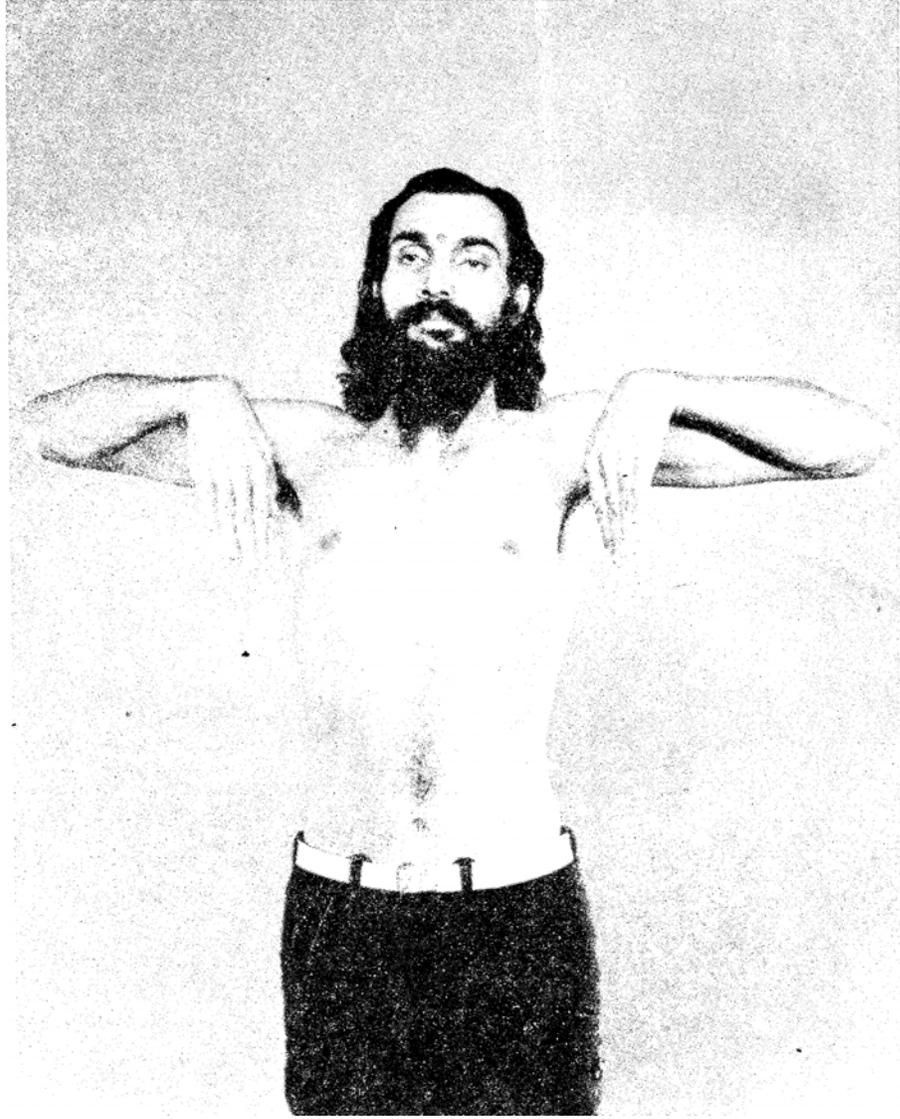
चित्र नं० ३४ क्रिया नं० १८

करपृष्ठ-शक्ति-विकासक नामक अठारहवीं क्रिया। इसमें कलाई से अग्रविभाग को वक्षःस्थल के पास बलपूर्वक नीचे की ओर मोड़ रहे हैं।

चित्र नं० ३५ क्रिया नं० १९

करतल-शक्ति-विकासक नामक उन्नीसवीं क्रिया। इसमें यथासाध्य अँगुलियों को फैलाकर कलाई से अग्रविभाग को बलपूर्वक ऊपर की ओर मोड़ रहे हैं।
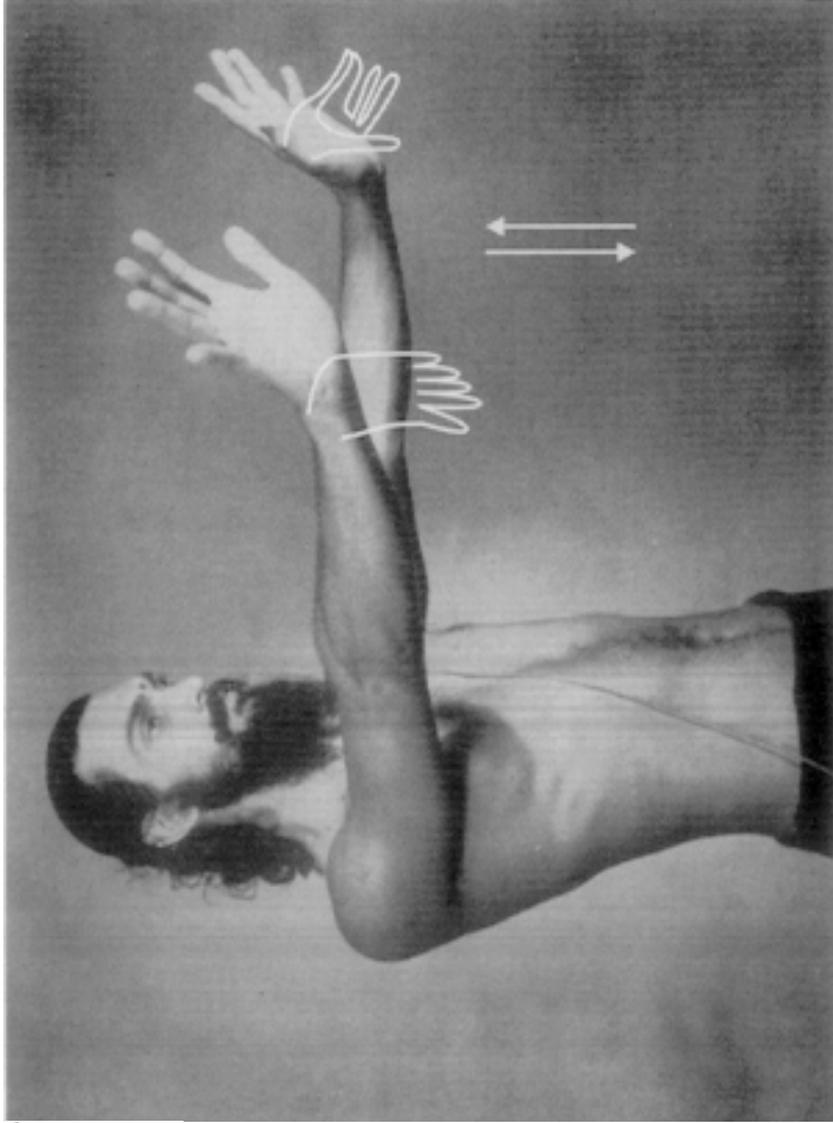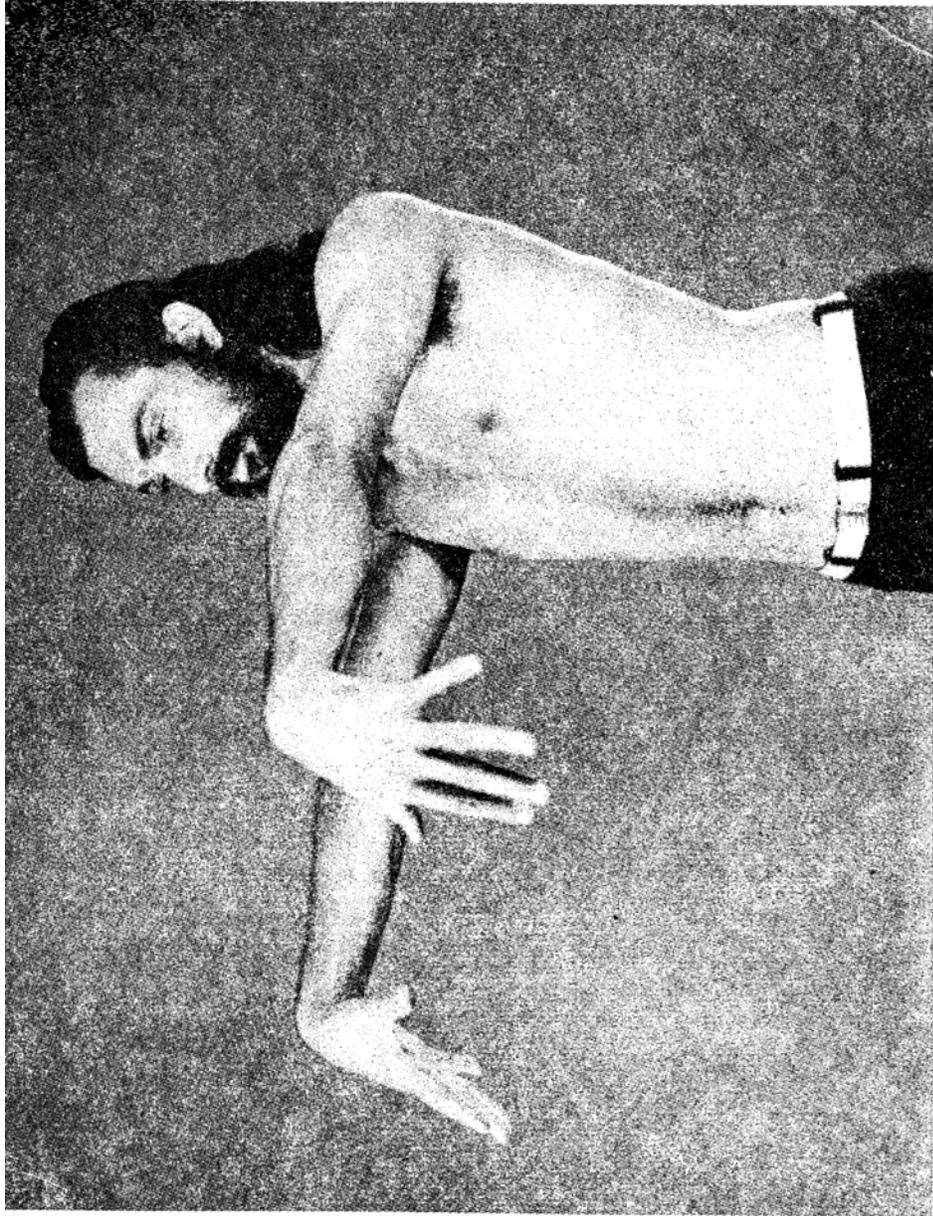
चित्र नं० ३६ क्रिया नं० १६

करतल-शक्ति-विकासक नामक उन्नीसवीं क्रिया। इसमें यथासाध्य अँगुलियों को फैला कर कलाई से अग्रविभाग को बलपूर्वक नीचे की ओर मोड़ रहे हैं।
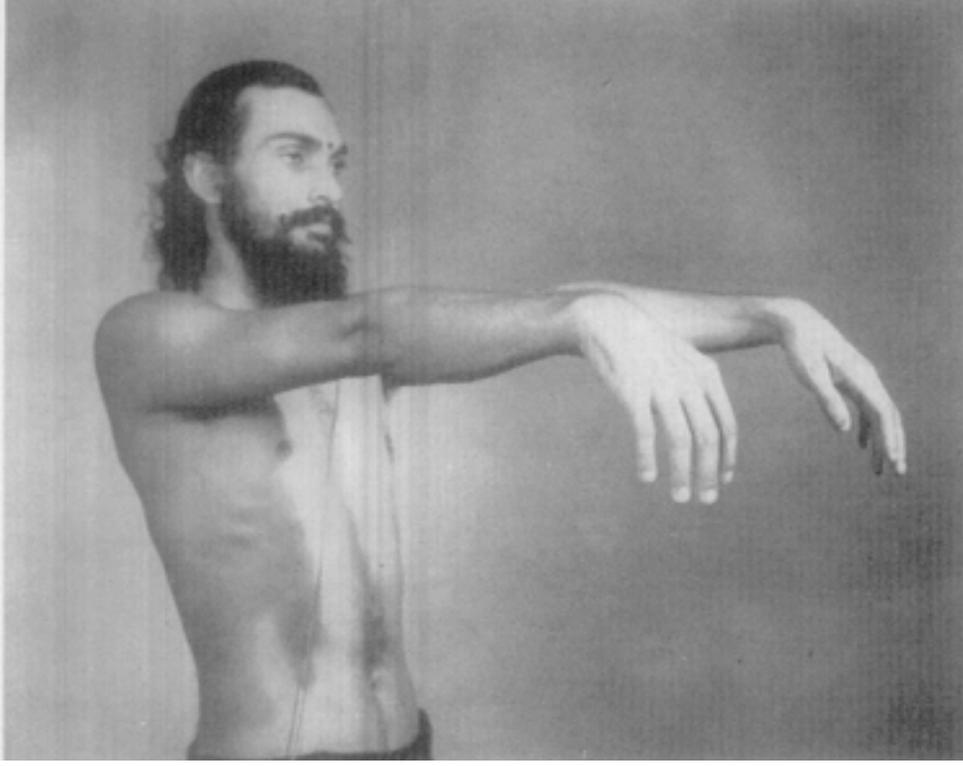
चित्र नं० ३७ क्रिया नं० १९

करतल-शक्ति-विकासक नामक उन्नीसवीं क्रिया। इसमें अंगुलियों को फैलाकर कलाई से अग्रविभाग को वक्षःस्थल के पास बलपूर्वक पीछे की ओर मोड़ रहे हैं।

चित्र नं० ३८ क्रिया नं० १९

करतल-शक्ति-विकासक नामक उन्नीसवीं क्रिया। इसमें अँगुलियों को फैलाकर कलाई से अग्रविभाग को वक्षःस्थल के पास बलपूर्वक नीचे की ओर मोड़ रहे हैं।

चित्र नं० ४० क्रिया नं० २०

अँगुलीमूल-शक्ति-विकासक नामक बीसवीं क्रिया। इसमें भी स्कन्ध से मणिबन्ध तक का विभाग पूर्णरूप से कड़ा रखते हुए कलाई से अग्रविभाग को बिलकुल ढीला रखे हैं।
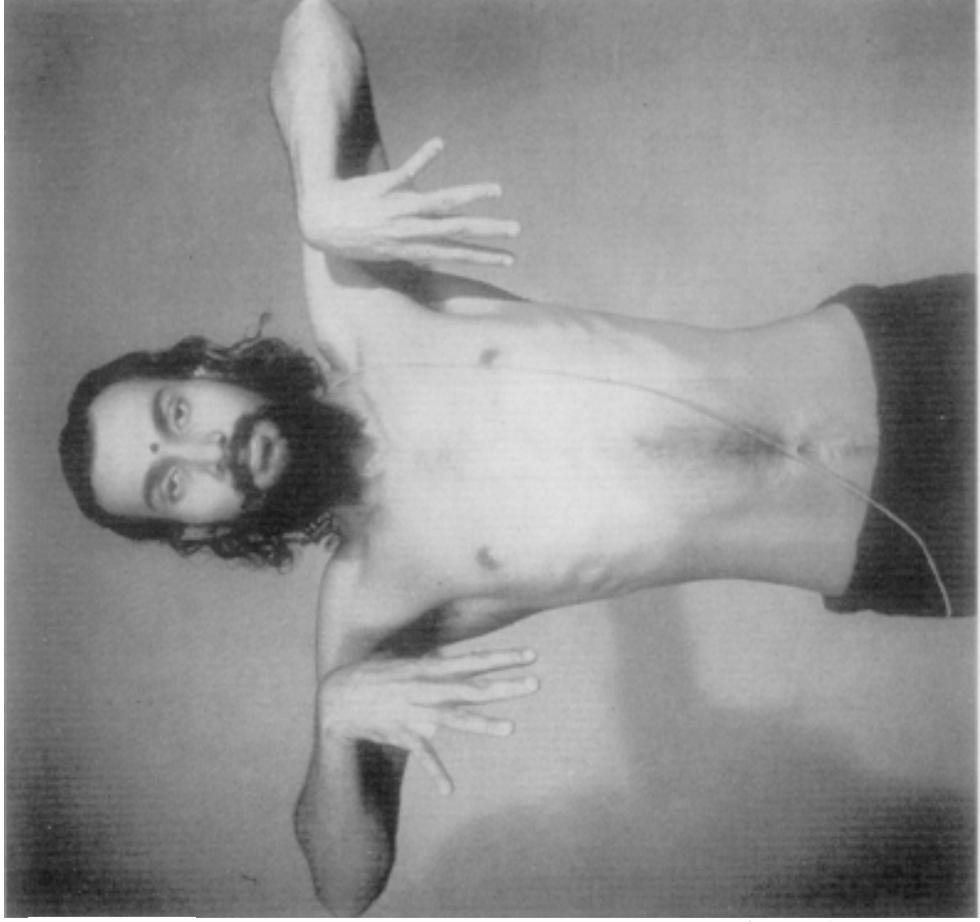
चित्र नं० ४० क्रिया नं० २०

अंगुलीमूल-शक्ति-विकासक नामक बीसवीं क्रिया। इसमें भी स्कन्ध से मणिबन्ध तक का विभाग पूर्णरूप से कड़ा रखते हुए कलाई से अग्रविभाग को बिलकुल ढीला रखे हैं।

२१—अँगुली-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर अँगुलियाँ अलग-अलग फैलाकर वक्षःस्थल के सामने पृथ्वी के समानान्तर भुजा को रखते हुए खड़े रहें।

क्रिया (क)—अँगुलियों को सर्प के फण की भाँति बना लें। ध्यान रहे कि स्कन्ध से अँगुली अग्र तक का विभाग पूर्ण रूप से कड़ा रहे। बल न लगाने से विशेष लाभ नहीं होगा। इसलिए इतनी शक्ति लगाकर क्रिया करें कि स्कन्ध से अँगुली का अग्रभाग काँप-सा जाय। आरम्भिक क्रम ५ मिनट। चित्र नं० ४१ देखें।

क्रिया (ख)—पूर्व परिस्थिति में खड़े होकर इसी क्रिया को कोहनी मोड़कर पूर्ण बल के साथ अँगुली के अग्र विभाग को सर्प के फर्ण की भाँति बनायें। आरम्भिक क्रम ५ मिनट। चित्र नं० ४२ देखें।

लाभ—इन १७ से २१ तक की पाँचों क्रियाओं से कलाई, करपृष्ठ, करतल, अँगुलियाँ, सभी की पुष्टि होती है तथा हाथों में असीम बल आता है। मनोवाहा नाड़ी की दिव्य ज्योति से सम्पूर्ण शरीर कान्तिमान हो जाता है। समस्त प्रकार के धातु रोगों की निवृत्ति हो जाती है। हार्दिक शक्ति का विकास होता है। ये क्रियाएँ लेखकों टाइप इत्यादि का कार्य करनेवालों, मशीन मैनों, ड्राइवरों, कपड़ा बुननेवालों, शिल्पकारों और वाद्य-संगीतज्ञों के लिए विशेष उपयोगी हैं।

२२—वक्षःस्थल-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कमर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए दोनों हाथों की मुट्ठियाँ खोलकर, परन्तु अंगुलियाँ आपस में सटी हुई हों और करपृष्ठ सामने की ओर रखते हुए खड़े रहें।

क्रिया—दोनों हाथों को आवृत्ताकार आगे से उठाते हुए पीछे ले जायँ। साथ ही साथ नासिका से श्वास खींचते हुए वक्षःस्थल को पूर्ण रूप से पीछे झुकाकर कुछ देर इसी अवस्था में रुकें। फिर खींचे हुए श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालते हुए पुनः पूर्व परिस्थिति में आ जायँ। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र न० ४३ देखें।

लाभ—इस क्रिया से फेफड़े के सम्पूर्ण दोष दूर होते हैं। सीना चौड़ा हो जाता है। वक्ष:स्थल पुष्ट तथा दृढ़ हो जाता है। हृदय के रोग दूर होते हैं तथा हृदय में असीम बल बढ़ता है। इस क्रिया को निरन्तर करने से राजयक्ष्मा (टी० बी०), दमा, खाँसी तथा समस्त कफ सम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं। जिन लोगों का हृदय कमजोर है तथा जो हृदय रोग से पीड़ित हैं, वे इस क्रिया को प्रातः शौच-स्नान के पश्चात् ५ मिनट नित्य करें, तो अवश्य ही उनके हृदय के सब कष्ट दूर होंगे तथा हृदय में एक नवीन जीवन का संचार होगा।

विशेष—मानव-शरीर के दोनों फेफड़ों में लगभग साढ़े सात करोड़ छिद्र होते हैं, जिनमें प्रतिक्षण प्राणवायु का संचार होता रहता है। दिन-रात २४ घण्टे में स्वस्थ व्यक्ति के इक्कीस हजार छः सौ श्वास चलते हैं। प्रति श्वास-प्रश्वास द्वारा २४ घण्टे में दो सौ बहत्तर मन रक्त (खून) शुद्ध होता है। इन सभी छिद्रों के शोध और विकास के लिए यह क्रिया परम उपयोगी है।

२३—वक्षःस्थल-शक्ति-विकासक (२)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर हथेलियों को अन्दर की ओर रखते हुए समावस्था में खड़े रहें।

क्रिया—नासिका द्वारा श्वास खींचते हुए केवल कमर से ऊपरी विभाग को यथासाध्य बलपूर्वक पीछे की ओर झुकावें और साथ ही हाथों को यथासाध्य पीछे ले जायें। कुछ देर इसी परिस्थिति में रुकने के पश्चात् दोनों नासिकारन्ध्रों से भीतर की वायु को बाहर निकालते हुए समावस्था में आ जायें। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ४४ देखें।

लाभ—पूर्व क्रिया के लाभ के साथ-साथ वक्षःस्थल के अगले तथा पिछले (पीठ की ओर के) भाग में असीम बल आता है तथा दृढ़ता आती है। भुजाओं का भी बल बढ़ता है। जिन दुबले-पतले व्यक्तियों की सीने तथा पीठ की हड्डियाँ दिखाई पड़ती हैं, इस क्रिया के करने से वे मांसल होकर पुष्ट हो जाती हैं। इस क्रिया के अभ्यास से जीवनपर्यन्त कमर (रीढ़ की हड्डी) टेढ़ी नहीं होती।
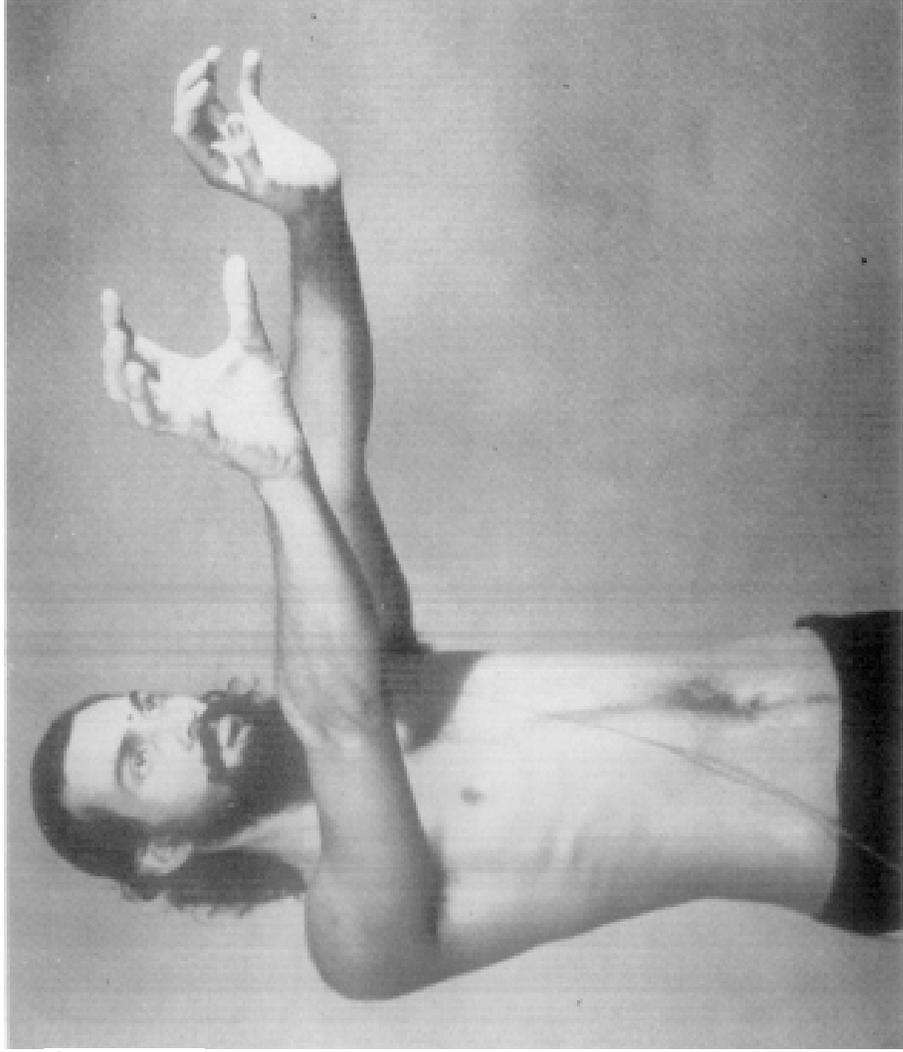
चित्र नं० ४१ क्रिया नं० २१

अँगुली-शक्ति-विकासक नामक इक्कीसवीं क्रिया। इसमें अँगुली के अग्रभाग को बलपूर्वक सर्प के फणकी भाँति बना रहे हैं।
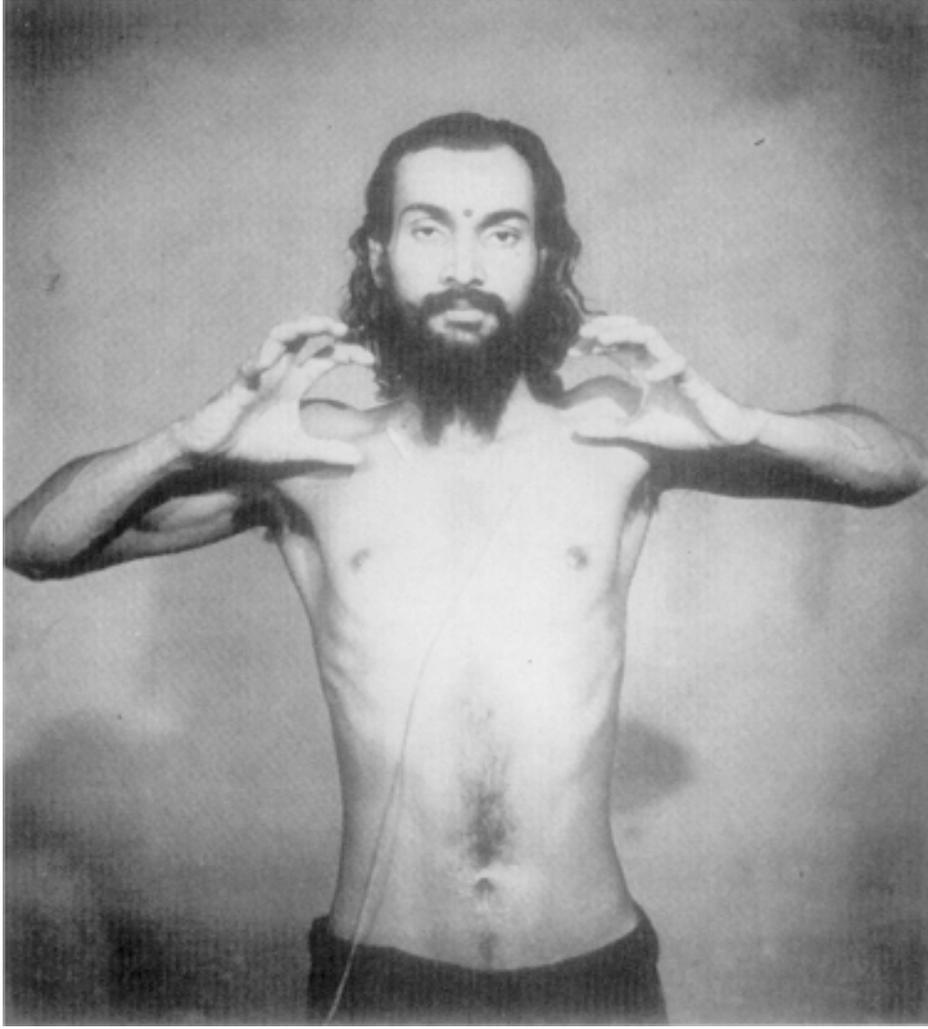
चित्र न० ४२ क्रिया न० २१

अँगुली-शक्ति-विकासक नामक इक्कीसवीं क्रिया। इसमें अँगुली के अग्रभाग को बलपूर्वक सर्प के फण की भाँति बना रहे हैं।
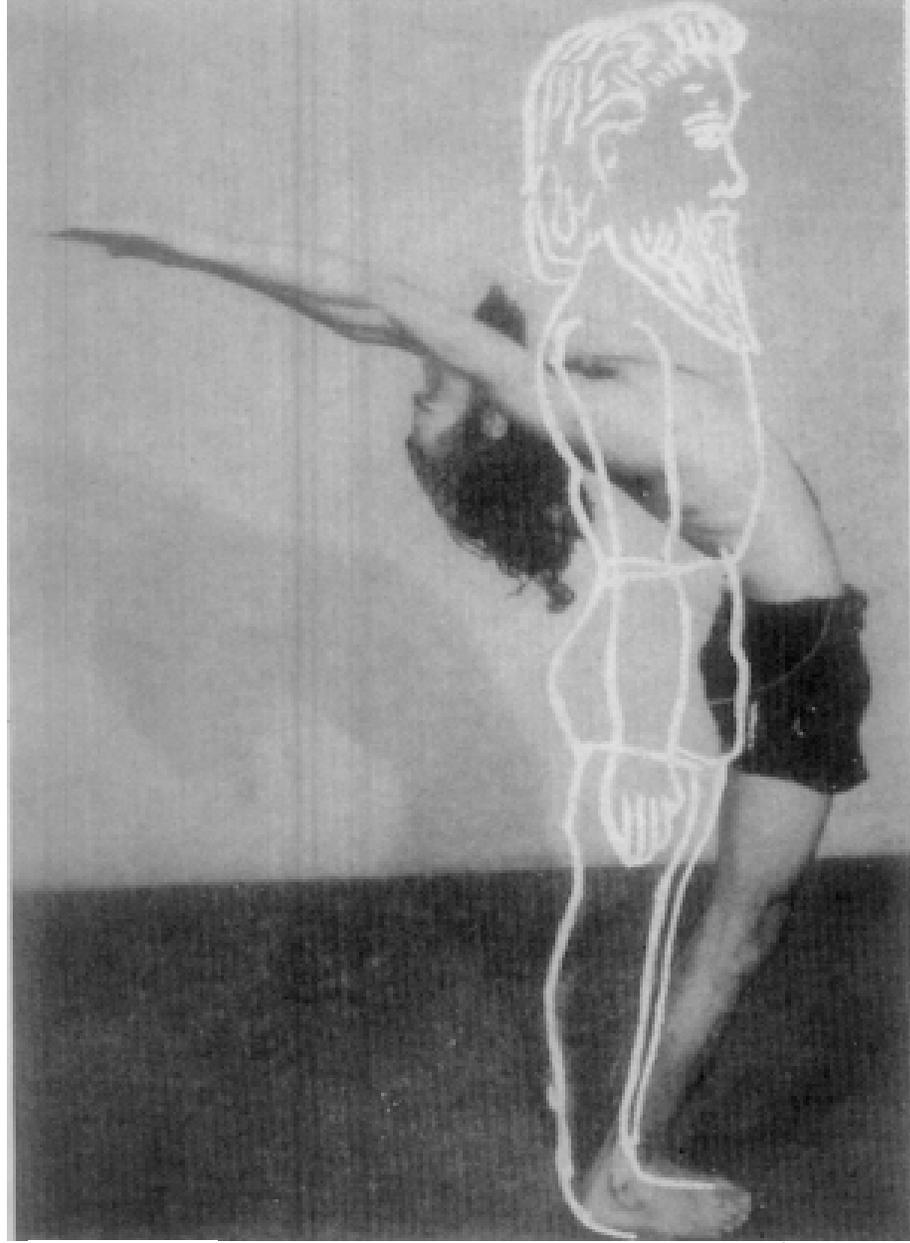
चित्र नं० ४३ क्रिया नं० २२

वक्षःस्थल-शक्ति-विकासक नामक बाईसवीं क्रिया। इसमें नासिका से श्वास भरते हुए कमर से ऊपरी भाग को यथासाध्य पीछे की ओर ले गये हैं।
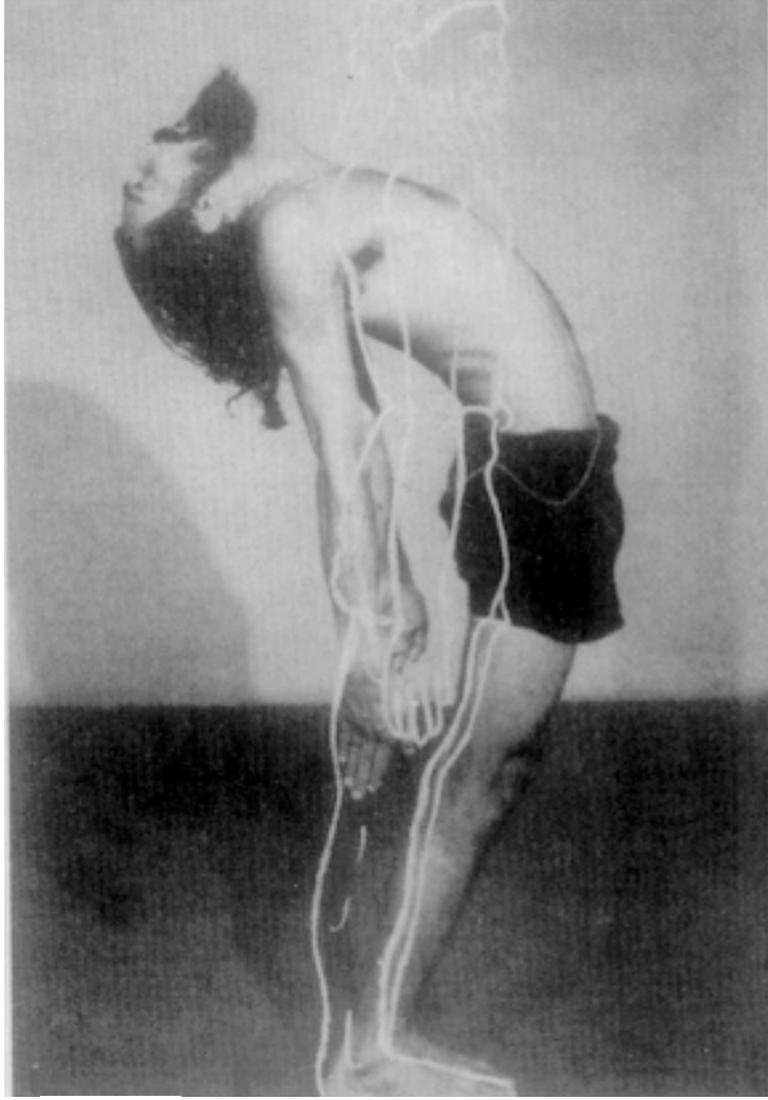
चित्र नं० ४४ क्रिया नं० २३

वक्षःस्थल-शक्ति-विकासक नामक तेईसवीं क्रिया। इसमें दोनों हाथों तथा कमर से ऊपरी विभाग को पीछे की ओर श्वास भरते हुए यथासाध्य ले गये हैं।

२४—उदर-शक्ति विकासक (१)

(अजगरी)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर समावस्था में खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से धीरे-धीरे अजगर की भाँति श्वास भरते हुए पेट को पूर्णतया फुलावें। कुछ देर श्वास को इसी परिस्थिति में रोककर दोनों नासिकारन्ध्रों से अन्दर की वायु को धीरे-धीरे बाहर छोड़ते हुए यथासाध्य पेट को पिचकायें, अर्थात् पेट को तालाव की भाँति अन्दर ले जावें। इसे उड्डियानबन्ध भी कहते हैं। इस क्रिया को बार-बार करें। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ४५ देखें।

इस क्रिया के बारे में योगचूड़ामण्युपनिषद् में लिखा है :—

ओड्याणं कुरुते यस्मादविश्रान्तं महाखगः।
ओड्डियाणं तदेव स्यान्मृत्युमातङ्गकेसरी ॥

अर्थात्—जिस प्रकार आकाश में उड़नेवाला पक्षी निरन्तर उड्डियान लगाये रहता है तथा उसी के बल पर बिना विश्राम किये मीलों उड़ता रहता है और इसी उड्डियान के कारण उसमें असीम बल आता है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य इसी उड्डियानबन्ध से प्राप्त हुई शक्ति से मृत्युरूपी हाथी पर सिंह की भाँति विजय प्राप्त करता है।

२५—उदर-शक्ति-विकासक (२)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए ग्रीवा को समावस्था से आधा अंगुल ऊपर की ओर उठा कर खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों द्वारा तीव्र वेग से बाहर की वायु को अन्दर खींचते हुए पेट फुलावें तथा अन्दर का श्वास बाहर निकालते हुए पेट पूर्णतया पिचकावें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ४६ देखें।

विशेष—ध्यान रहे कि क्रिया करते समय पेट पूर्णतया फूले-पिचके और क्रमशः जैसे ऊपर बताया गया है, उसी प्रकार श्वास लें तथा छोड़ें।

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर सिर को पूर्णतया पीछे झुकाते हुए खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से तीव्र वेग से श्वास अन्दर खींचें तथा छोड़ें। ध्यान रहे कि श्वास बाहर छोड़ते समय पेट अन्दर जावे और श्वास अन्दर लेते समय पेट फूले। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ४७ देखें।

२७—उदर-शक्ति-विकासक (४)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर पैरों से डेढ़ गज की दूरी पर देखते हुए खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से तीव्र वेग से श्वास अन्दर लें और बाहर छोड़ें। श्वास लेते समय पेट फूले तथा छोड़ते समय पेट पिचके। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ४८ देखें।

विशेष—पेट की क्रिया नं० २४ से २७ तक की चारों क्रियाओं में तथा उच्चारण स्थल से मेधा-शक्ति-विकासक चारों क्रियाओं में बहुत कम अन्तर प्रतीत होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि उच्चारण-स्थल से आरम्भ होनेवाली क्रियाओं में पेट पर ध्यान नहीं रखा जाता तथा श्वास-प्रश्वास करते समय पेट न तो फूलता है और न ही पिचकता है, परन्तु पेट की क्रियाओं में पेट पर विशेष ध्यान रखा जाता है। इसीलिए दोनों का लाभ भिन्न है। साधक इस भ्रम में न रहें कि दोनों एक-सी प्रतीत होती हैं।

२८—उदर-शक्ति-विकासक (५)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कन्ध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर खड़े रहें।

क्रिया—मुख को कौए की चोंच के समान बनाकर बाहर की वायु मुख से अन्दर खींचते हुए ठुड्डी को कण्ठकूप से लगावें। इसे जालन्धरबन्ध भी कहते हैं। कुम्भक करते समय आँखें बन्द रहेंगी, गाल फूले हुए रहेंगे। तत्पश्चात् सामने देखते हुए
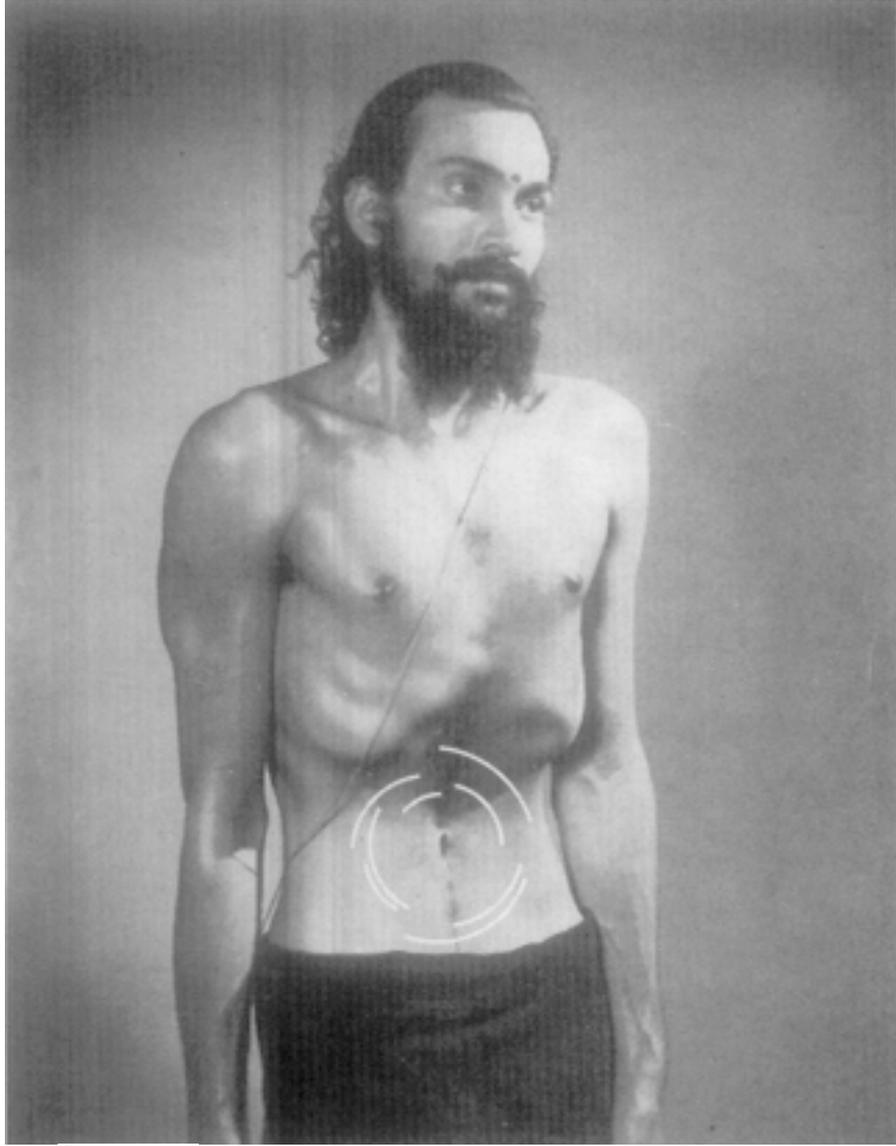
चित्र नं० ४५ क्रिया नं० २४

उदर-शक्ति-विकासक (अजगरी) नामक पहली क्रिया। इसमें नासिका से धीरे-धीरे श्वास छोड़कर उड्डियान किया गया है।
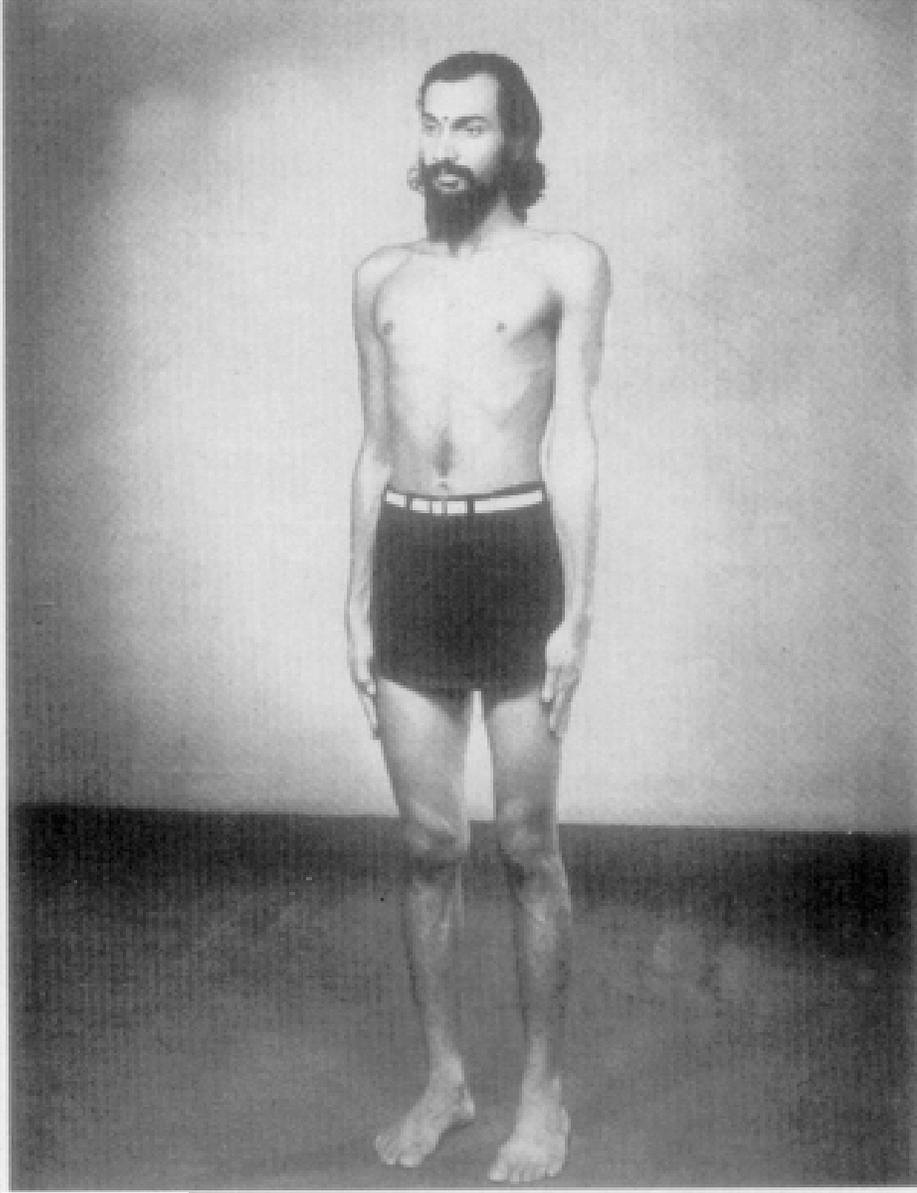
चित्र नं० ४६ क्रिया नं० २५

उदर-शक्ति-विकासक नामक दूसरी क्रिया। इसमें श्वास भरकर पेट को फुलाते हुए दिखाया गया है।
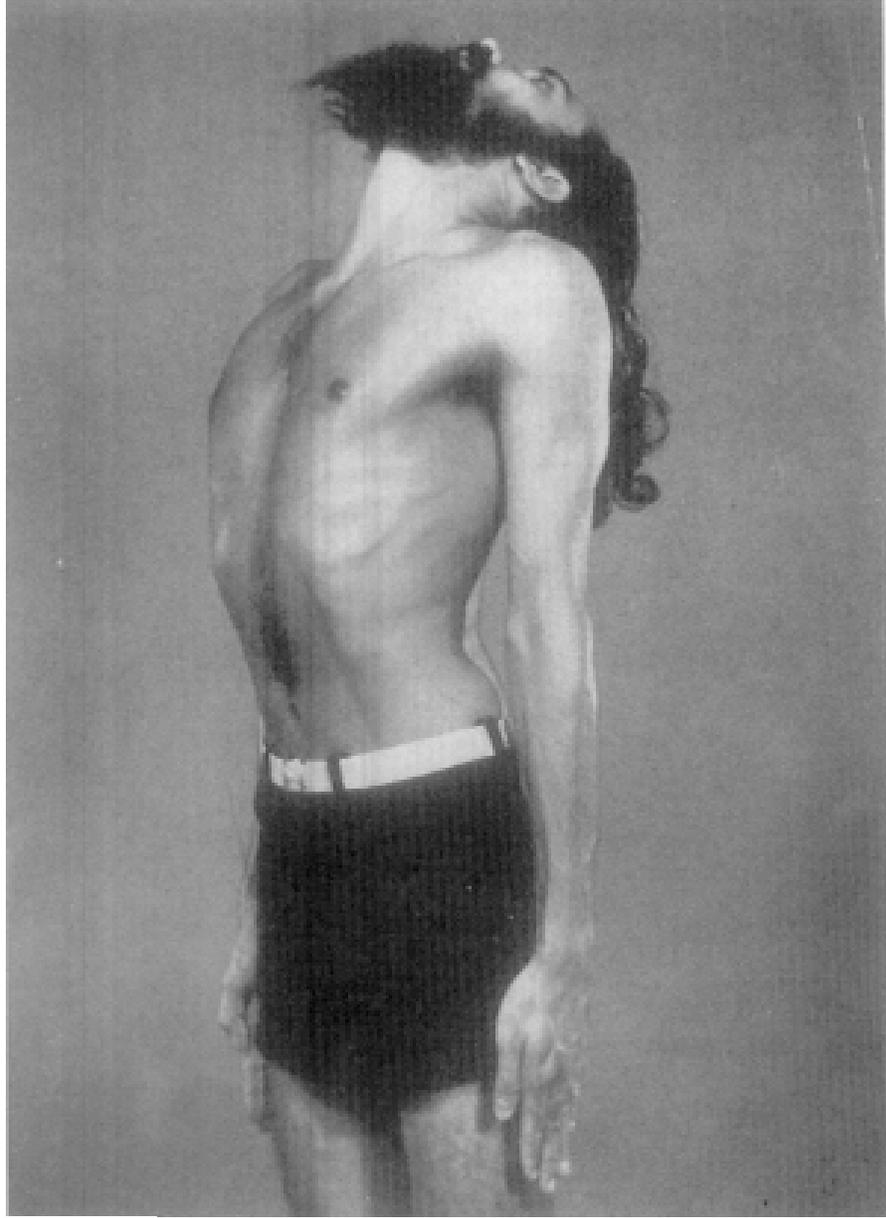
चित्र नं० ४७ क्रिया नं० २६

उदर-शक्ति-विकासक नामक तीसरी क्रिया। इसमें गले को पूर्णतया पीछे ले जाकर श्वास-प्रश्वास द्वारा पेट को फुलाना तथा पिचकाना दिखाया गया है।
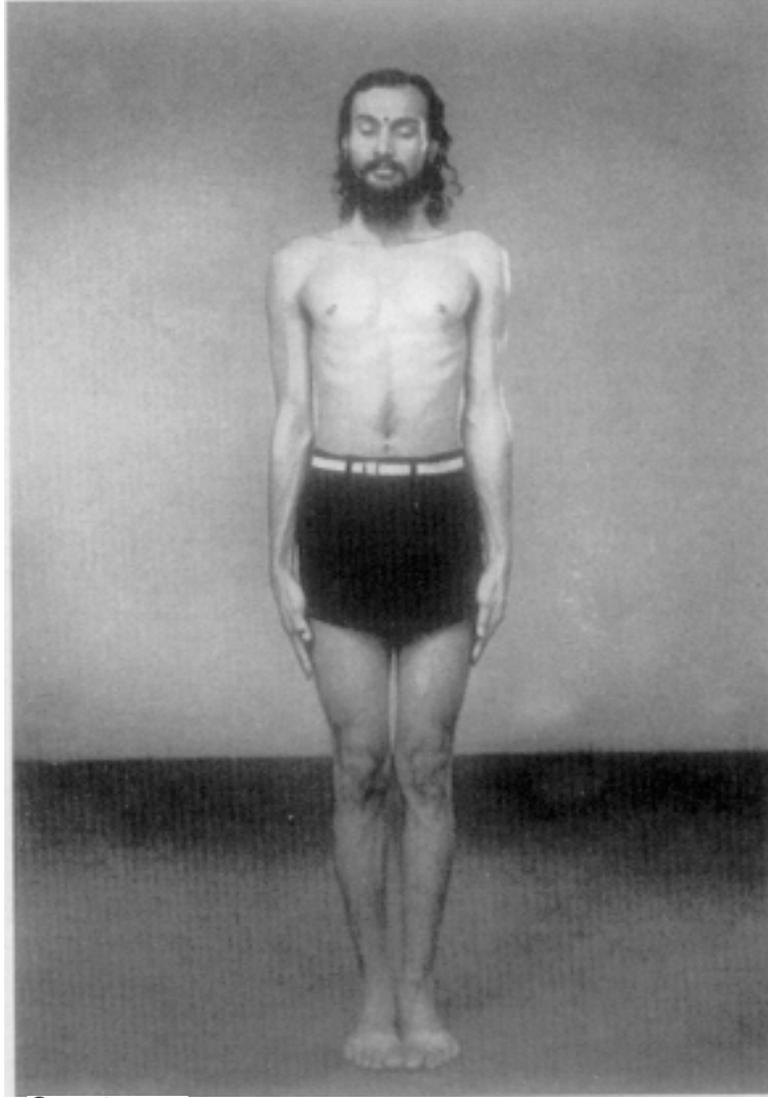
चित्र नं० ४८ क्रिया नं० २७

उदर-शक्ति-विकासक नामक चौथी क्रिया। इसमें नेत्रों से डेढ़ गज की दूरी पर देखते हुए श्वास-प्रश्वास द्वारा पेट को फुलाना तथा पिचकाना दिखाया गया है।

नासिकारन्ध्रों से अन्दर की वायु को धीरे-धीरे बाहर निकालें। श्वास छोड़ते समय श्वास का शब्द कान से सुनाई न पड़े।

विशेष—देर तक कुम्भक करने पर जोर से रेचक कभी न करें। इससे बल की हानि होती है। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ४६ देखें।

२९ उदर-शक्ति-विकासक (६)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कमर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए, कमर के ऊपरी विभाग को किञ्चित् आगे की ओर झुकाते हुए, दोनों हाथों को कमर पर इस प्रकार रखें कि चारों अँगुलियाँ तो पीछे की ओर रहें और अँगूठा आगे की ओर रहे।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से तीव्र वेग से श्वास अन्दर खींचें तथा बाहर छोड़ें। ध्यान रहे कि श्वास लेते समय पेट फूले तथा छोड़ते समय पेट पिचके। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ५० देखें।

३०—उदर-शक्ति-विकासक (७)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कमर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर उदर क्रिया (६) की भाँति कमर पर हाथ रखते हुए कमर से ऊपरी विभाग को इतना झुकावें कि नाभि पर ९०° का कोण बन जाय।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से तीव्र वेग से श्वास लें तथा छोड़ें, श्वास लेते समय पेट फूले तथा श्वास छोड़ते समय पेट पिचके। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ५१ देखें।

३१—उदर-शक्ति-विकासक (८)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कमर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर उदर क्रिया (६) की भाँति कमर पर हाथ रखते हुए कमर के ऊपरी विभाग को किञ्चित् आगे की ओर झुकावें।

क्रिया—अन्दर के श्वास को दोनों नासिकारन्ध्रों से बाहर निकाल कर बाह्य कुम्भक की परिस्थिति में पेट को शीघ्रतापूर्वक फुलावें तथा पिचकावें। यथासाध्य श्वास

रोकने के बाद क्रिया बन्द करके धीरे-धीरे श्वास लें। पुनः उसी प्रकार रेचक करके इस क्रिया को करें। ध्यान रहे कि क्रिया करते समय श्वास न भीतर जाय और न बाहर आये। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ५२ देखें।

३२—उदर-शक्ति-विकासक (९)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कमर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए क्रिया (७) की भाँति कमर पर हाथ रखें, तत्पश्चात् कमर के ऊपरी विभाग को आगे की ओर इतना झुकावें कि नाभि के पास ९० का कोण बन जाय।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से अन्दर के श्वास को बाहर निकाल कर पेट को जल्दी-जल्दी फुलावें तथा पिचकावें। जब श्वास लेने की इच्छा हो, तब पुनः दोनों नासिकारन्ध्रों से धीरे-धीरे श्वास भर लें। इस क्रिया को बार-बार करें। ध्यान रहे कि क्रिया समाप्त करने तक कमर की परिस्थिति वैसी ही रहेगी, जैसी ऊपर लिखी स्थिति में बताया गया है। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ५३ देखें।

विशेष—रेचक करके जितनी देर क्रिया की जाती है अथवा श्वास रोककर जितनी देर पेट फुलाया तथा पिचकाया जाता है, इस क्रम को एक बार कहते हैं। अतएव इसी क्रम के अनुसार आरम्भिक क्रम ५ बार होना चाहिए।

३३—उदर-शक्ति-विकासक (१०)

नौलि

स्थिति—दोनों पैरों के बीच एक हाथ का अन्दर रखते हुए दोनों हाथों से दोनों घुटनों को पकड़ें। तद्पश्चात् कमर के ऊपरी विभाग को इतना आगे की ओर झुकावें कि नाभि पर ९०° का कोण बन जाये।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से अन्दर की वायु को बाहर निकालकर पेट को पूर्णतया पिचकावें अर्थात् पूर्ण उड्डियान लगावें। तत्पश्चात् दोनों हाथों पर किञ्चित् बल लगाते हुए पेट की नौलि निकालें और बाएँ तथा दाएँ दोनों ओर नल को चक्राकार घुमावें। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ५४, ५५, ५६ देखें।

लाभ—हर प्रकार के रोग पेटकी खराबी के कारण ही उत्पन्न होते हैं। उदर-शक्ति-विकासक सभी क्रियाओं से पेट के समस्त रोग दूर हो जाते हैं। पेट का कोई भी रोग
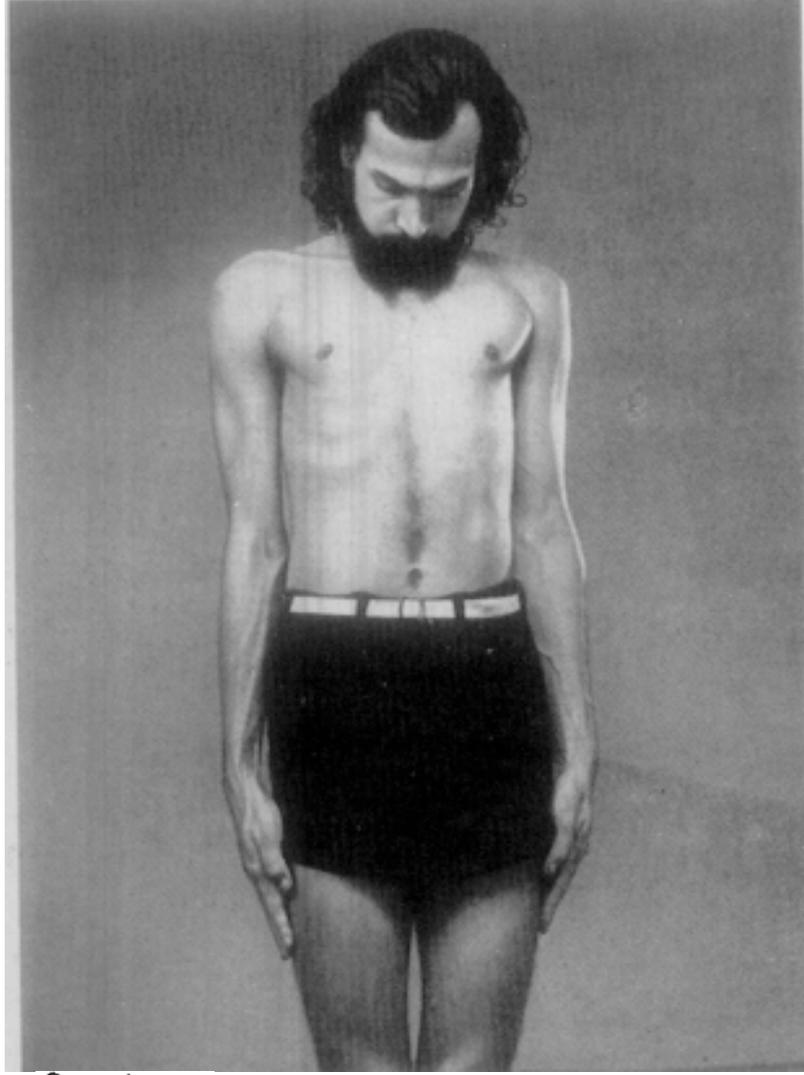
चित्र नं० ४६ क्रिया नं० २८

उदर-शक्ति-विकासक नामक पाँचवीं क्रिया। इसमें गाल फूला कर नेत्र बन्द करके कुम्भक किये हुए हैं तथा पेट फूला हुआ है।
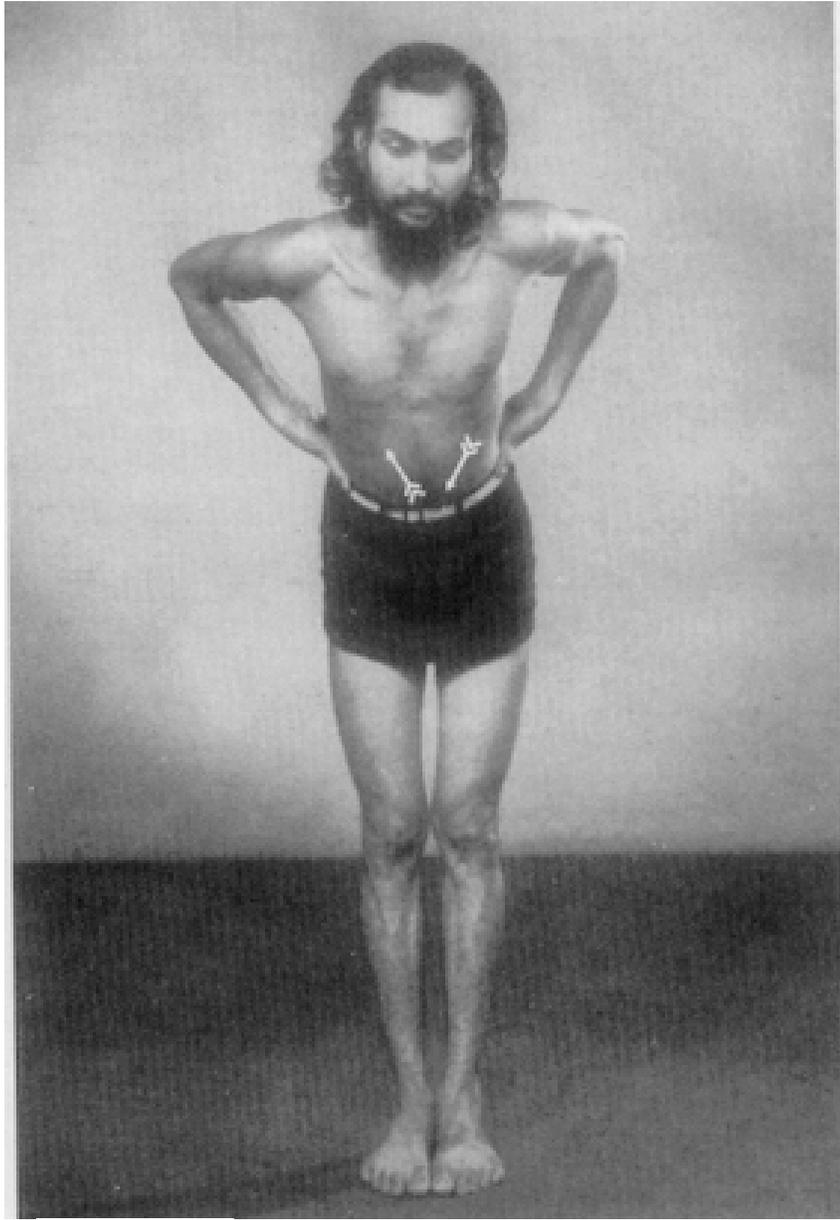
चित्र नं० ५०　　　　　　　　क्रिया नं० २६

उदर-शक्ति-विकासक नामक छठवीं क्रिया। इसमें किंचित् आगे की ओर झुककर पेट फुलाते-पिचकाते हुए श्वास-प्रश्वास कर रहे हैं।
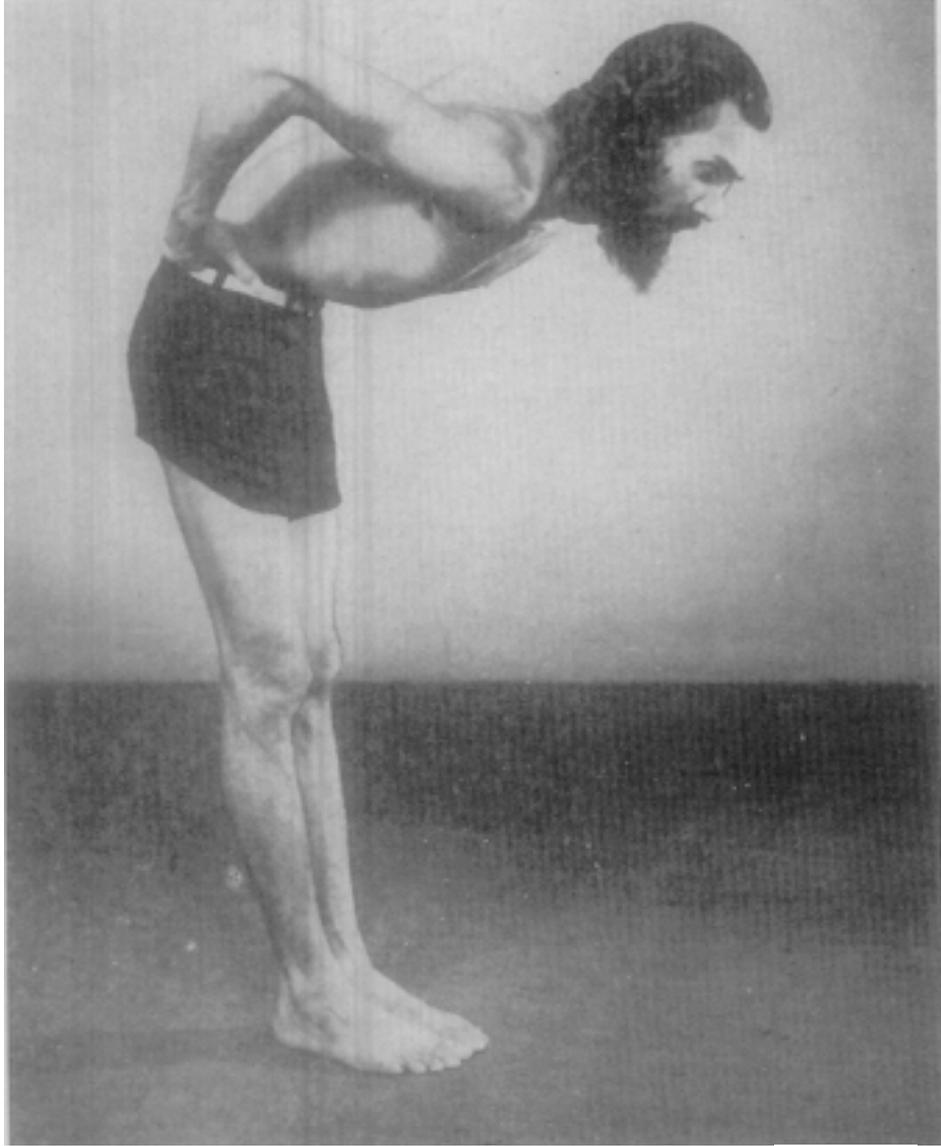
चित्र नं० ५१ क्रिया नं० ३८

उदर-शक्ति-विकासक नामक सातवीं क्रिया। इसमें नब्बे डिग्री का कोण बनाते हुए आगे की ओर झुककर पेट फुलाते-पिचकाते श्वास-प्रश्वास कर रहे हैं।
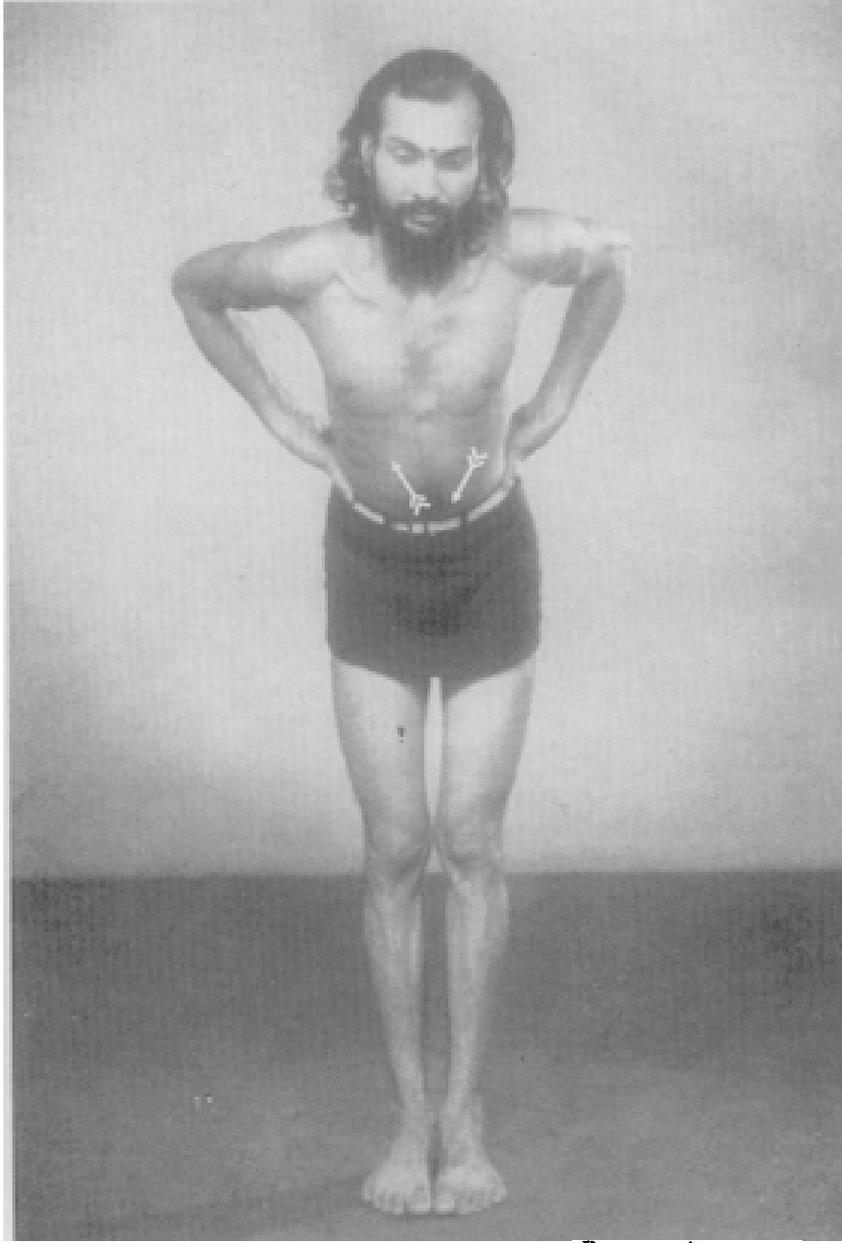
चित्र नं० ५२ क्रिया नं० ३१

उदर-शक्ति-विकासक नामक आठवीं क्रिया। इसमें श्वास को पूर्णतया बाहर निकाल कर किंचित् आगे की ओर झुककर पेट फुला-पिचका रहे हैं।
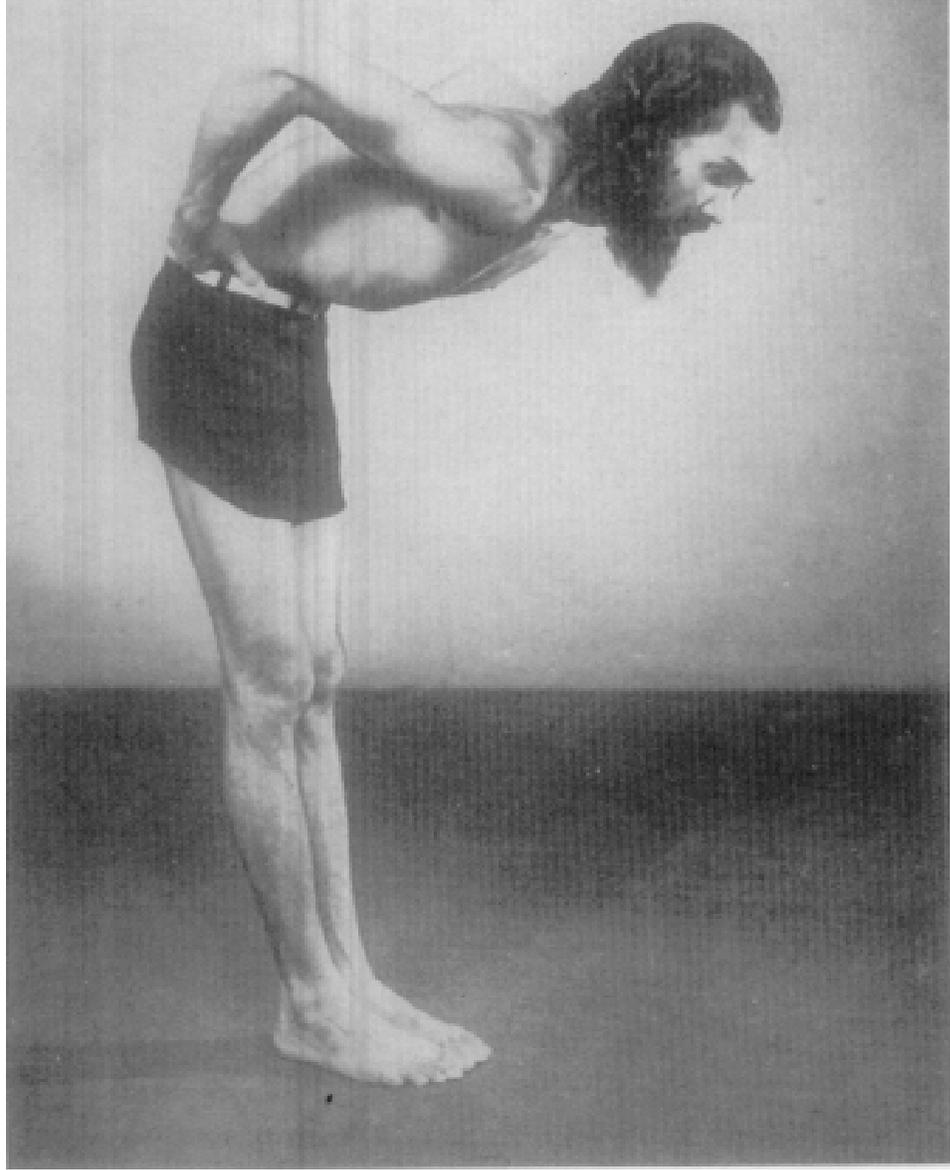
चित्र नं० ५३ क्रिया नं० ३२

उदर-शक्ति-विकासक नामक नवीं क्रिया। इसमें भी श्वास को पूर्णतया बाहर निकाल कर नब्बे डिग्री का कोण बनाते हुए आगे की ओर झुककर पेट फुला-पिचका रहे हैं।
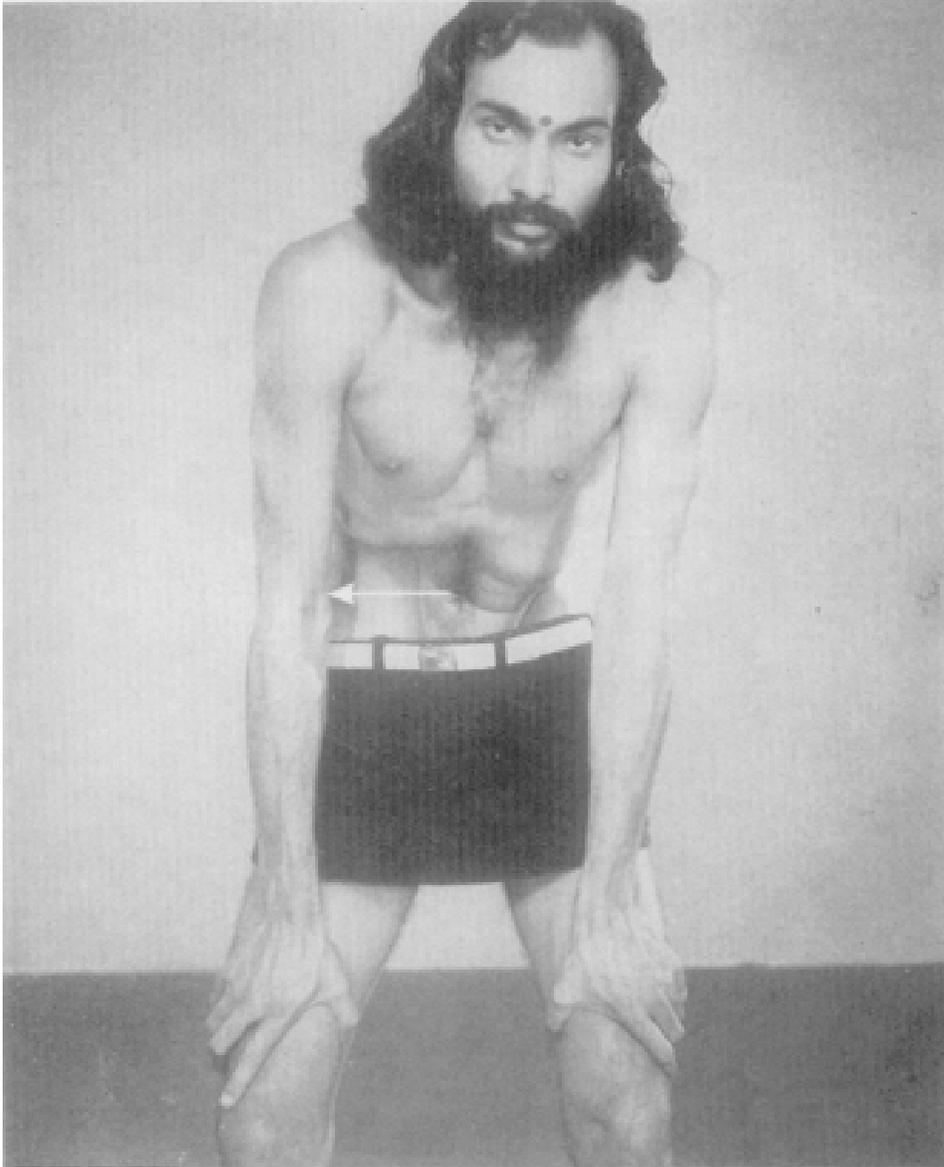
चित्र नं० ५४ क्रिया नं० ३३

(१) बाम नौली---उदर-शक्ति-विकासक (नौली) दसवीं क्रिया।
इसमें बाएँ हाथ पर बल देकर बाईं ओर नल निकाले हुए हैं।
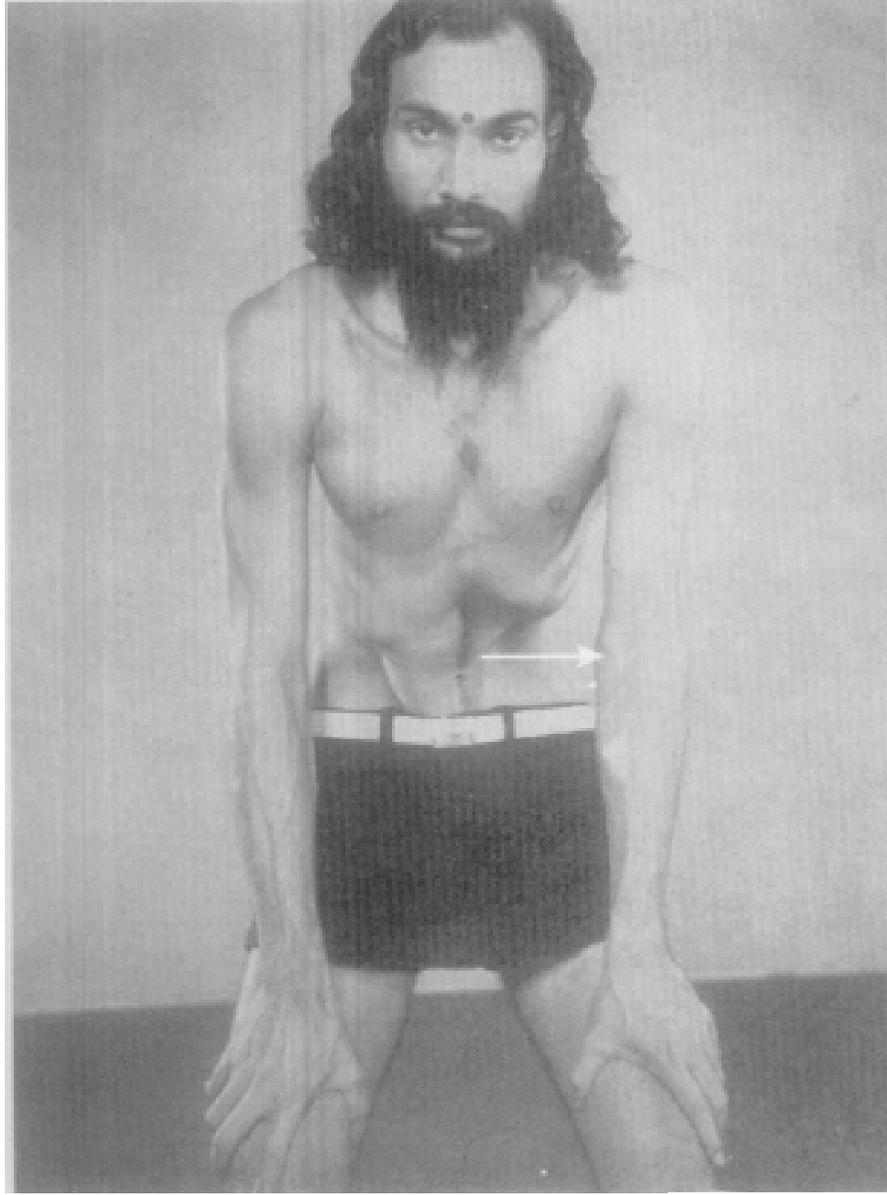
चित्र नं० ५५ क्रिया नं० ३३

(२) दक्षिण नौली——उदर-शक्ति-विकासक दसवीं क्रिया। इसमें दाहिने हाथ पर बल देकर दाहिनी ओर नल निकाले हुए हैं।
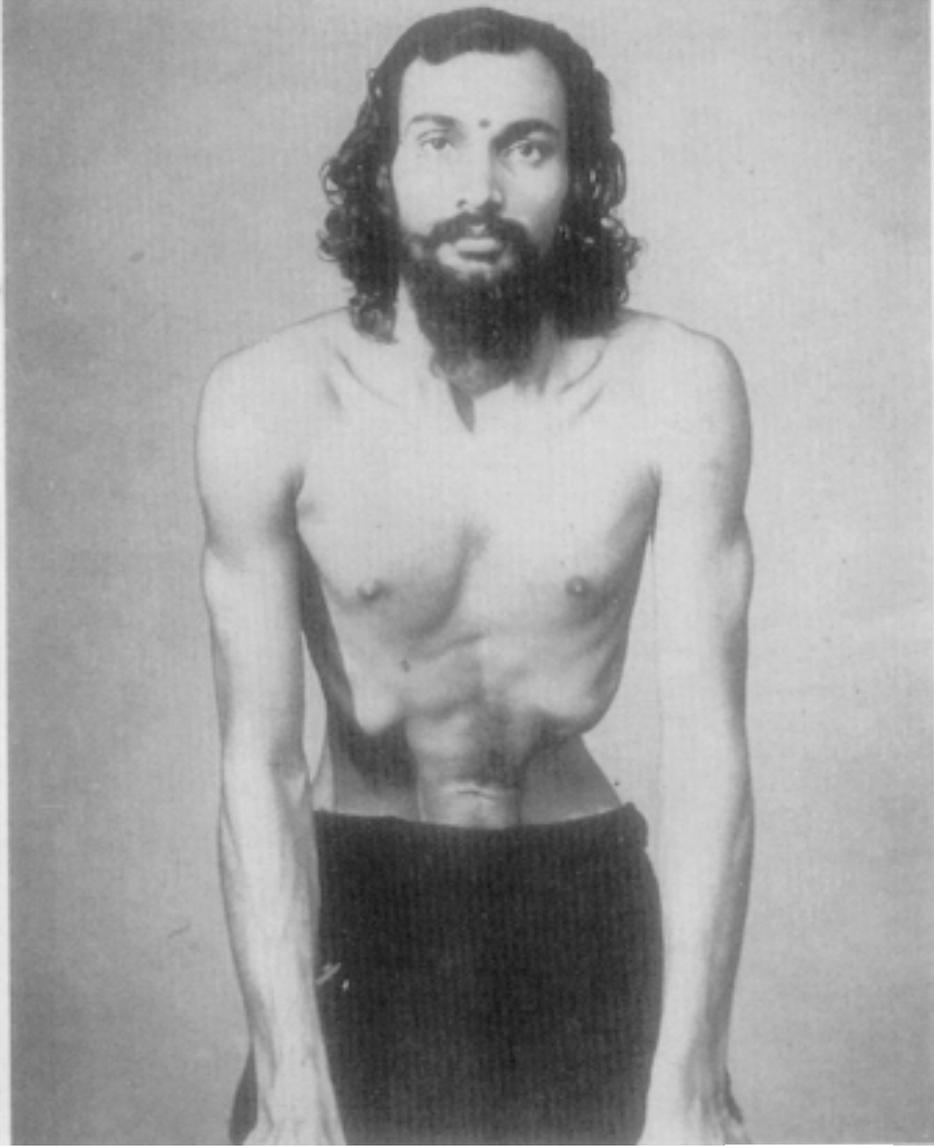
चित्र नं० ५६ क्रिया नं० ३३

(३) मध्य नौली--उदर-शक्ति-विकासक दसवीं क्रिया। इसमें दोनों हाथों पर बल देकर पेट के मध्य में नल निकाले हुए हैं।

चाहे कितना ही पुराना क्यों न हो, इन क्रियाओं का निरन्तर अभ्यास करने से शीघ्र ही दूर हो जाता है। उदर-शक्ति-विकासक क्रियाएँ पेट की स्थूलता को कम करने में दिव्य औषधि का काम करती हैं। इन क्रियाओं की विशेषता यह है कि नाभिकेन्द्र से संयुक्त सभी नाड़ियों में दिव्य शक्ति का संचार होता है तथा आध्यात्मिक शक्ति का अद्भुत विकास होता है। योगियों के चरम लक्ष्य की प्राप्ति में ये क्रियाएँ बहुत सहायक हैं, क्योंकि इन क्रियाओं से कुण्डलिनी शक्ति की जागृति में बहुत सहायता मिलती है।

३४—कटि-शक्ति-विकासक (१)

स्थिति (क)—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कमर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधें। अँगूठा मुट्ठी के अन्दर ही रहे। तत्पश्चात् दाएँ हाथ को कमर के पिछले भाग पर स्थित करते हुए बाएँ हाथ से दाएँ हाथ की कलाई को पकड़ें।

क्रिया (क)—दोनों नासिकारन्ध्रों से धीरे-धीरे श्वास भरते हुए कमर से ऊपरी विभाग को यथासाध्य पीछे झुकावें और कुछ देर उसी परिस्थितिमें रुकें, तत्पश्चात् दोनों नासिकारन्ध्रों से श्वास निकालते हुए सिर को घुटने से लगावें। इस क्रिया को बार-बार करें। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ५७ तथा ५८ देखें।

स्थिति (ख)—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कमर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर बाएँ हाथ की मुट्ठी बाँधें। अँगूठा मुट्ठी के अन्दर ही रहे। तत्पश्चात् बाएँ हाथ को कमर के पिछले भाग पर स्थित करते हुए दाएँ हाथ से बाएँ हाथ की कलाई को पकड़ें।

क्रिया (ख)—दोनों नासिकारन्ध्रों से धीरे-धीरे श्वास भरते हुए कमर से ऊपरी विभाग को यथासाध्य पीछे झुकावें और कुछ देर उसी स्थिति में रुकें, तत्पश्चात् दोनों नासिकारन्ध्रों से श्वास निकालते हुए सिर को घुटनों से लगावें। इस क्रिया को बार-बार करें। आरम्भिक क्रम ५ बार।

३५—कटि-शक्ति-विकासक (२)

स्थिति—दोनों पैरों को यथासाध्य फैलाकर दोनों हाथ कमर पर इस प्रकार रखें कि दोनों अँगूठे आगे की ओर हों तथा अँगुलियाँ पीछे की ओर रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों द्वारा श्वास भरते हुए कमर से ऊपरी विभाग को यथासाध्य पीछे की ओर ले जायें और कुछ क्षण उसी परिस्थिति में रहें। तत्पश्चात् दोनों नासिकारन्ध्रों से धीरे-धीरे श्वास निकालते हुए कमर से ऊपरी विभाग को आगे की ओर इतना झुकावें कि सिर पृथ्वी से लग जाय। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ५९ तथा ६० देखें।

३६—कटि-शक्ति-विकासक (३)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से शीघ्रतापूर्वक श्वास भरते हुए कमर से ऊपरी विभाग को झटके के साथ यथासाध्य पीछे की ओर झुकावें। तत्पश्चात् शीघ्रतापूर्वक श्वास छोड़ते हुए सिर को झटके के साथ घुटने से लगावें।

ध्यान रहे कि क्रिया करते समय दोनों हाथ जंघा तथा घुटने को स्पर्श न करें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ६१ तथा ६२ देखें।

३७—कटि-शक्ति-विकासक (४)

स्थिति (क)—दोनों पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से कमर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर दोनों हाथों को गिद्ध-पंख की भाँति फैलाकर खड़े रहें। चित्र नं० ६३ देखें।

क्रिया (क)—दोनों हाथों को गिद्ध-पंख की भाँति फैलाकर कमर से ऊपरी विभाग को बाईं तरफ यथासाध्य झुकावें। तत्पश्चात् धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठते हुए समावस्था में आकर पुनः दाईं ओर बगल में झुकायें। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ६४ देखें।

विशेष—क्रिया करते समय हाथ की स्थिति किञ्चित् भी ऊँची-नीची न हो और कमर से ऊपरी विभाग को भी किञ्चित् आगे तथा पीछे न झुकावें। क्रिया करते समय यथासाध्य यह प्रयत्न रहे कि कमर को झुकाते समय इतना झुकावें कि हाथ सीधा रहने पर भी पिण्डली से मिल जाय।
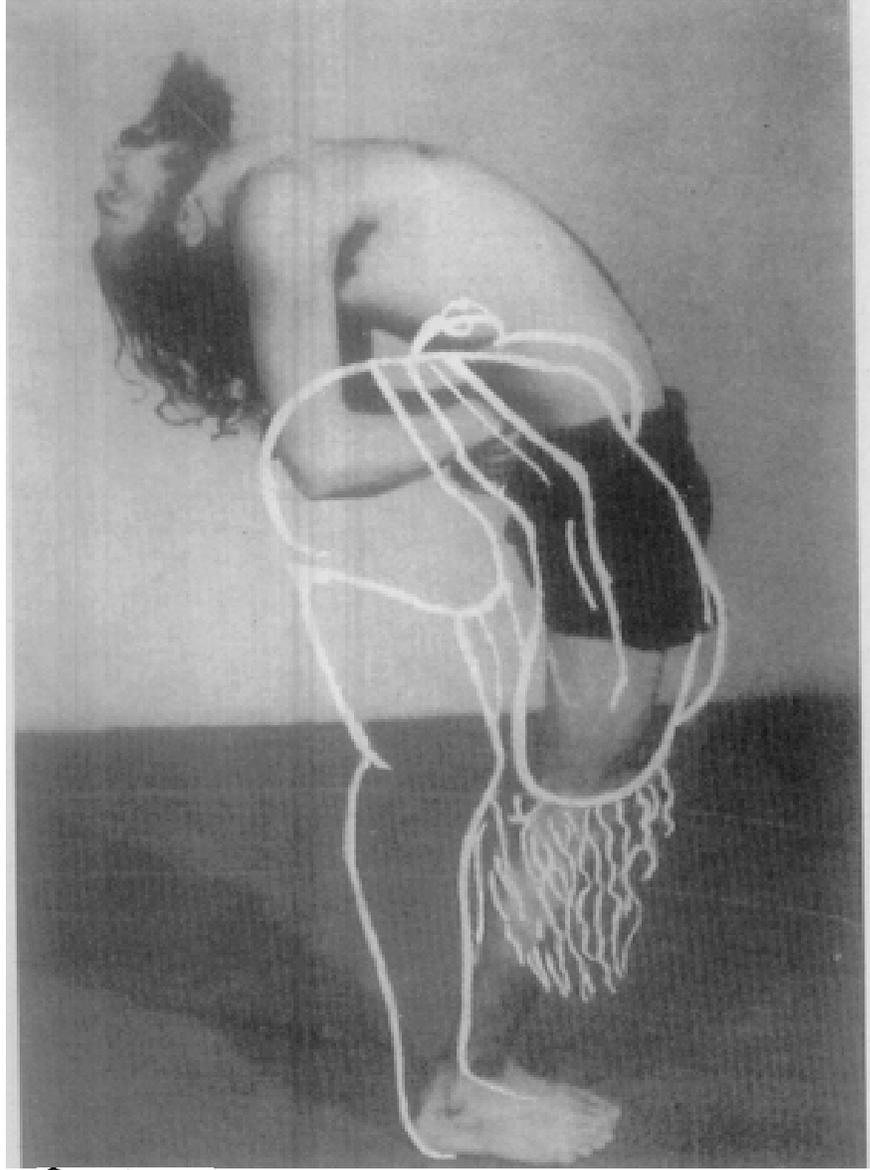
चित्र नं० ५७ क्रिया नं० ३४

कटि-शक्ति-विकासक पहली क्रिया। इसमें श्वास भरकर यथासाध्य कमर से ऊपरी विभाग को पीछे ले गये हैं।

चित्र नं० ५८ क्रिया नं० ३४

कटि-शक्ति-विकासक पहली क्रिया। इसमें श्वास छोड़ते हुए कमर से ऊपरी विभाग को आगे की ओर इस प्रकार झुकाया है कि सिर घुटनों से लग गया है।
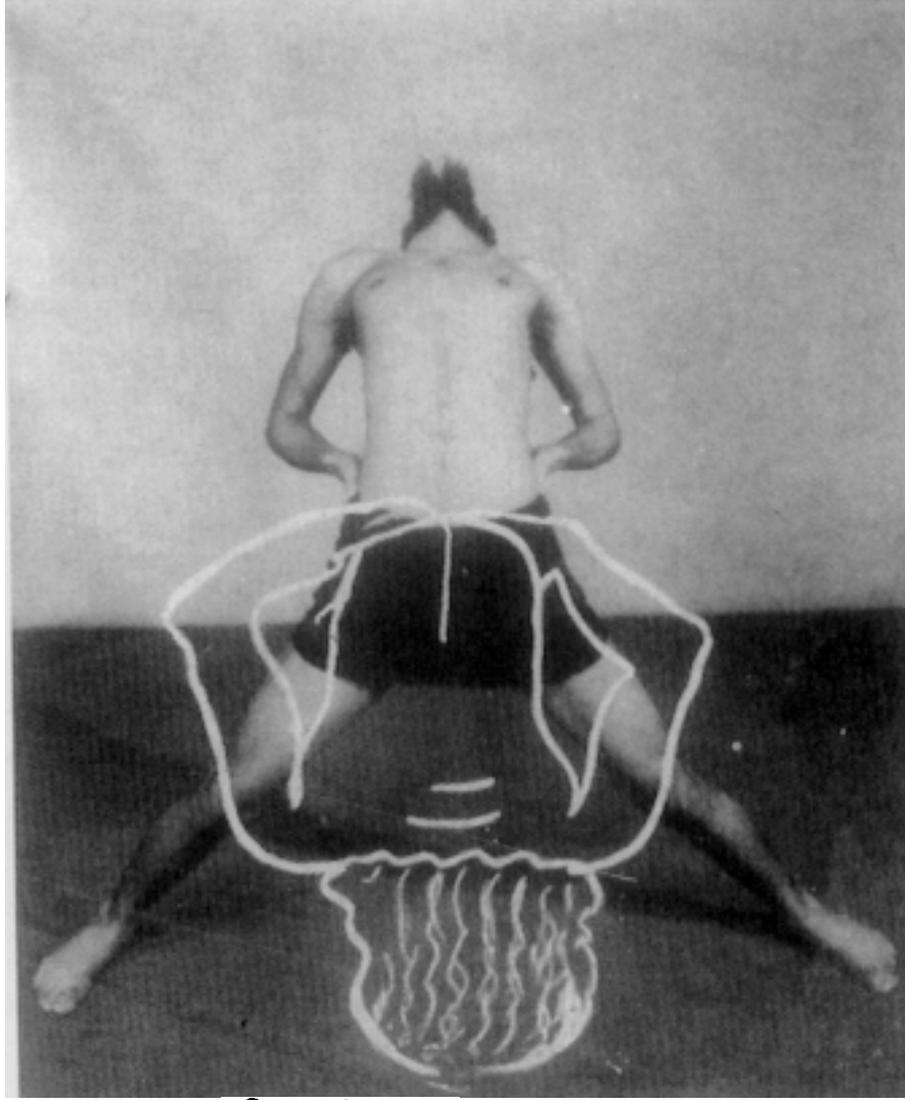
चित्र नं० ५६ क्रिया नं० ३५

कटि-शक्ति-विकासक दूसरी क्रिया। इसमें पाँव को यथासाध्य फैला कर कमर पर हाथ रख श्वास भरते हुए पीछे की ओर झुके हैं।
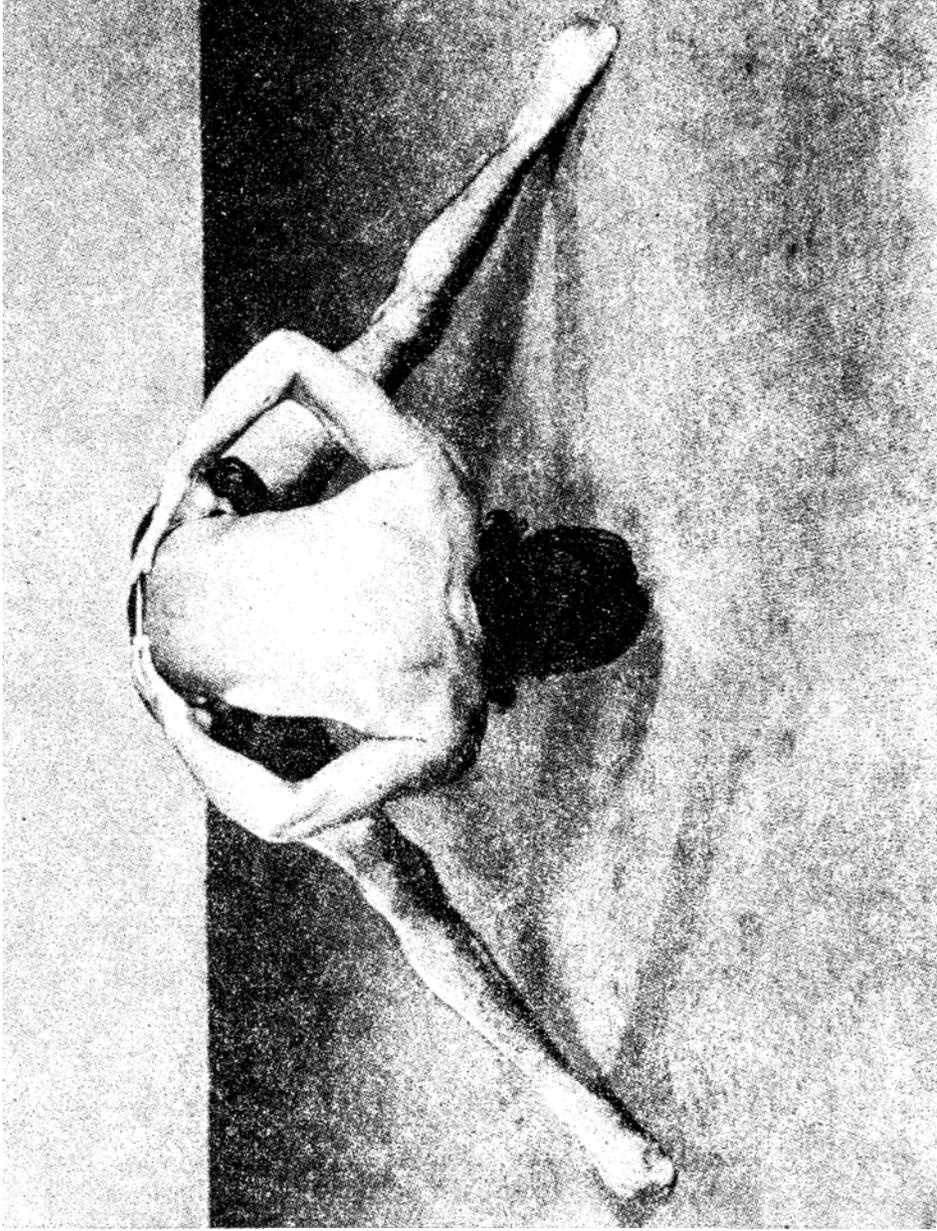
चित्र नं० ६० कटि-शक्ति-विकासक दूसरी क्रिया। क्रिया नं० ३५

इसमें श्वास छोड़ते हुए सिर को पृथ्वी से लगाये हुए हैं
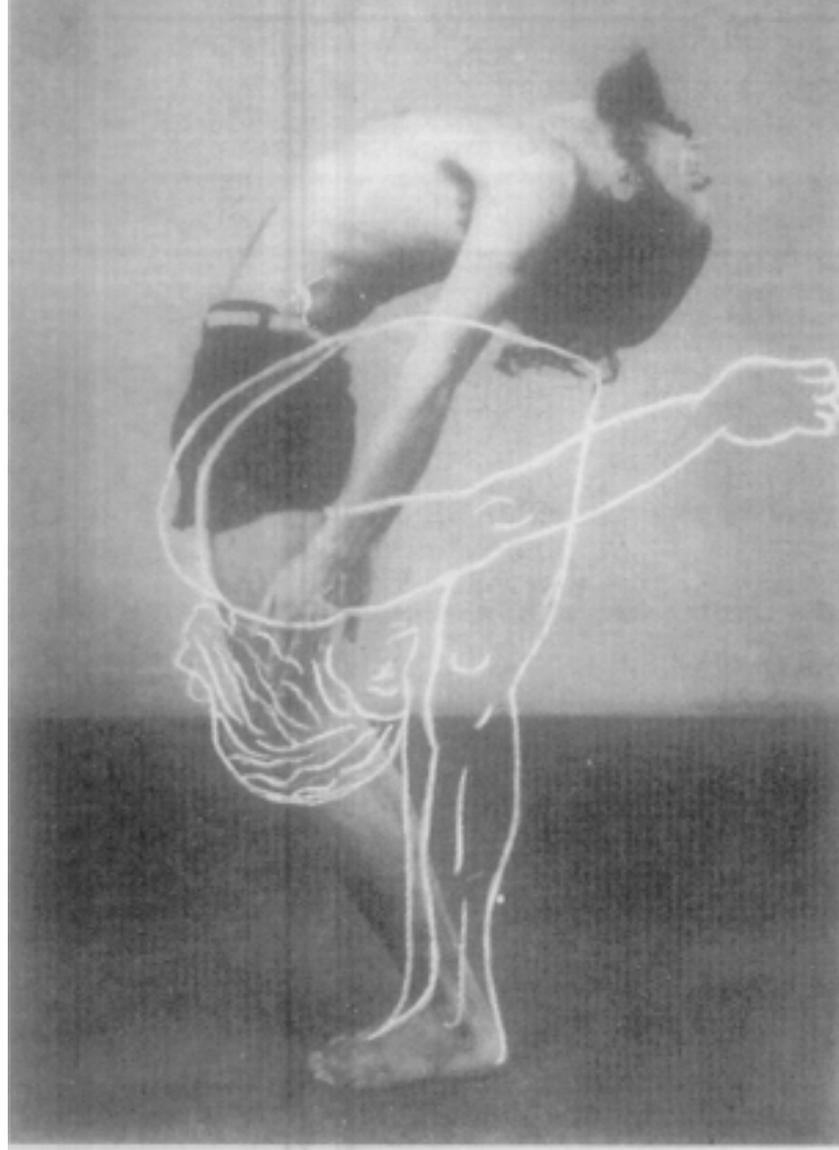
चित्र नं० ६१ क्रिया नं० ३६

कटि-शक्ति-विकासक तीसरी क्रिया। इसमें तीव्र वेग से श्वास भरते हुए झटके के साथ पीछे की ओर गये हैं।
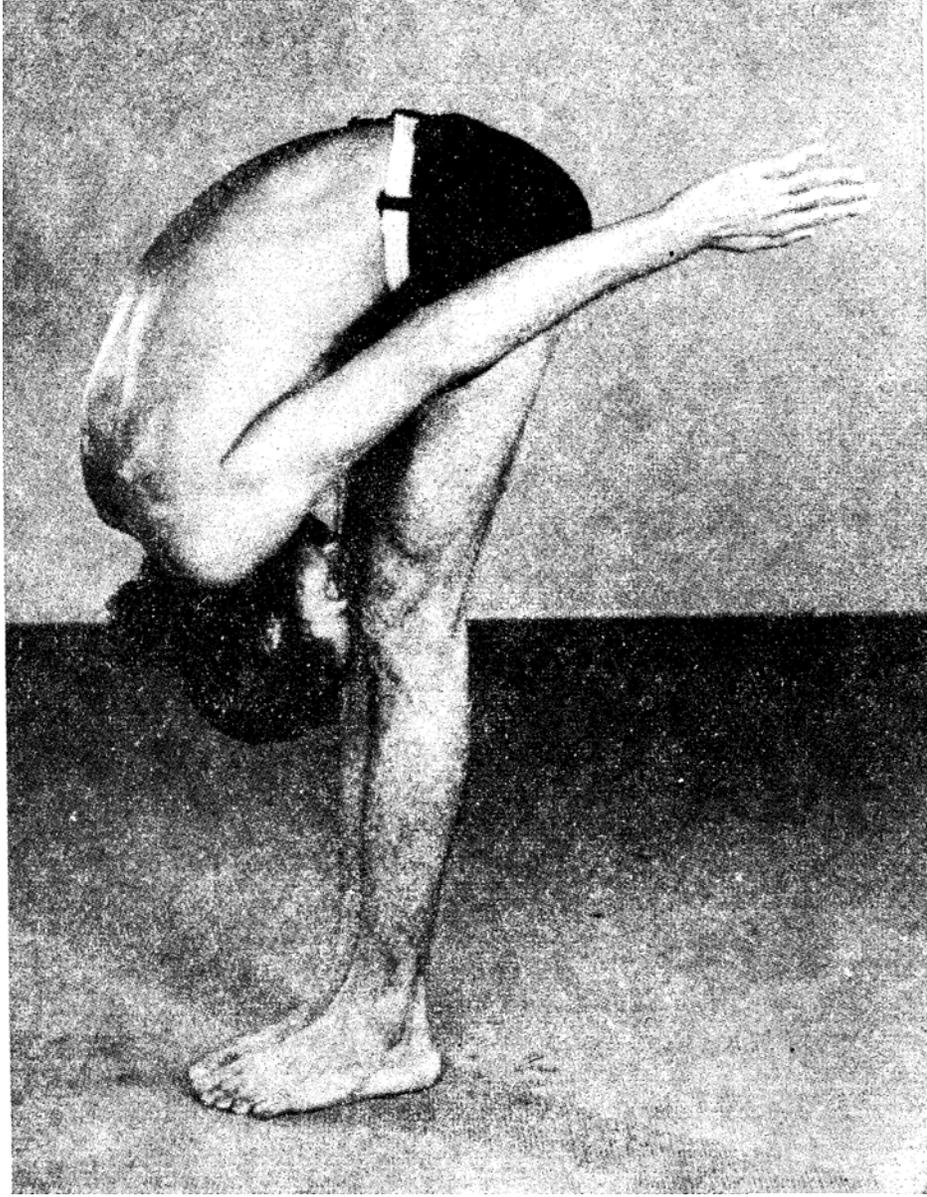
चित्र नं० ६२ क्रिया नं० ३६

कटि-शक्ति-विकासक तीसरी क्रिया। इसमें तीव्र वेग से श्वास छोड़ते हुए झटके के साथ इस प्रकार आगे आये हुए हैं कि सिर घुटनों से लग गया है।
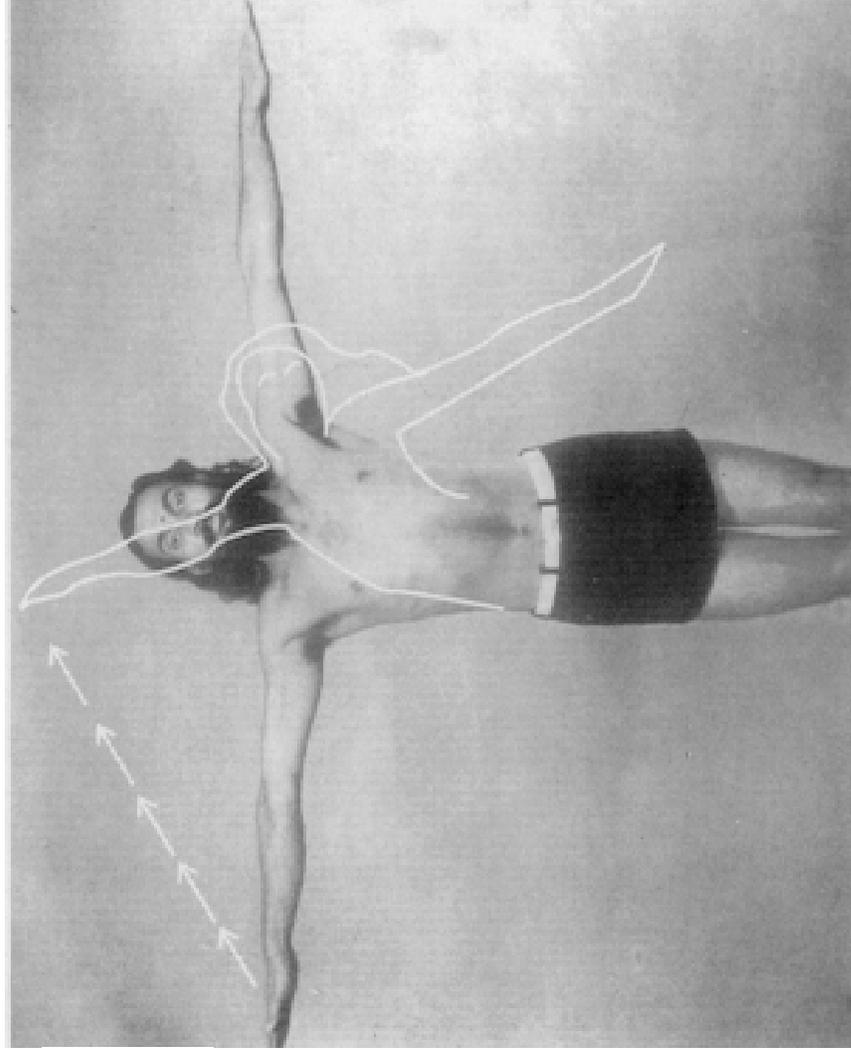
चित्र नं० ६२ क्रिया नं० ३७

कटि-शक्ति-विकासक चौथी क्रिया

इसमें दोनों हाथों को गृध्र-पंख की भाँति फैला कर खड़े हैं
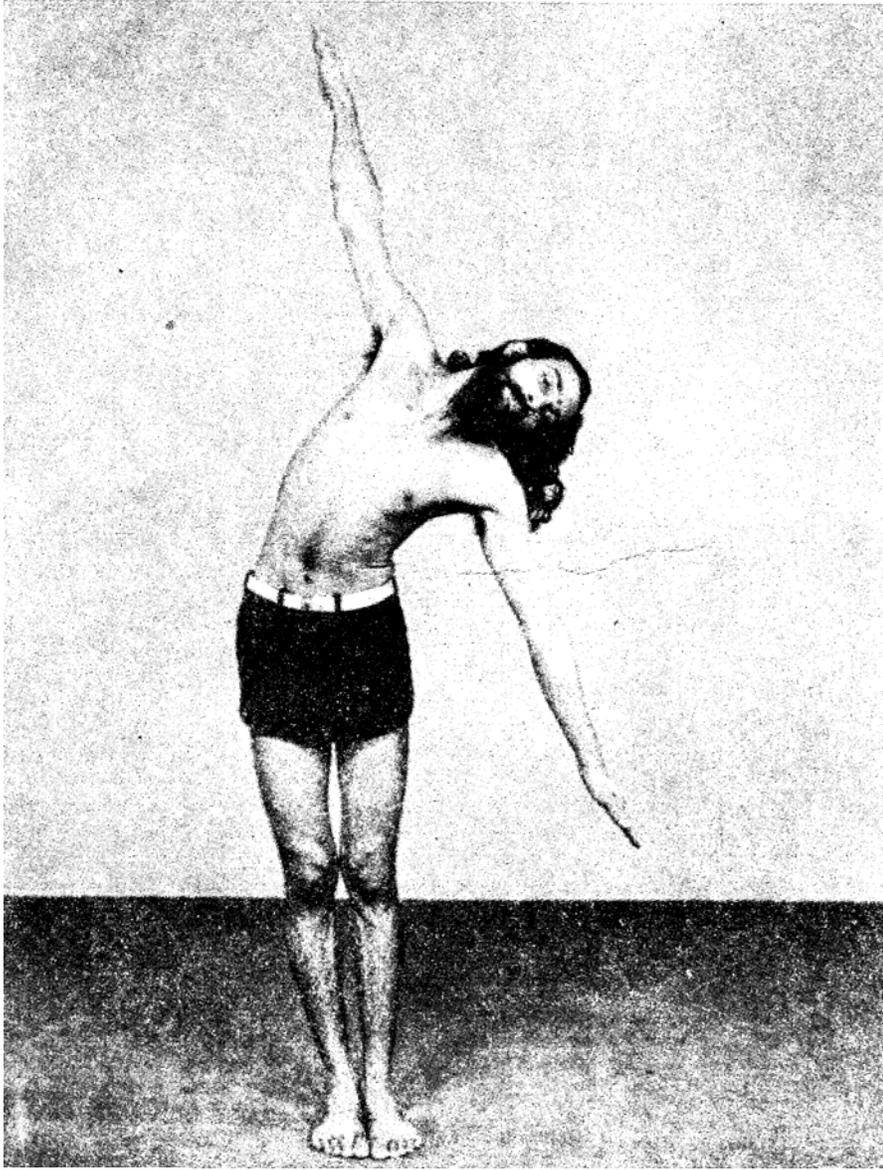
चित्र नं० ६४ क्रिया नं० ३७

कटि-शक्ति-विकासक चौथी क्रिया। इसमें कमर के ऊपरी भाग को इस प्रकार झुकाया गया है कि दोनों हाथों को पृथ्वी के समानान्तर रखते हुए पिण्डली को स्पर्श करने का प्रयास कर रहे हैं।

स्थिति (ख)—दोनों पैरों में एक हाथ का अन्तर रखकर पुनः इसी क्रिया को करें। आरम्भिक क्रम ५ बार।

३८—कटि-शक्ति-विकासक (५)

स्थिति—दोनों पैरों में एक हाथ का अन्तर रखकर खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से वेग से श्वास भरते हुए कमर से ऊपरी विभाग को दोनों हाथों के साथ अर्ध-चक्राकार घुमाते हुए श्वास दाईं ओर छोड़ें। इसी प्रकार श्वास भरते हुए बाईं ओर छोड़ें। इस क्रिया को क्रमशः करें। आरम्भिक क्रम १० बार। चित्र नं० ६५ देखें।

लाभ—पूर्वोक्त कटि-शक्ति-विकासक पाँचों क्रियाओं से कमर सुडौल तथा पतली हो जाती है। इन क्रियाओं का निरन्तर अभ्यास करने से कमर सम्बन्धी हर प्रकार के दर्द दूर हो जाते हैं। जो लोग कम समय में ही अपनी कमर को सुडौल तथा पतली बनाना चाहें, उन्हें इन क्रियाओं से आशातीत लाभ हो सकता है। इन क्रियाओं के गुण अद्‌भुत हैं। २५ वर्ष तक की अवस्था के अन्दर तक के स्त्री-पुरुषों की लम्बाई बहुत बढ़ सकती है तथा २५ से ३० वर्ष की अवस्था के अन्दर के स्त्री-पुरुषों की लम्बाई में भी कुछ विकास अवश्य हो सकता है। ठिगनापन दूर करने का यह सुन्दर उपाय है। इन क्रियाओं का विशिष्ट गुण यह है कि इनसे कमर में विशेष पुष्टता आती है तथा स्तम्भन-शक्ति बढ़ती है। नृत्य के कलाकारों के लिए तो यह एक दिव्य देन है। इन क्रियाओं से कोई भी आदमी बहुत थोड़े समय में सीना चौड़ा तथा कमर पतली कर सकता है। इनका निरन्तर अभ्यास करने से शरीर सुडौल, पुष्ट और कान्तिमान हो जाता है।

३९—मूलाधारचक्र-शुद्धि

स्थिति—दोनों पैर परस्पर मिले हुए हों, जंघाएँ परस्पर सटी हुई हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा करके ग्रीवा समावस्था में रखते हुए खड़े रहें।

क्रिया—मूलाधार एवं नितम्बपृष्ठ को दृढ़ता से मिलाकर गुदा को आन्तरिक बल द्वारा अपान वायु-सहित ऊपर खींचें। श्वास साधारण रहे। वस्तुतः क्रिया करते समय श्वास की गति रुक जाती है। इतना बल लगता है कि शरीर में कम्पन होने लगता है। आरम्भिक क्रम ५ मिनट। आन्तरिक क्रिया होने के कारण चित्र नहीं दिया गया है।

इसी क्रिया को पैरों में चार अंगुल का अन्तर रख कर करें। आरम्भिक क्रम ५ मिनट। चित्र नं० ६६ देखें।

उपनिषदों में इस क्रिया के विषय में इस प्रकार वर्णन है :—

अपानमूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धो विधीयते।
अपानप्राणयोरैक्यं क्षयान्मूत्रपुरीषयोः ।।
युवा भवति वृद्धोऽपि सततं मूलबन्धनात् ।।

अर्थात्—अपान वायु ऊपर खींचने से मूलबन्ध लगता है। यौगिक युक्ति द्वारा अपान वायु ऊपर खींचने पर प्राण वायु से मिलता है। प्राण और अपान वायु के मिलने से मलमूत्र का क्षय होता है अर्थात् स्थूलता के स्थान पर सूक्ष्मता आती है। निरन्तर इसका अभ्यास करने से वृद्ध भी युवा बन जाता है।

४०—उपस्थ तथा स्वाधिष्ठानचक्र-शुद्धि

स्थिति—पैरों के अन्दर एक हाथ का अन्तर रखकर सीधे खड़े रहें।

क्रिया—उपस्थ को गुदा सहित आन्तरिक बल से ऊपर की ओर खींचने का प्रयत्न करें। क्रिया करते समय वस्तुतः स्वाभाविक श्वास की गति रुक जाती है। पाँव, घुटना, जंघा आदि काँप जाते हैं। अन्य क्रियाओं की अपेक्षा इसमें बहुत बल लगता है। अतएव इसे समझ कर सावधानी से करना चाहिए। चित्र नं० ६७ देखें।

विशेष—मल तथा मूत्र त्यागते समय जिस प्रकार नीचे की ओर स्वाभाविक रूप में बल लगता है, इसका ठीक उल्टा करना है, अर्थात् ऊपर की ओर खींचना है। इसी को मूलबन्ध और उपस्थ की क्रिया कहते हैं।

लाभ—उपरोक्त दोनों क्रियाओं से गुदा तथा उपस्थ सम्बन्धी सारे रोग दूर होते हैं। मधुमेह (डाइबीटीज), बवासीर, भगन्दर, खूनी बवासीर आदि असाध्य रोग शीघ्रातिशीघ्र समूल नष्ट हो जाते हैं। इन क्रियाओं में यह विशेष गुण है कि ये रोगों को जड़ से नष्ट करके स्थायी लाभ पहुँचाती हैं। उपस्थ के बहुत से रोग—सूजाक, आतशक तथा वीर्य सम्बन्धी सारे रोग इन क्रियाओं का निरंतर अभ्यास करने से समूल नष्ट हो जाते हैं। प्रमेह, स्वप्नदोष आदि तो सदा के लिए लुप्त हो जाते हैं। इन क्रियाओं का निरन्तर अभ्यास करने से स्त्रियों को भी अद्भुत लाभ होता है।

चित्र नं० ६५ क्रिया नं० ३८

कटि-शक्ति-विकासक पाँचवीं क्रिया। इसमें तेजी से श्वास भरते तथा छोड़ते हुए कमर से ऊपरी विभाग को चक्राकार घुमाकर पीछे की ओर ले गये हैं।
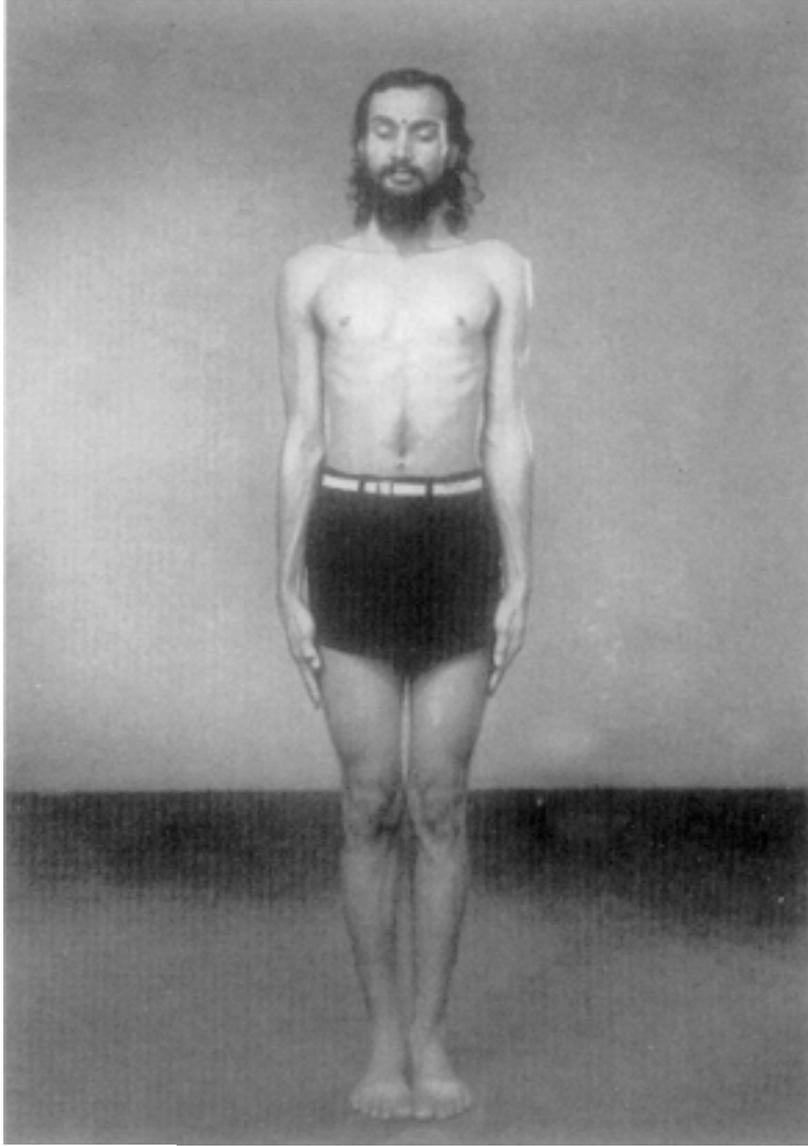
चित्र नं० ६६ क्रिया नं० ३९

मूलाधारचक्र शुद्धि नामक उञ्चालीसवां क्रिया। इसमें शरीर के नीचले विभाग का संकोचन करते हुए बलपूर्वक गुदाचक्र को ऊपर खींच रहे हैं।

लिकोरिया, प्रदर और यौन सम्बन्धी सारे विकार तथा गर्भाशय के सारे दोष दूर हो जाते हैं। इनसे स्तम्भन-शक्ति बढ़ती है तथा ब्रह्मचर्य की पुष्टि होती है।

४१—कुण्डलिनी-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैरों में चार अंगुल का अन्तर रखकर पैरों से सिर तक के विभाग को सरलता से सीधा रखकर खड़े रहें।

क्रिया—दोनों पैरों को क्रम से नितम्बपृष्ठ पर जोर से मारें। नीचे आते समय पैर अपने-अपने स्थान पर ही पड़ें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ६८ देखें।

लाभ—इससे कुण्डलिनी-शक्ति की जागृति होती है। इस पर अनेक ग्रन्थों में बहुत से श्लोक मिलते हैं। उपनिषदों में भी इस प्रकार वर्णन है :—

कन्दोर्ध्वे कुण्डलीशक्तिरष्टधा कुण्डलाकृतिः।
बन्धनाय च मूढानां योगिनां मोक्षदा सदा॥

अर्थात्—कन्द के ऊपरी भाग में कुण्डलिनी नाम की महाशक्ति कुण्डलाकार (गोलाकार) विराजमान है। यही मूर्खों के बन्धन और योगियों के मोक्ष का कारण है।

मूलाधारे-आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता।
शयिता भुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता॥
यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवः पशुर्यथा।
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोगं समभ्यसेत्॥

अर्थात्—सब से उत्तम देवता कुण्डलिनी नामक आत्मशक्ति सर्प के आकारवाली, साढ़े तीन लपेट की गुंडरी (गोला) बाँधे मूलाधार में सो रही है। जब तक यह देह में सोती रहती है, तब तक जीव पशु की भाँति अज्ञानी बना रहता है, सत्य और असत्य कुछ नहीं जान पाता। परन्तु जब यह जागती है, तब ही सत्य का ज्ञान प्राप्त होता है। जब तक यह नहीं जागती है, तब तक चाहे करोड़ों प्रकार के योगाभ्यास करें, परन्तु ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

सशैलवनधात्रीणां यथाऽऽधारोऽहिनायकः।
सर्वेषां योगतन्त्राणां तथाऽधारो हि कुण्डली॥

अर्थात्---जैसे सशैलवन-धारिणी पृथ्वी का आधार शेषनाग हैं, वैसे ही समस्त योगतन्त्रों का आधार कुण्डलिनी है। इसीलिए कहा भी है :---

कुण्डली कुटिलाकारा सर्पवत्परि कीर्तिता।
सा शक्तिश्चालिता येन स मुक्तो नात्र संशयः ।।

अर्थात्---यह कुण्डलिनी सर्पिणी के समान कुटिल आकारवाली है। जिसने इसे चला दिया है, बस वही मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। मूलाधार से ऊपर पहुँचा देने का अर्थ यहाँ कुण्डलिनी का चलाना है।

विशेष---कुण्डलिनी जागृत करने की अनेक विधियाँ हैं, जिनमें से एक यहाँ दी गई है।

४२--जंघा-शक्ति-विकासक (१)

स्थिति---पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर खड़े रहें।

क्रिया (क)---नासिकारन्ध्रों द्वारा श्वास भरते हुए दोनों हाथों को ऊपर ले जायें और साथ ही पैरों के पंजों के बल कूदकर दोनों पैरों को फैलावें। तत्पश्चात् नासिका-रन्ध्रों द्वारा श्वास निकालते हुए हाथ नीचे लावें और साथ ही पैरों को भी पंजों के बल कूदकर मिलावें। ध्यान रहे, हाथ नीचे लाते समय जंघा को स्पर्श न करें। पैरों को फैलाते और मिलाते समय घुटने न मुड़ें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ६६ देखें।

क्रिया (ख)---पूर्व परिस्थिति में ही खड़े होकर इसी क्रिया को विपरीत क्रम से श्वास लेते और छोड़ते हुए करें, जैसें ऊपरवाली क्रिया में प्रथम हाथ ऊपर ले जाते समय श्वास खींचते हैं, परन्तु इस में हाथ ऊपर ले जाते समय श्वास छोड़ते हैं। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र ६६ देखें।

४३--जंघा-शक्ति-विकासक (२)

स्थिति (क)---पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से स्कंध तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर ग्रीवा को समावस्था में रखते हुए खड़े रहें।

क्रिया (क)---नासिका द्वारा श्वास भरते हुए दोनों हाथों को वक्षःस्थल के सामने पृथ्वी के समानान्तर फैलाकर नीचे की ओर धीरे-धीरे बैठें। जब जंघाएँ पृथ्वी के
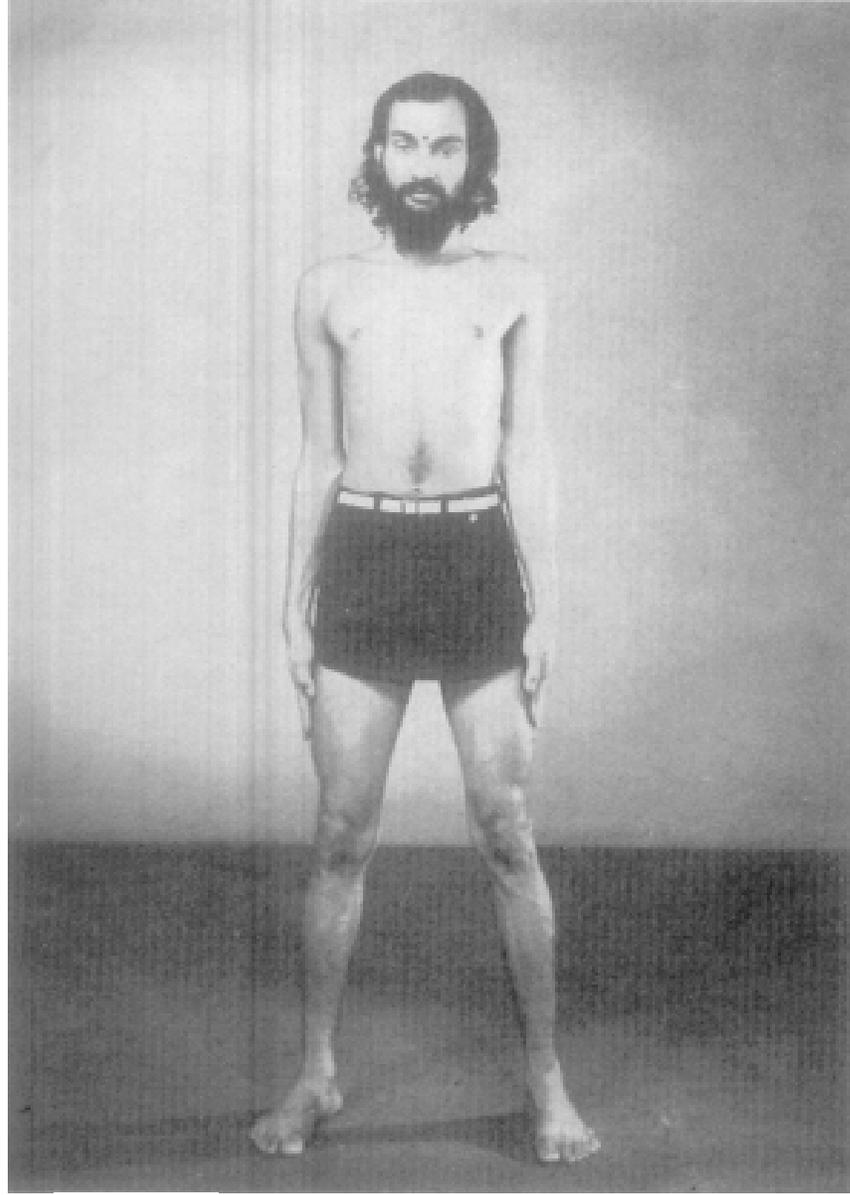
चित्र नं० ६७ क्रिया नं० ४०

उपस्थ तथा स्वाधिष्ठानचक्र-शुद्धि नामक चालीसवीं क्रिया। इसमें आन्तरिक बल द्वारा गुदा सहित उपस्थ को ऊपर खींच रहे हैं।
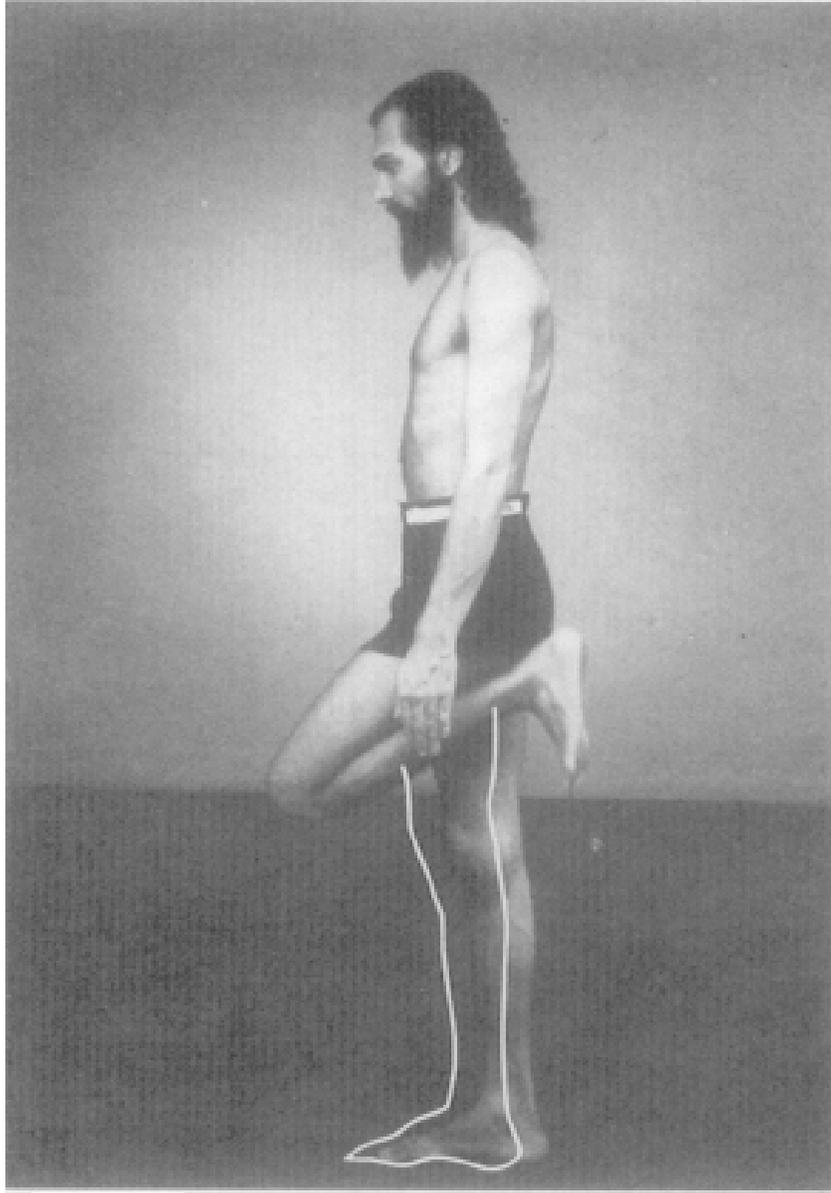
चित्र नं० ६८ क्रिया नं० ४१

कुण्डलिनी-शक्ति-विकासक नामक इकतालीसवीं क्रिया। इसमें एड़ी से क्रमशः नितम्बपृष्ठ पर जोर से मार रहे हैं।
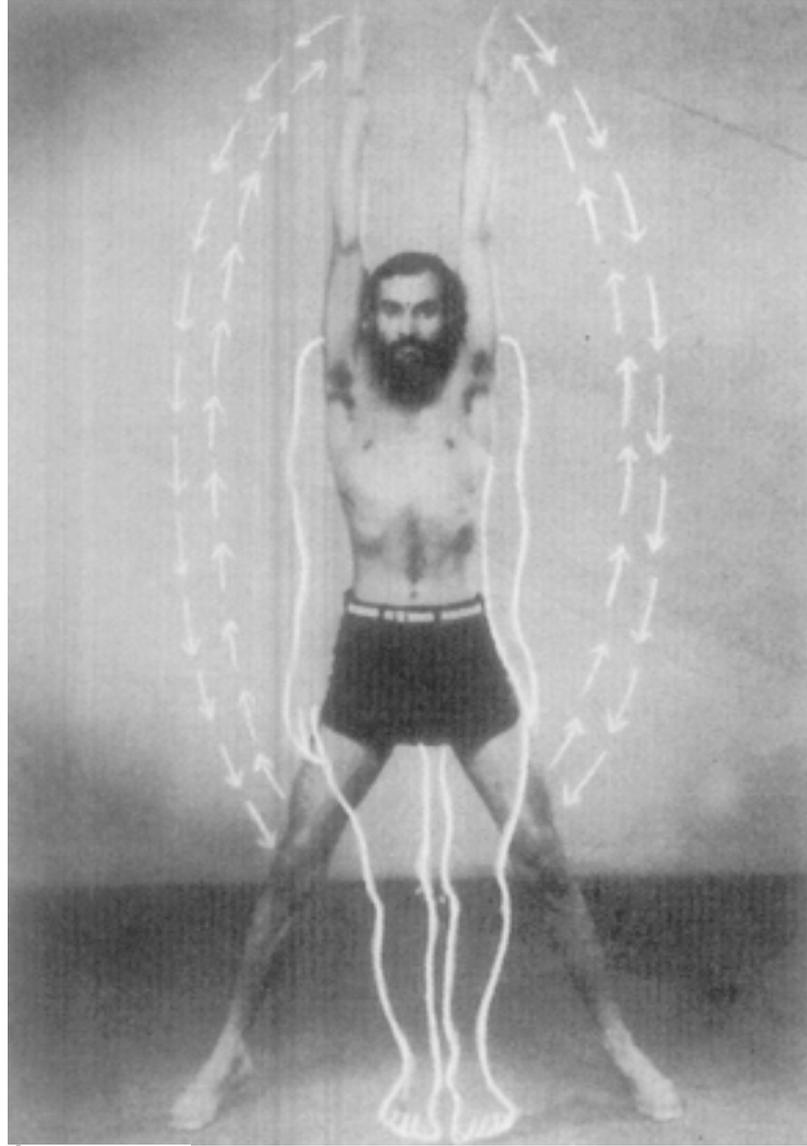
चित्र नं० ६६ क्रिया नं० ४२

जंघा-शक्ति-विकासक पहली क्रिया।] इसमें तेजी से श्वास भरकर हाथों को ऊपर ले जाते हुए पंजों पर खड़े हैं।
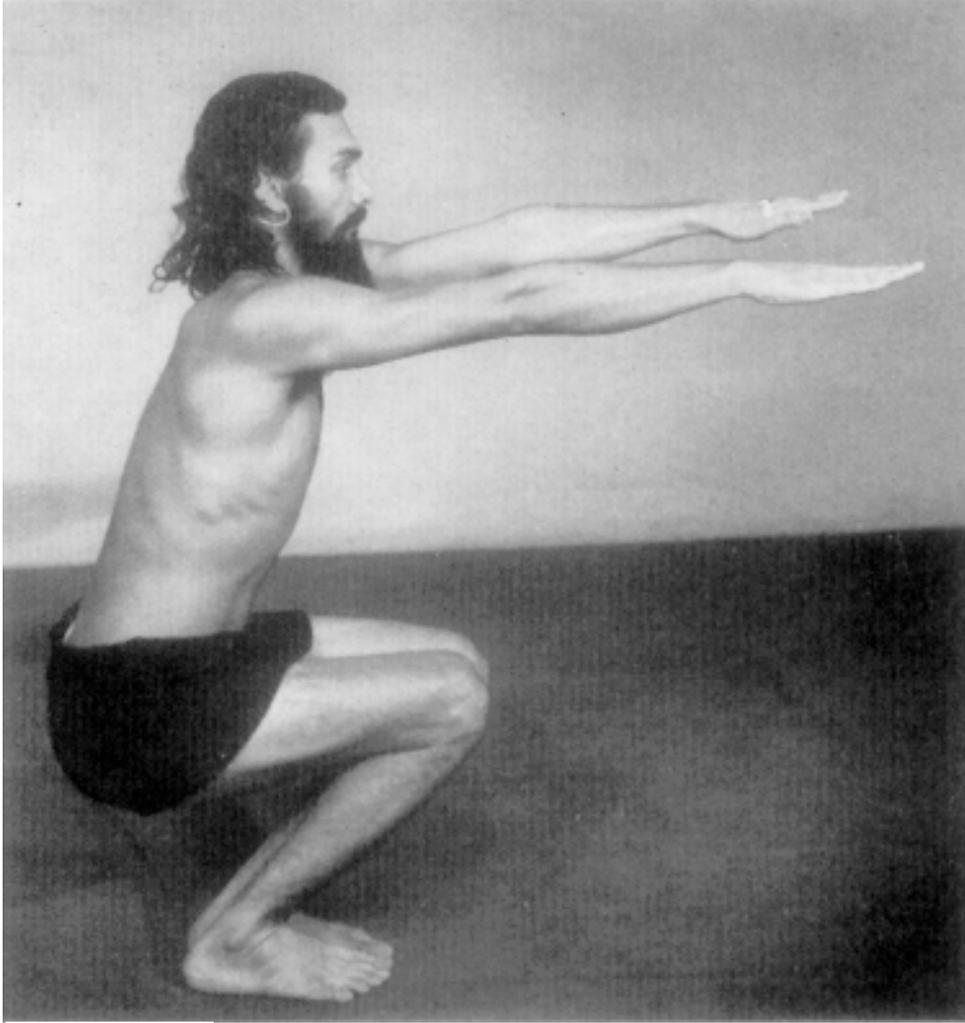
चित्र नं० ७० क्रिया नं० ४३

जंघा-शक्ति-विकासक (कुर्सी आसन) दूसरी क्रिया। इसमें श्वास भरते हुए इस प्रकार आधे बैठे हैं कि कुर्सी के समान प्रतीत होते हैं।

समानान्तर ग्रा जायँ, तो इसी स्थिति में यथासाध्य रुकने का प्रयत्न करें। ध्यान रहे कि एड़ी-पंजे पृथ्वी पर से किञ्चित् भी उठने न पायें। घुटने, जंघा ग्रादि ग्रापस में मिले रहें। तत्पश्चात् दोनों नासिकारन्ध्रों से वायु निकालते हुए धीरे-धीरे उठें। ग्रारम्भिक क्रम ५ मिनट। चित्र नं० ७० देखें।

स्थिति (ख)—पैर परस्पर मिले हुएँ हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर दोनों हाथों को स्कन्धों के सामने गिद्ध-पंख की भाँति फैलाकर पैरों के पंजों पर खड़े रहें।

क्रिया (ख)—नासिका द्वारा श्वास भरते हुए, धीरे-धीरे घुटनों को भी बगल में फैलाते हुए इतना नीचे बैठें कि नितम्ब एड़ी से कुछ ऊँचा रहे। जब तक कुम्भक रख सकें, इसी ग्रवस्था में रुके रहें। तत्पश्चात् नासिका द्वारा श्वास धीरे-धीरे निकालते हुए सीधे खड़े होकर हाथ नीचे लावें। ग्रारम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ७१ देखें।

लाभ—इन क्रियाग्रों के करने से जंघाग्रों में ग्रपूर्व शक्ति ग्राती है। जंघाएँ कदली स्तम्भ के समान सुन्दर, पुष्ट तथा सुडौल बनती हैं। बादी की निवृत्ति होती है। बहुत दूर चलने पर भी कोई थकावट नहीं ग्राती। रक्त का संचार सुचारु रूप से होने लगता है। स्थूल जंघाएँ सुन्दर-सुडौल बनती हैं तथा पतली जंघाएँ स्वाभाविक स्वरूप में ग्रा जाती हैं। इन क्रियाग्रों से बहुत थोड़े समय में ही ग्रपूर्व लाभ प्राप्त होता है।

४४—जानु-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर खड़े रहें।

क्रिया—पिण्डलियों से घुटने पर बल देते हुए झटके के साथ घुटने से ऊपर जंघे के भाग को सीधा रखते हुए ग्रागे-पीछे झटका दें। क्रमशः एक के बाद दूसरे पैर से करें। क्रिया करते समय एड़ी नितम्बपृष्ठ से लगनी चाहिए। ग्रारम्भिक क्रम १० बार। चित्र नं० ७२ देखें।

लाभ—घुटनों के जोड़ों की बादी की निवृत्ति होती है। रक्त का संचार सुचारु रूप से होने लगता है। यह क्रिया गठिया ग्रादि के रोगों को दूर करती है। यह फुटबाल खेलनेवालों के लिए परमोपयोगी है।

४५—पिण्डली-शक्ति-विकासक

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखते हुए मुट्ठी बाँधकर ग्रीवा को समावस्था में रखकर खड़े रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों द्वारा धीरे-धीरे श्वास भरने के साथ-साथ दोनों हाथों को वक्षःस्थल के सामने पृथ्वी के समानान्तर फैलाते हुए बैठें। बैठते समय पैरों की एड़ी पृथ्वी से सटी रहे और दोनों घुटने आपस में सटे रहें। तत्पश्चात् शीघ्र ही दोनों हाथों को आवृत्ताकार घुमाते हुए वक्षःस्थल के सम्मुख लावें। उस समय हाथ कोहनी से मोड़कर मुट्ठी छाती के सन्मुख तथा भुजबन्ध स्कन्ध के सम हों। फैलाने के पश्चात् हाथों से वक्षःस्थल को खींचते हुए पुनः हाथ नीचे ले जाकर क्रिया करें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ७३ देखें।

४६—पादमूल-शक्ति-विकासक

स्थिति—दोनों पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से से सीधा रखकर पंजों के बल खड़े रहें।

क्रिया (क)—शरीर का सारा भाग पंजों पर रखते हुए स्प्रिंग की भाँति शरीर को ऊपर-नीचे हिलावें। क्रिया करते समय एड़ी और पंजे आपस में मिले रहें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ७४ देखें।

क्रिया (ख)—पंजों के बल शरीरको सीधा रखते हुए जितना ऊँचा कूद सकें कूदें। नीचे आते समय भी पंजों के बल ही खड़े हों। पंजों के अग्रभाग तथा अँगुलियों के बल क्रिया करनी चाहिए। ध्यान रहे कि क्रिया करते समय एड़ी-पंजे मिले रहें और नीचे आते समय अपने स्थान पर ही गिरें। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ७५ देखें।

लाभ—इन क्रियाओं के करने से पिण्डलियाँ पुष्ट, दृढ़ तथा कदली स्तम्भ के ऊपरी विभाग के सदृश सुन्दर बनती हैं। ब्रह्मचर्य की पुष्टि होती है। बादी की निवृत्ति
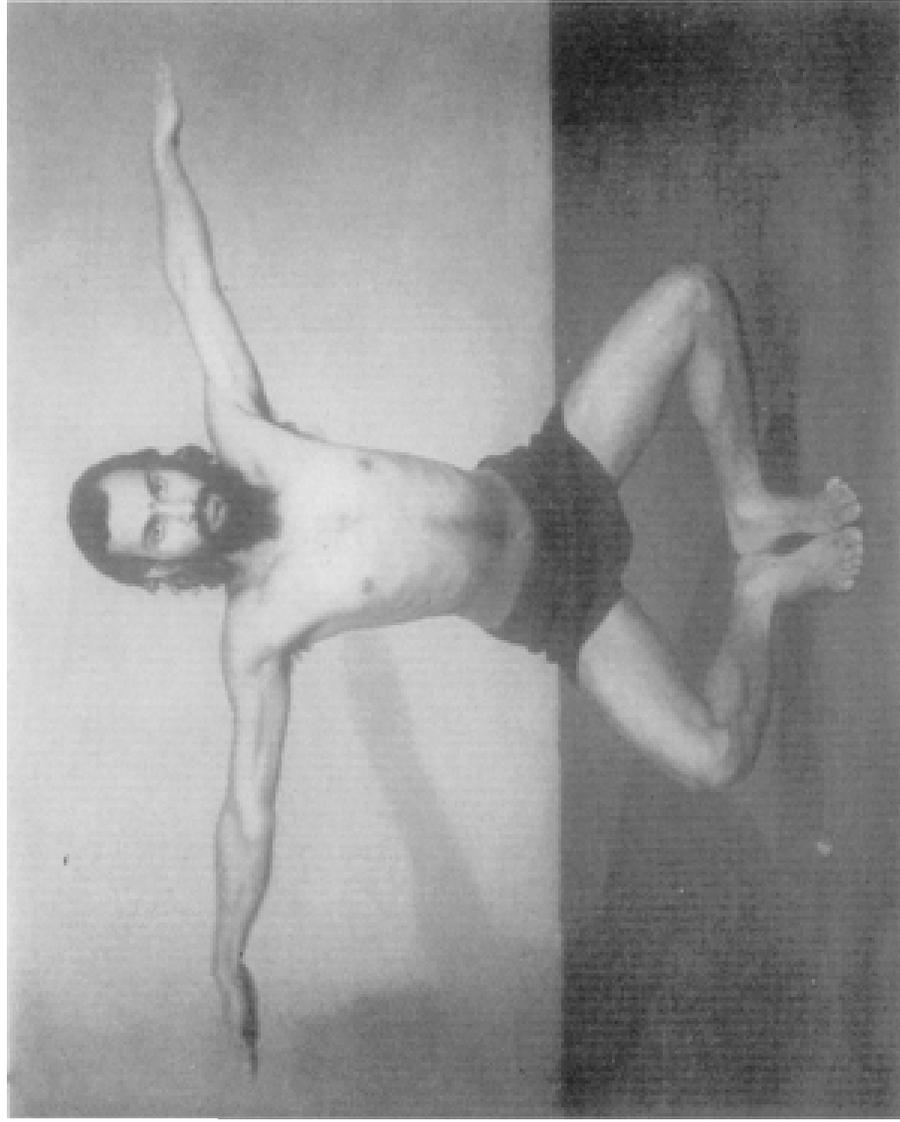
चित्र नं० ७१ क्रिया नं० ४३

जंघा-शक्ति-विकासक दूसरी क्रिया। इसमें श्वास भरते हुए दोनों घुटनों तथा हाथों को फैलाकर धीरे-धीरे इतना नीचे गये हैं कि नितम्ब एड़ी से कुछ ही ऊपर हैं।
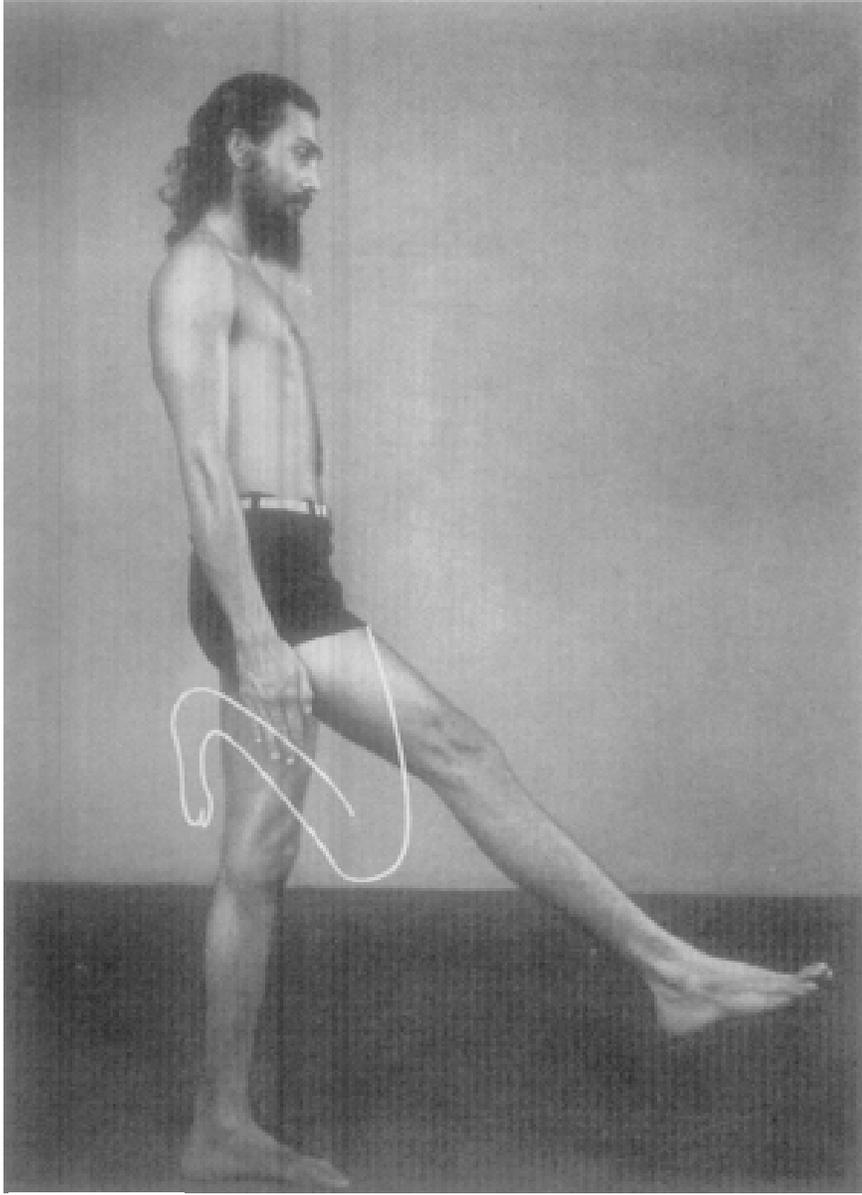
चित्र नं० ७२ क्रिया नं० ४४

जानु-शक्ति-विकासक नामक चौवालीसवीं क्रिया। इसमें एड़ी से नितम्बपृष्ठ पर जोर से मारकर पैर को आगे की ओर झटका दे रहे हैं।
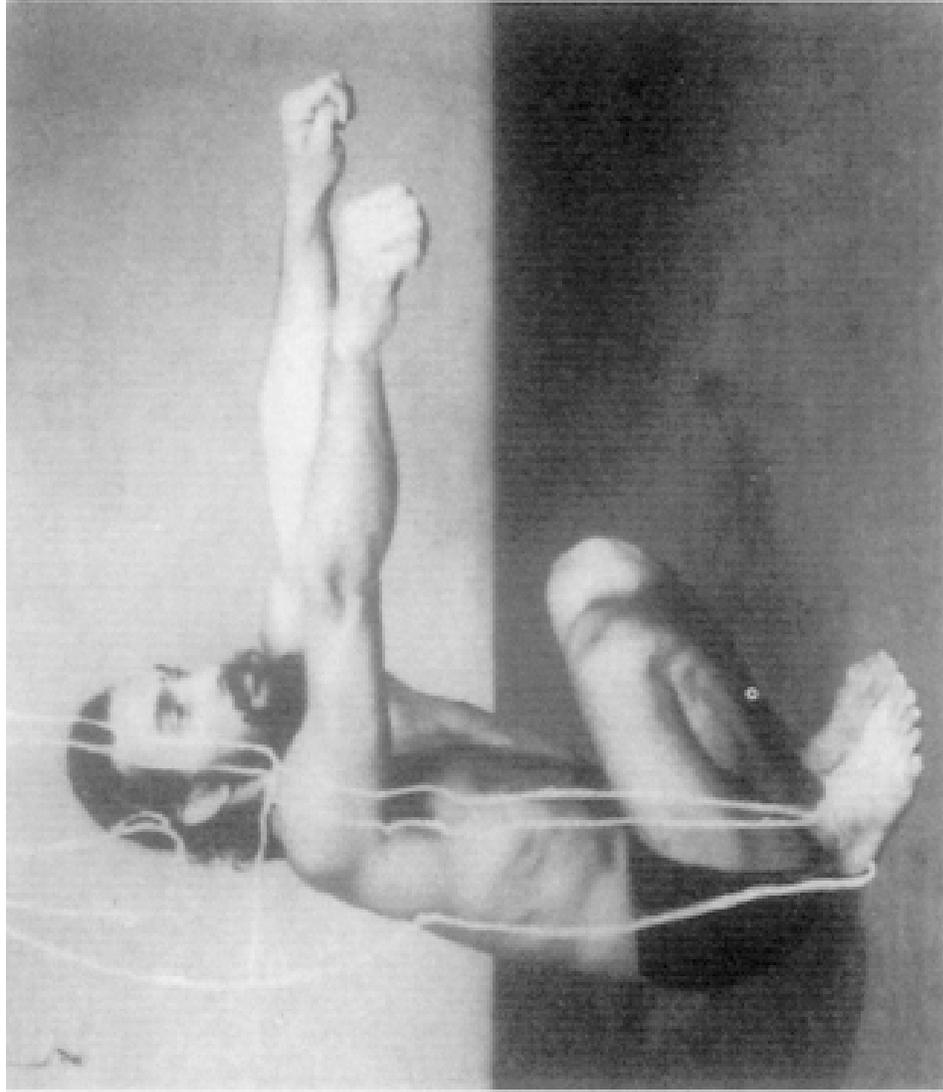
चित्र नं० ७२ क्रिया नं० ४५

पिण्डली-शक्ति-वर्धक पैंतालीसवीं क्रिया

इसमें दोनों हाथों को आवृत्ताकार घुमाते हुए नीचे बैठने की परिस्थिति में हैं
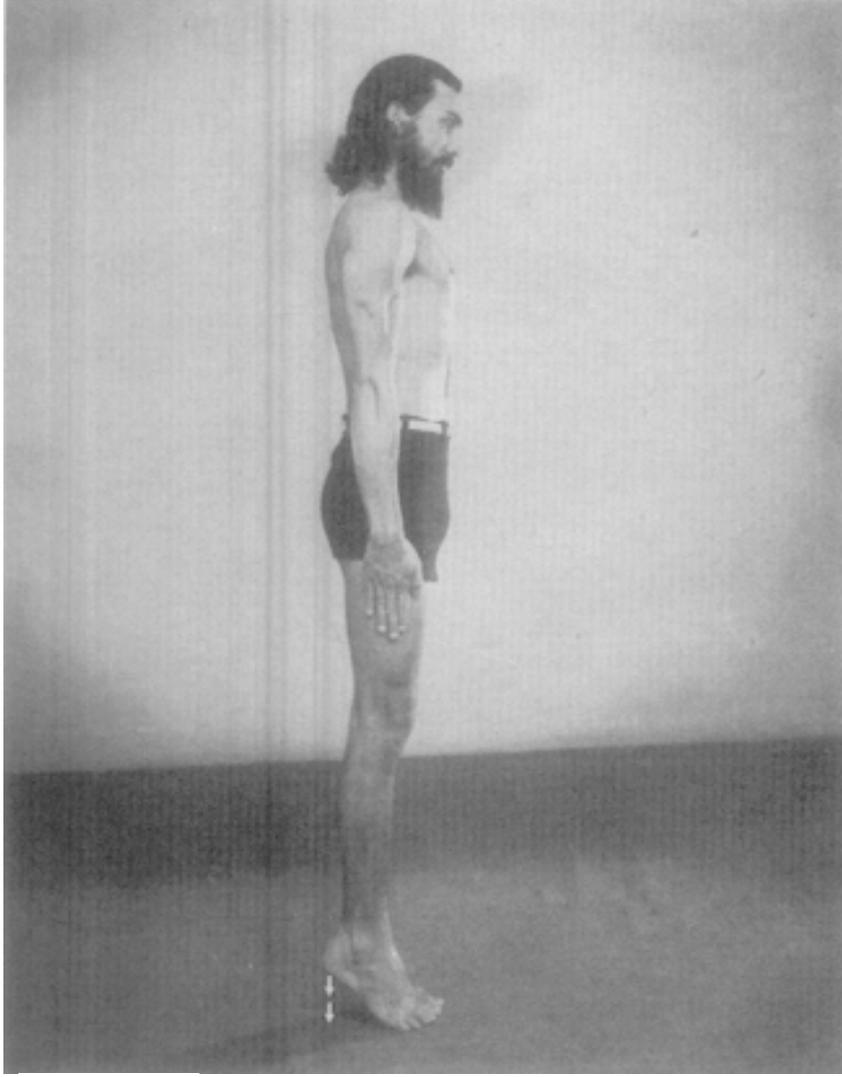
चित्र नं० ७४ क्रिया नं० ४६

पादमूल-शक्ति-विकासक पहली क्रिया। इसमें पंजों के बल खड़े होकर स्प्रिग की भाँति एड़ी को ऊपर-नीचे कर रहे हैं।
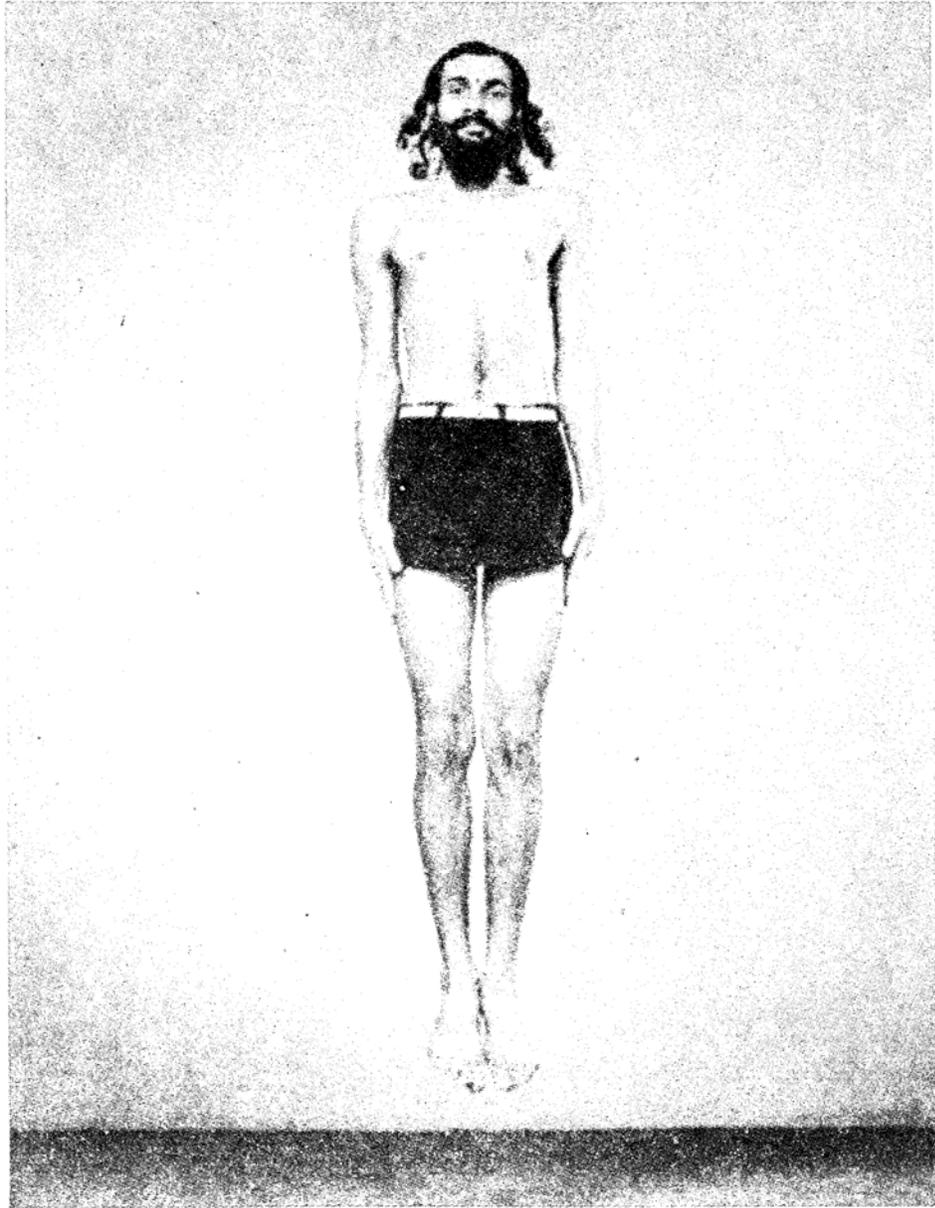
चित्र नं० ७५ क्रिया नं० ४६

पादमूल-शक्ति-विकासक दूसरी क्रिया। इसमें पंजों के बल जमीन से ऊपर उछले हुए हैं।
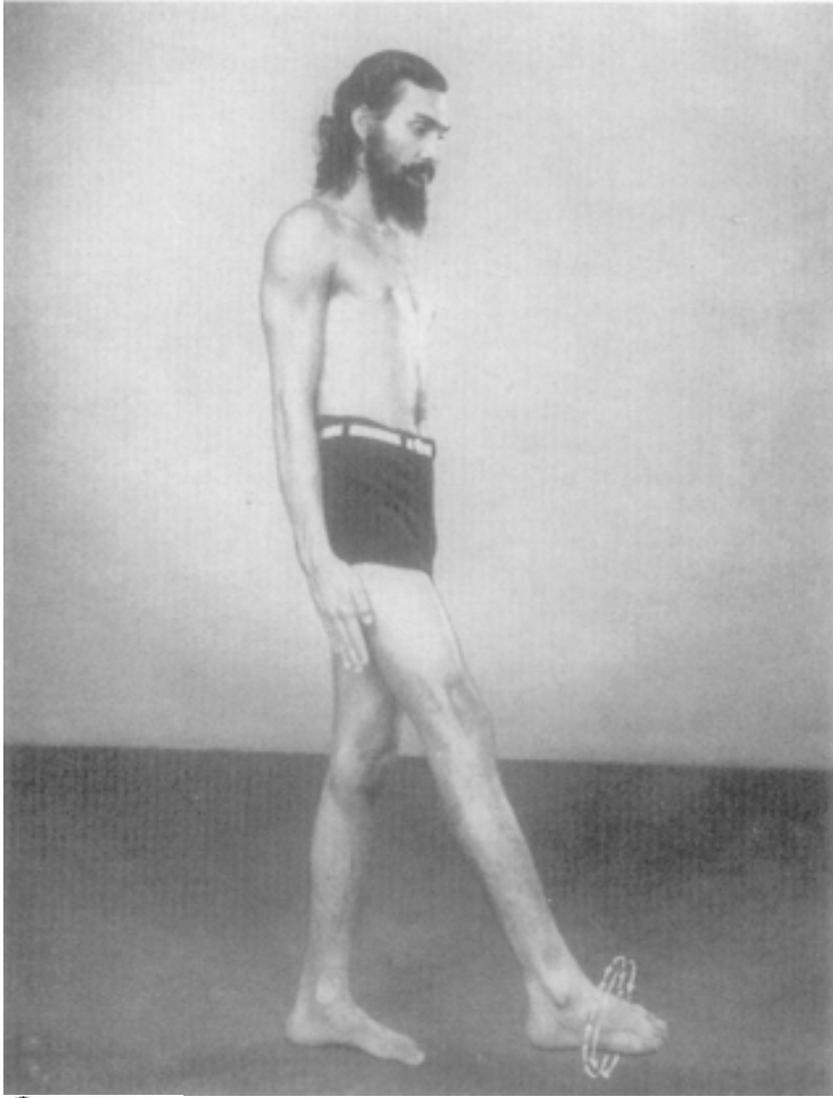
चित्र नं० ७६ क्रिया नं० ४७

गुल्फ, पादपृष्ठ, पादतल-शक्ति-विकासक क्रिया। इसमें एक पाँव से दूसरे पाँव को एक हाथ आगे तथा जमीन से एक बालिस्त ऊपर उठाकर गुल्फ के आगे से बाएँ-दाएँ आवृत्ताकार घुमा रहे हैं।
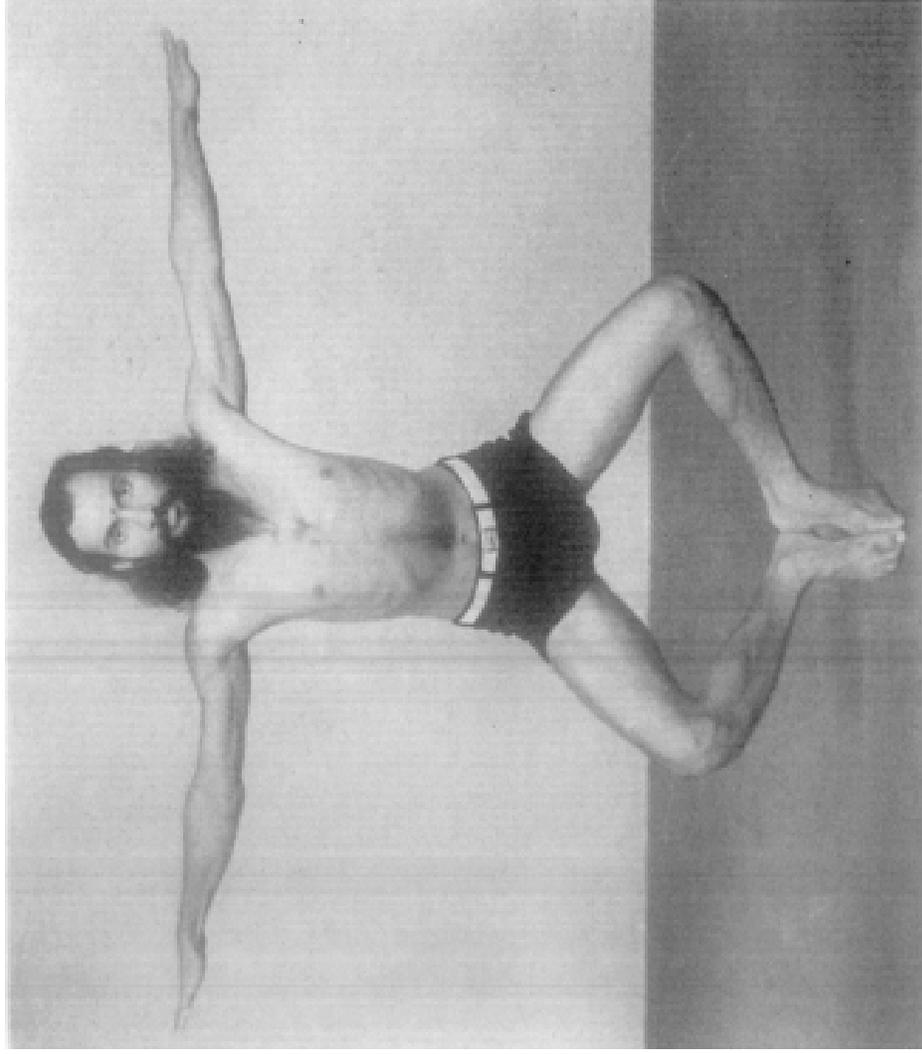
चित्र नं० ७७   क्रिया नं० ४८

पादांगुलि-शक्ति-विकासक अड़तालीसवीं क्रिया। इसमें पैरों की दसों अँगुलियों को आपस में मिलाकर केवल अँगुलियों पर भार देकर खड़े हुए हैं।
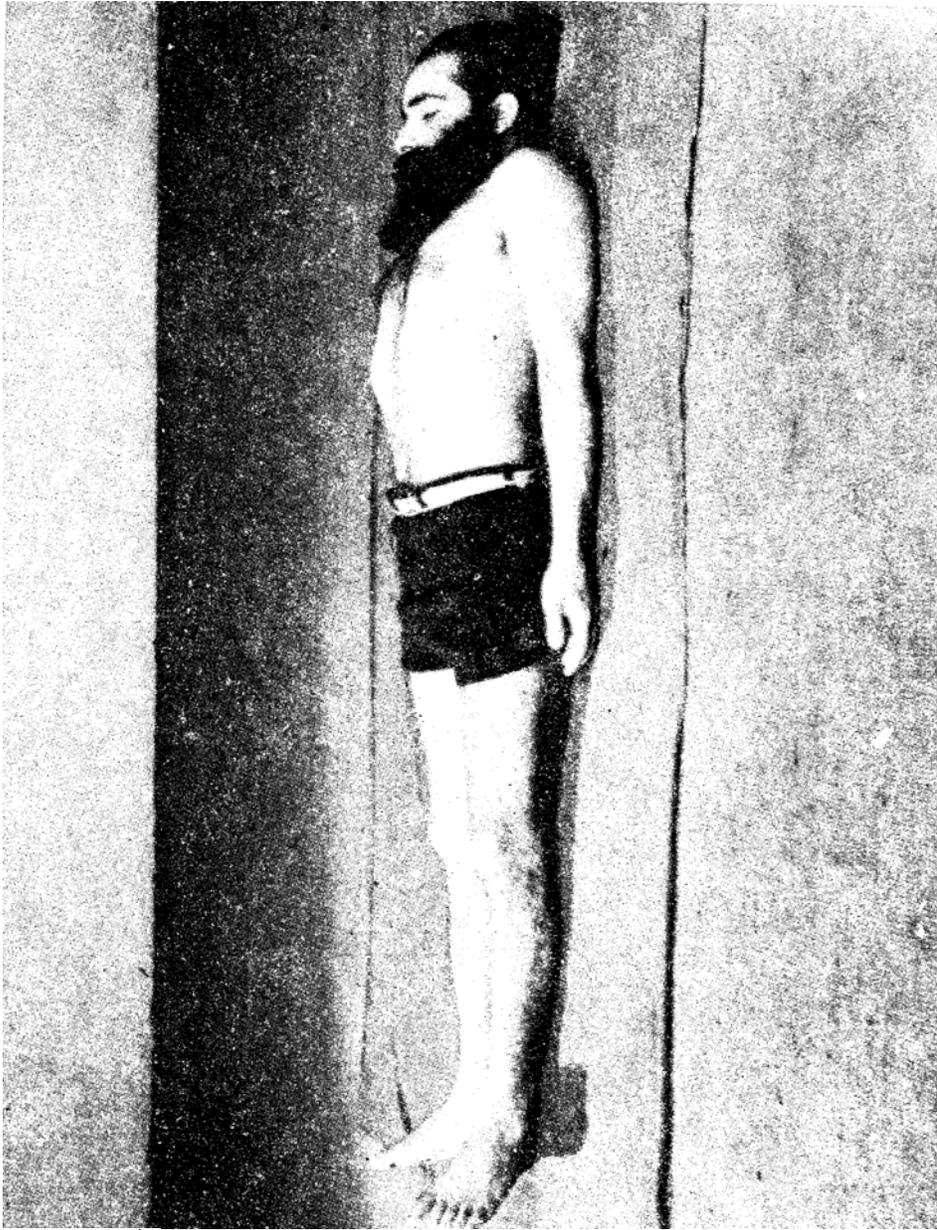
चित्र नं० ७८ शवासन

शवासन---इसमें पैर की दोनों एड़ी मिली हुई हैं, करतल ऊपर की ओर किये हुए हैं

यौगिक स्थूल व्यायाम

१–रेखागति

स्थिति—बाएँ पैर को जमीन पर जमाकर दाएँ पाँव को बाएँ पाँव के अँगूठे के आगे इस प्रकार स्थित करें कि दाएँ पाँव की एड़ी और बाएँ पाँव का अँगूठा आपस में मिले रहें। चित्र नं० ७६ देखें।

क्रिया—बारी-बारी से पाँव को एक दूसरे के आगे रखते हुए पचास कदम इस प्रकार जायँ कि तनिक भी सीध से बाएँ-दाएँ न हों। तत्पश्चात् उसी प्रकार उलटा चलते हुए अपने स्थान पर ही आ जायँ। ध्यान रहे कि चलते समय लाइन खराब न होने पावे और जाते-आते समय दृष्टि सामने हो, किंचित भी पाँव की ओर नीचे न देखें।

लाभ—इससे मन की एकाग्रता, चित्त की प्रसन्नता तथा शरीर को सम्भालने की शक्ति प्राप्त होती है। यह क्रिया मिलिटरी, पुलिस तथा सरकसवालों के लिए परम उपयोगी है। इसके अभ्यास से कुछ समय पश्चात् पतली रस्सी पर भी चला जा सकता है।

२–हृद्गति (इञ्जनदौड़)

इस क्रिया की रूपरेखा रेल के इञ्जन के समान है। इसलिए आजकी जनता को समझाने के हेतु इसका नाम महर्षिजी ने इञ्जनदौड़ रखा है। जिन लोगों ने इञ्जन देखा है, वे इसे देखते ही समझ सकते हैं कि इसमें इञ्जन के समान ही दोनों नासिकारन्ध्रों से छक्-छक् की आवाज होती है। दोनों हाथों को इञ्जन के बैलेट के समान चलाना पड़ता है तथा पहियों के समान ही आगे-पीछे जाना पड़ता है।

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर दोनों हाथों को कोहनी के स्थान से मोड़कर इस प्रकार खड़े हों, जैसे कि

"सूक्ष्म-व्यायाम" की १३ वीं क्रिया (भुजबन्ध-शक्ति-विकासक) में मुठ्टी के अन्दर अँगूठे रखकर खड़े होते हैं।

क्रिया—दोनों हाथों को बारी-बारी से इस प्रकार इञ्जन के बैलेट के समान आगे पीछे चलायें, जैसे कि चित्र नं० ८० में है। तत्पश्चात् पाँवों को भी इसी प्रकार बारी-बारी से नितम्बपृष्ठ पर मारें, जैसे कि सूक्ष्म व्यायाम की कुण्डलिनीवाली क्रिया नं० ४१ में है। ध्यान रहे कि जो हाथ मुड़ेगा, वही पैर भी मुड़ेगा और जो हाथ आगे फेंकना है, वही पाँव जमीन पर सीधा स्थिर रहेगा। इसके पश्चात् अपने स्थान पर इस प्रकार कूदें कि जमीन से उछलते हुए मालूम पड़ें। साथ ही साथ नासिकारन्ध्रों से इस प्रकार श्वास लें और छोड़ें, जैसे कि इञ्जन में से छक्-छक् की आवाज निकलती है। इतनी क्रिया कर लेने के पश्चात् आप में वह योग्यता आ जायेगी कि आप सुगमता से इञ्जनदौड़ की पूरी क्रिया एक साथ कर सकते हैं।

अब इञ्जनदौड़ की वास्तविक क्रिया बतलाई जा रही है। इसमें हाथ भी आगे-पीछे जायेंगे और पाँव भी क्रम से आगे-पीछे जायेंगे। श्वास की गति बारी-बारी से होगी। इसी प्रकार क्रिया करते हुए छोटे-छोटे पचास कदम आगे जायँ, फिर उसी प्रकार पीछे कदम रखते हुए अपनी जगह पर आ जायँ। ध्यान रहे कि कोहनी पीछे आते समय स्थिति से किञ्चित भी पीछे न जाये और एड़ी भी नितम्बपृष्ठ पर लगती रहे। छोटे-छोटे कदम बढ़ायँ। यह क्रिया केवल किताब की सहायता से करना कठिन है। इसे योग्य गुरु से सीख कर ही आप भलीभाँति कर सकते हैं।

लाभ—स्थूल व्यायाम की यह एक अद्भुत क्रिया है, जिसके करने से एड़ी से चोटी तक के सब भागों की पुष्टि होती है। शरीर सुन्दर, स्वस्थ, सुडौल तथा मनोहर बन जाता है। फेफड़ों में अपूर्व बल आता है। कितना ही कार्य करने पर भी थकावट नाम मात्र को नहीं आती। आश्चर्यजनक शक्ति का सारे शरीर में सञ्चार होता है। वक्षःस्थल चौड़ा हो जाता है। जङ्घाएँ और पिण्डलियाँ मांसल तथा हृष्ट-पुष्ट हो जाती हैं। स्थूल शरीरवालों के लिए यह क्रिया दिव्य देन से किसी भी प्रकार कम नहीं है। बहुत थोड़े समय में ही शरीर की व्यर्थ स्थूलता घटकर शरीर स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है। चेहरे पर अपूर्व कान्ति आती है। पतला शरीर स्वाभाविक रूप से भर जाता है। इस क्रिया को केवल पाँच मिनट करने से ही २५ मील दौड़ने की शक्ति आती है। यह क्रिया मिलिटरी, पुलिस तथा दौड़-प्रतियोगिता में भाग

चित्र नं० ७६ क्रिया नं० १

रेखागति—इसमें सामने देखते हुए अँगूठे से एड़ी मिलाते हुए तीव्रता से आगे-पीछे चल रहे हैं।

चित्र नं० ८० क्रिया नं० २

हृद्गति (इञ्जनदौड़)—इसमें नितम्बपृष्ठ पर क्रमशः एड़ी मार रहे हैं और साथ ही उसी हाथ को वक्षःस्थल के पास मोड़ रहे हैं।

लेनेवालों के लिए परम उपयोगी है। इसके निरन्तर अभ्यास से आदर्श स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। शरीर में असीम स्फूर्ति आती है। जो लोग दौड़ने का अभ्यास करते हैं, वे व्यर्थ समय नष्ट न करके इस क्रिया को केवल पाँच मिनट रोज करें, तो उन्हें २५ मील दौड़ने की शक्ति प्राप्त होगी।

३—उत्कूर्दन (जम्पिंग)

स्थिति—पैर परस्पर मिले हुए हों, पैरों से सिर तक का विभाग सरलता से सीधा रखकर इस प्रकार मुठ्टी बाँधकर खड़े हों कि अँगूठे मुठ्टी के अन्दर रहें।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से श्वास भरते हुए दोनों भुजाओं को इस प्रकार आवृत्ताकार घुमायें कि पूरा चक्कर हो जाय। चक्कर समाप्त होते ही सूक्ष्म व्यायाम की १३ वीं क्रिया की स्थिति के समान हाथ को रखते हुए ऊपर उछल जायं। उछलने पर दोनों एड़ियों को नितम्बपृष्ठ पर इस प्रकार मारें कि फट की आवाज हो। तत्पश्चात् नासिका से वायु छोड़ें। साथ ही हाथों को सीधा रखते हुए बाहर की तरफ फेंकें और जमीन पर पाँव रखें। ये तीनों क्रियाएँ एक साथ ही होनी चाहिए। आरम्भिक क्रम ५ बार। चित्र नं० ८१ देखें।

लाभ—इस क्रिया के करने से ठिगनापन दूर होकर लम्बाई बढ़ती है। वक्ष:स्थल चौड़ा होता है। पैरों में शक्ति आती है। जङ्घाएँ पुष्ट, सुन्दर तथा सुडौल बनती हैं। कुण्डलिनी शक्ति की जागृति होती है।

४—ऊर्ध्वगति

स्थिति—पैरों के बीच एक फुट का अन्तर रखते हुए दोनों हाथों को स्कन्ध के ऊपर इस प्रकार फैलावें कि एक हाथ की कोहनी के अन्दर ९०° का कोण बन जाय और दूसरा हाथ सीधा रहे। मुट्ठियाँ खुली हुई हों, अँगुलियाँ सटी हुई तथा करतल आगे की ओर हों।

क्रिया—प्रथम बाएँ पाँव को जमीन से एक फुट ऊपर उठायें और दाएँ हाथ को ऊपर की ओर पूर्ण सीधा कर लें। पुनः बाएँ पैर को पूर्व स्थिति में लाकर दाएँ पैर को जमीन से एक फुट ऊपर उठावें और बाएँ हाथ को ऊपर की ओर पूर्ण सीधा कर

लें। ध्यान रहे कि श्वास हाथ-पैर के साथ ही बारी-बारी लिया तथा छोड़ा जायगा। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० ८२ देखें।

लाभ—इससे हाथ-पाँव सुडौल तथा पुष्ट होते हैं। हाथ-पाँव सम्बन्धी सारे रोग दूर होते हैं। हाथों के ठंढे-गर्म रहने की बीमारी दूर होती है। मोटापा इस क्रिया से अति शीघ्र कम हो जाता है। आन्तरिक बल की वृद्धि होती है।

५—सर्वाङ्गपुष्टि

स्थिति—पैरों को यथासाध्य फैलाकर, अँगूठा अन्दर रखते हुए मुट्ठी बाँधकर भुजबल्लियों को एक पर एक रखें। तत्पश्चात् कमर को झुकाते हुए दाएँ पाँव की पिण्डली के पास दोनों हाथों को इस प्रकार स्थित करें कि एक कलाई दूसरी कलाई पर रहे, जैसा कि चित्र नं० ८३ में है।

क्रिया—दोनों नासिकारन्ध्रों से श्वास भरते हुए, हाथों को दाईं तरफ से पीछे की ओर चित्र नं० ८४ की भाँति चक्राकार घुमाते हुए इस प्रकार बाएँ पाँव की पिण्डली के पास स्थित करें, जैसे दाहिनी के चित्र नं० ८३ में है। इस क्रिया को बारी-बारी से करें। ध्यान रहे कि हाथ को उसी परिस्थिति में रखते हुए दाएँ पाँव पर हाथ रखकर श्वास भरते हुए बाईं तरफ जायँ और बाएँ से इसी प्रकार दाईं ओर आवें। यह क्रिया बहुत धीरे-धीरे करनी चाहिए।

लाभ—इस क्रिया के करने से शरीर लचीला तथा पुष्ट बनता है। शरीर के अंग-प्रत्यंग भलीभाँति पुष्ट होते हैं। इससे लम्बाई भी बढ़ती है। चेहरे की कान्ति बढ़ती है। कमर आदि के पुराने से पुराने दर्द दूर होते हैं। टी० बी० के रोगियों के लिए यह क्रिया परम उपयोगी है।

चित्र नं० ८१ क्रिया नं० ३

उत्कूर्दन (जम्पिङ्ग)—इसमें श्वास भरने के साथ भुजाओं को चक्र देकर वक्षःस्थल के पास मोड़ते हुए जमीन से यथासाध्य ऊपर उछले हुए हैं।
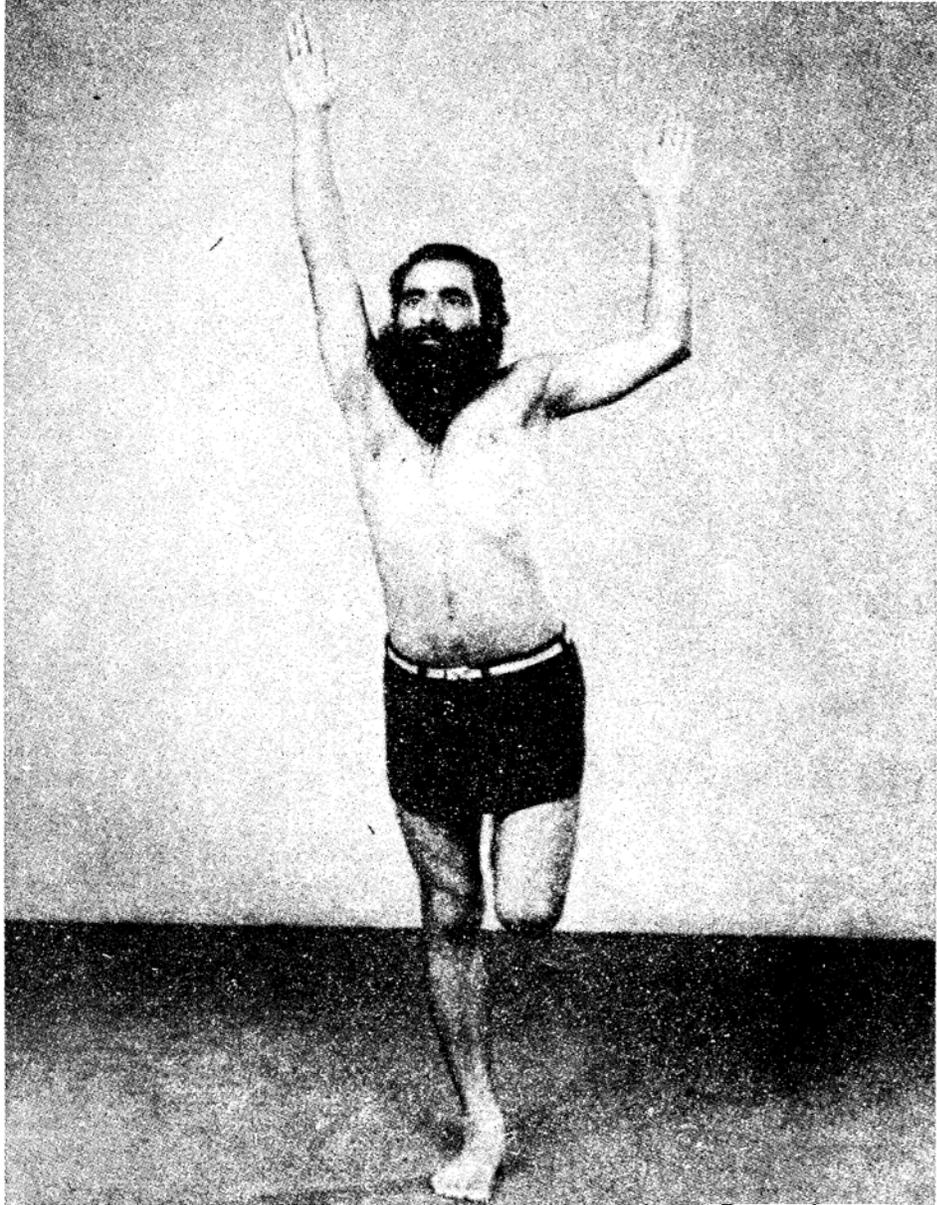
चित्र नं० ८२ क्रिया नं० ४

ऊर्ध्वगति--इसमें श्वास-प्रश्वास के साथ क्रमशः हाथ-पैर उठा रहे हैं।

नोट--इसमें बायाँ पाँव जमीन से एक फुट ऊपर उठा रहेगा।

चित्र नं० ८३ क्रिया नं० ४

सर्वाङ्गपुष्टि—इसमें दोनों हाथों को मिलाकर श्वास भरते हुए पीछे से चक्राकार जाने से पहले की स्थिति बता रहे हैं
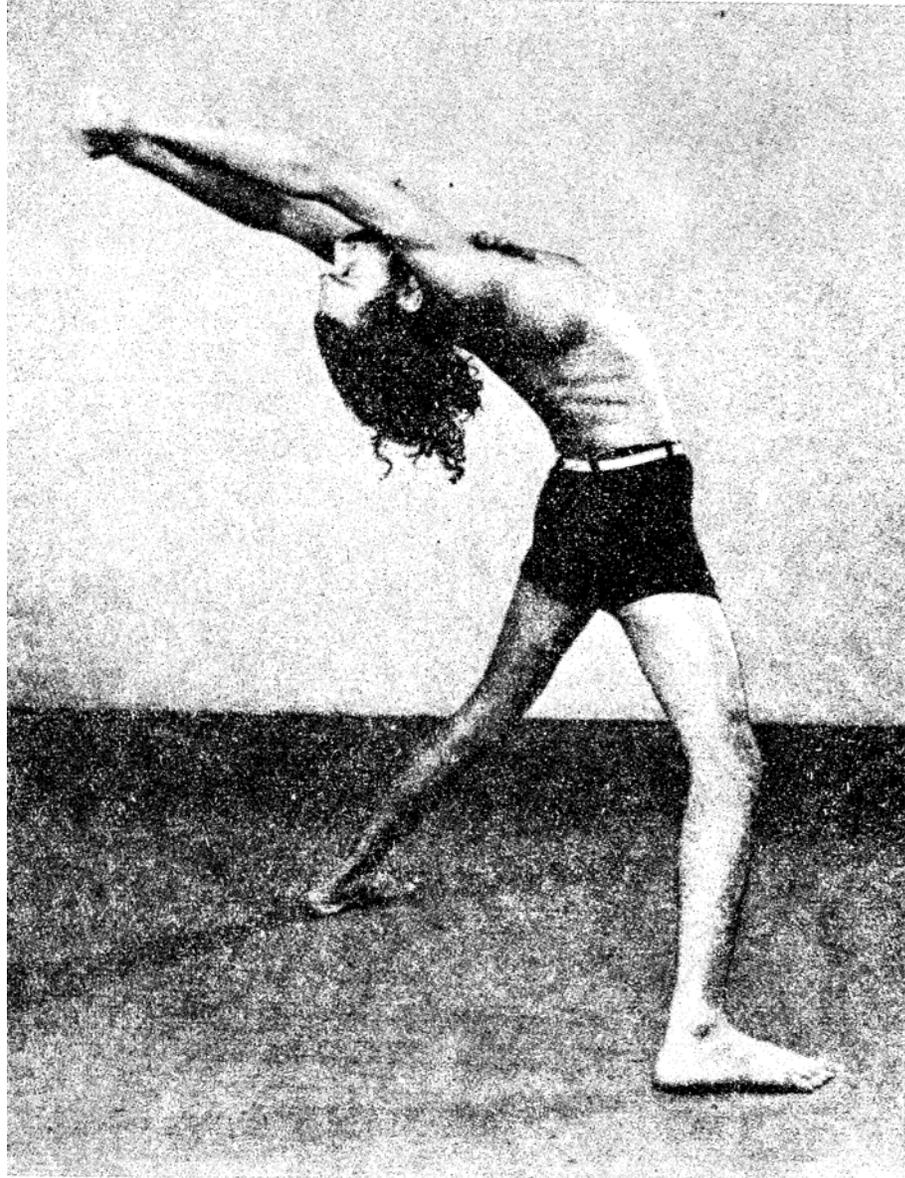
चित्र नं० ८४ क्रिया नं० ६

सर्वाङ्गपुष्टि—इसमें श्वास भरने के साथ पीछे से चक्राकार घुमाते हुए स्थिति से दूसरे पैर की ओर जा रहे हैं।

शीर्षासन

अधिकांश लोग शीर्षासन के गुणों को पुस्तकों में पढ़कर गलत तरीके से अभ्यास करते हैं। इससे लाभ के स्थान पर कहीं अधिक हानि होती है। केवल एक शीर्षासन के गलत करने से शरीर में विविध प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ लोग स्वयं गलत करते हैं तथा दूसरे लोगों में भी उसी गलत विधि का प्रचार करते हैं। जिसके फलस्वरूप बाल पकना, बाल झड़ना, दृष्टिदोष, मस्तिष्क की कमजोरी, नाभि का खराब होना, स्वप्नदोष, पागलपन आदि रोगों की उत्पत्ति देखी गई हैं। यह मेरा स्वयं का अनुभव है कि गलत शीर्षासन करने के पश्चात् हानि उठाकर आनेवाले लोगों को सही ढंग से शीर्षासन का अभ्यास कराने से उनके सारे रोग दूर हो गये और वे स्वयं शीर्षासन के प्रशंसक बन गये।

शीर्षासन करने की विधि

एक छोटे-से कपड़े का इस प्रकार गोला बनाये, जैसे कि ग्रामीण माताएँ माथे पर घड़ा आदि रखने के हेतु गेंडुरी बनाती हैं। ऐसी गेंडुरी बनाकर सिरका वह भाग लगाइये, जैसा कि चित्र नं० ८५ में है। ललाट के ऊपर जहाँ से बाल शुरू होते हैं, उससे दो अंगुल नीचे और दो अंगुल ऊपर (अर्थात् दो अंगुल माथे पर और दो अंगुल बालों पर) यह चार अंगुल का हिस्सा शीर्षासन के आधार के लिए सर्वथा ठीक है। इस हिस्से को कपड़े की गेंडुरी पर रख कर शीर्षासन करें। ऐसा करने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती और शीर्षासन के जितने गुण हैं, सब प्राप्त होते हैं। चार अंगुल का वह हिस्सा जो चित्र नं० ८६ में है, जहाँ बच्चों के सिर में पोला (मुलायम) हुआ करता है, जिसका किञ्चित दबने से फूट जाने का भय रहता है तथा जिसे योगी लोग ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। यहाँ प्राण स्थिर करने पर योगी ब्रह्मवेत्ता, तत्ववेत्तो, तथा समाधिनिष्ठ कहे जाते हैं। यौगिक सूक्ष्म व्यायाम में स्मरण-शक्ति-विकासक उसी स्थान को कहा गया है। इस स्थान को शीर्षासन का आधार बनाने से विभिन्न प्रकार के रोग होते हैं जिसके इलाज के लिए डाक्टर तथा वैद्य भी असमर्थ हैं। तीसरा भाग सिर का वह है जो शिखास्थान (चोटी) है, जैसा कि चित्र नं० ८७ में है। जिस जगह भारतीय आर्य लोग चोटी

रखते हैं, शीर्षासन करने में उस स्थान को आधार बनाने से न तो कोई लाभ है, न कोई हानि ही।

शीर्षासन के बहुत प्रकार हैं, जिनमें से कुछ इस पुस्तक में दिये जा रहे हैं। साधक इन्हें देखकर कर सकते हैं। इनके लिए चित्र नं० ८८ से ९४ तक देखें। ठीक विधियों से शीर्षासन करने के पश्चात् उठकर खड़े हो जायँ और आधा मिनट सारे शरीर को ऊपर की ओर हाथों से सहलायें अर्थात् हल्के हाथ से मालिश की भाँति करें। तत्पश्चात् जितनी देर शीर्षासन किया हो उसके आधे समय तक शवासन अवश्य करें। चित्र नं० ९५ देखें।

विशेष—गृहस्थियों को जिनका आहार सात्विक तथा सन्तुलित न हो शीर्षासन १० मिनट से अधिक नहीं करना चाहिए। इससे अधिक समय तक करनेवाले को ब्रह्मचर्य से अवश्य रहनाहोगा, घी दूध का सेवन अवश्य करना होगा, तभी अधिक समय तक शीर्षासन सध सकेगा, अन्यथा मनमानी करने पर हानि उठानी पड़ेगी। एक बात और ध्यान में रखें कि शक्ति न होने पर दीवाल आदि का सहारा लेकर लोग शीर्षासन करने लगते हैं अपनी शक्ति से अधिक कर जाते हैं। फलस्वरूप लाभ के स्थान पर हानि होती है। शीर्षासन उतना ही करना चाहिए, जितना आप सुखपूर्वक कर सकें। इसके सिखाने की विधियाँ भी अलग हैं, जिनका योग्य गुरु से शिक्षण लेने पर दो-चार दिन के अभ्यास से ही ठीक शीर्षासन कर सकते हैं।

लाभ—वन में जिस प्रकार सिंह को सारे जन्तुओं का राजा कहते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण यौगिक आसनों का राजा शीर्षासन है। ऐसा कोई रोग नहीं है, जो शीर्षासन के निरन्तर अभ्यास से दूर न हो जाय। चौरासी लाख आसनों में जितने गुण हैं, वे अकेले शीर्षासन में हैं। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। फिर भी कुछ मुख्य रोगों के विषय में यहाँ लिखा जाता है, जिसे पूर्ण रूपेण अनुभव किया गया है, तथा इससे लोगों के असाध्य रोग दूर हुए हैं। सारे नेत्र-दोष, बाल पकना, बाल झड़ना, रक्तविकार, कुष्ठ आदि रोग, पचीस प्रकार के प्रमेह, स्त्रियों की मासिक सम्बन्धी बीमारियाँ, स्वप्नदोष, बवासीर, भगन्दर, नजला, जुकाम इत्यादि रोगों के लिए एक शीर्षासन का अभ्यास पर्याप्त है। इस आसन का विशिष्ट गुण यह है कि इससे मस्तिष्क सम्बन्धी सारे रोग दूर होते हैं। यहाँ तक कि पागलपन आदि दोष इसके निरन्तर अभ्यास से अवश्य दूर हो जाते हैं। परन्तु इसके विधान के अनुसार ही इसे करें। यद्यपि इस
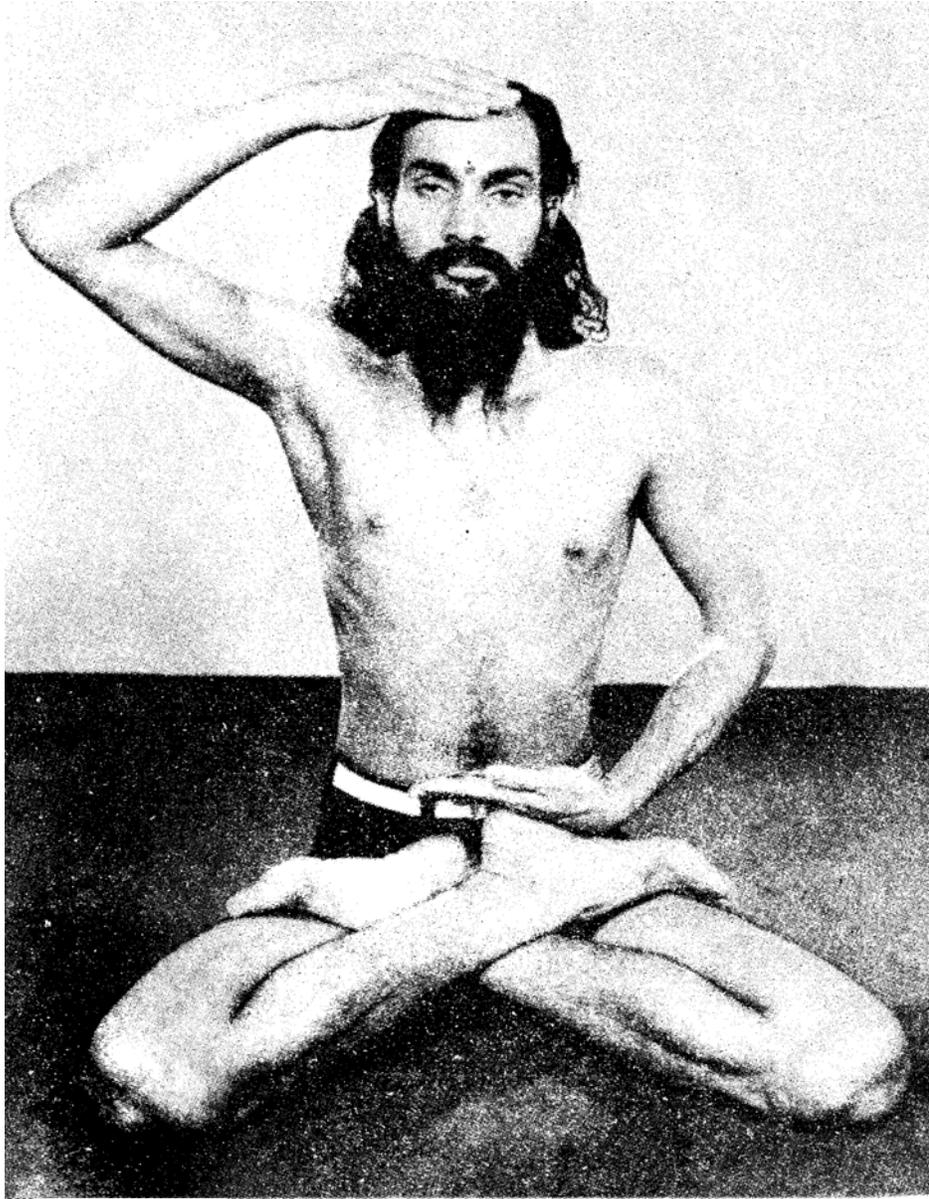
चित्र नं० ८५ शीर्षासन

शीर्षासन--इसमें चार अंगुलियों का भाग जिस स्थान पर बतला रहे हैं उसी हिस्से को गेरुली पर लगाकर (अथवा भार देकर) शीर्षासन करना है।
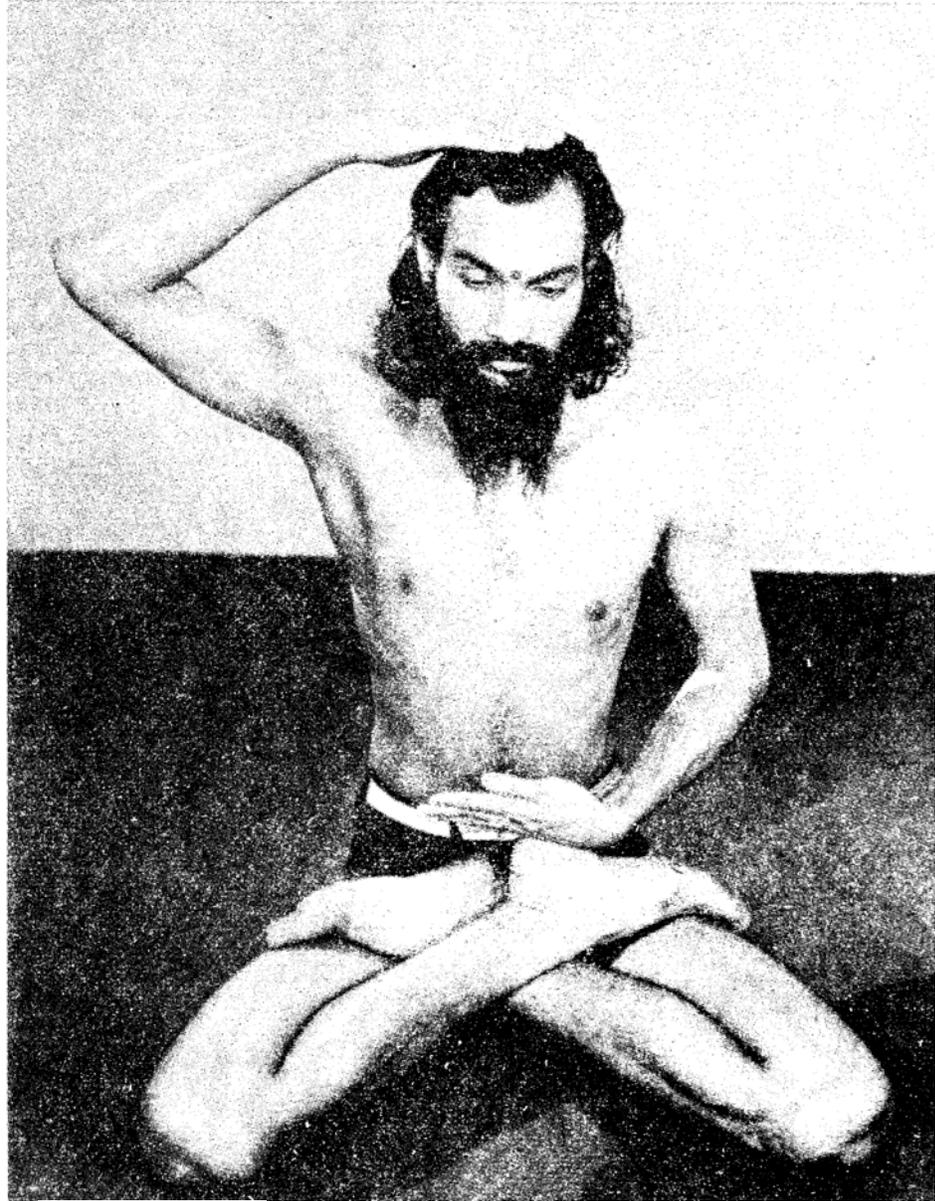
चित्र नं० ८६ शीर्षासन

शीर्षाशन--इसमें चार अंगुल का वह भाग जो चित्र में बतला रहे हैं शीर्षासन का आधार बनाने पर सर्वथा हानि होती है। अतएव इस पर जोर देकर कभी शीर्षासन न करें।
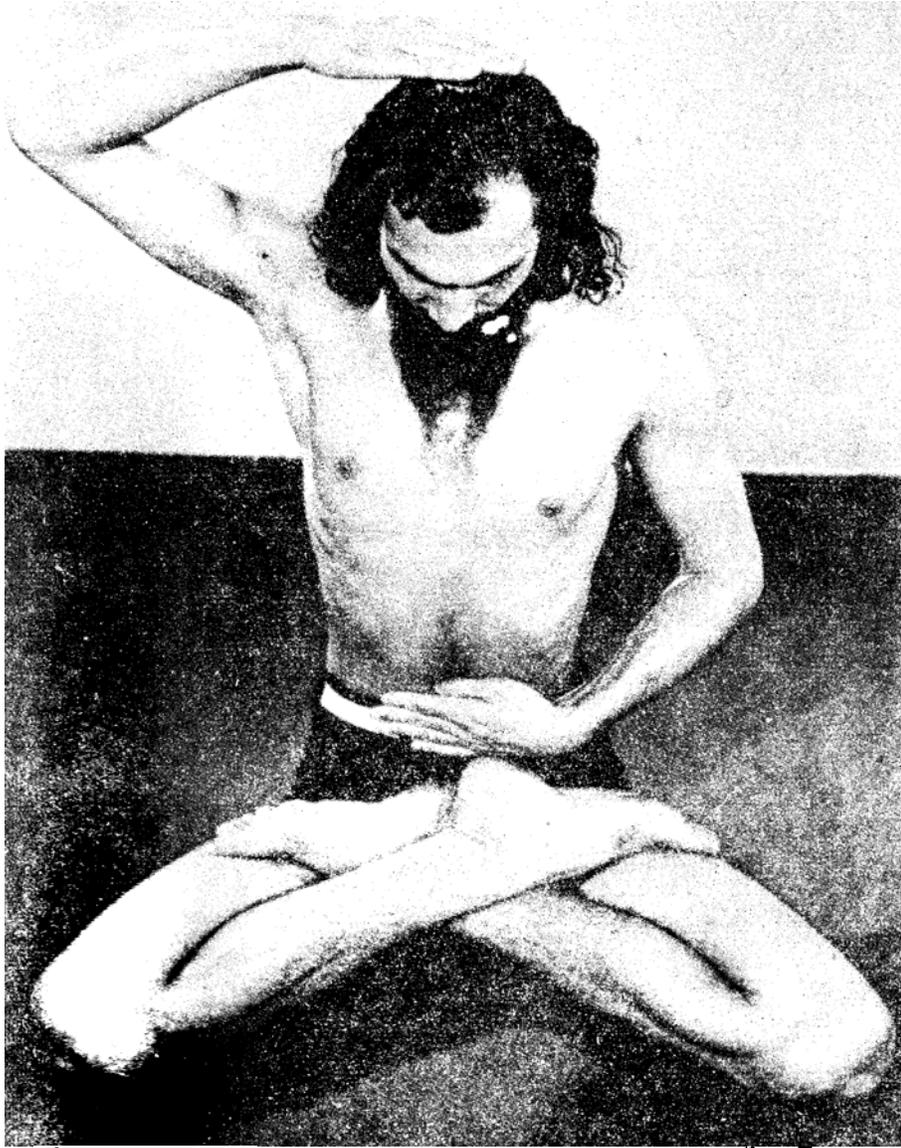
चित्र नं० ८३ शीर्षासन

शीर्षासन---चित्र में बतलाये गये चार अँगुल भाग पर भार देकर शीर्षासन करने से न लाभ होता है, न हानि।
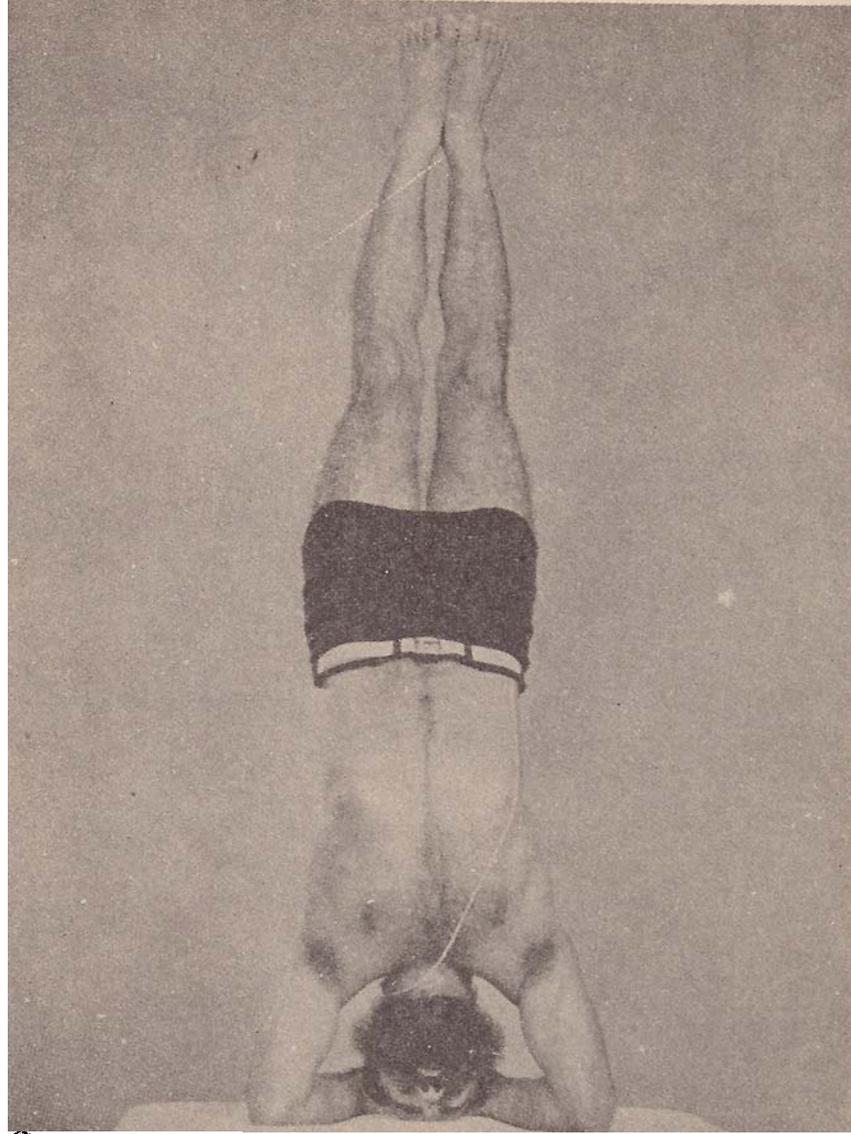
चित्र नं० ८८ शीर्षासन

शीर्षासन—इसमें सिर का वह भाग लगा हुआ है, जो शीर्षासन के लिये सर्वथा उचित है और सिर से पैर तक का भाग बिलकुल सीधा है।
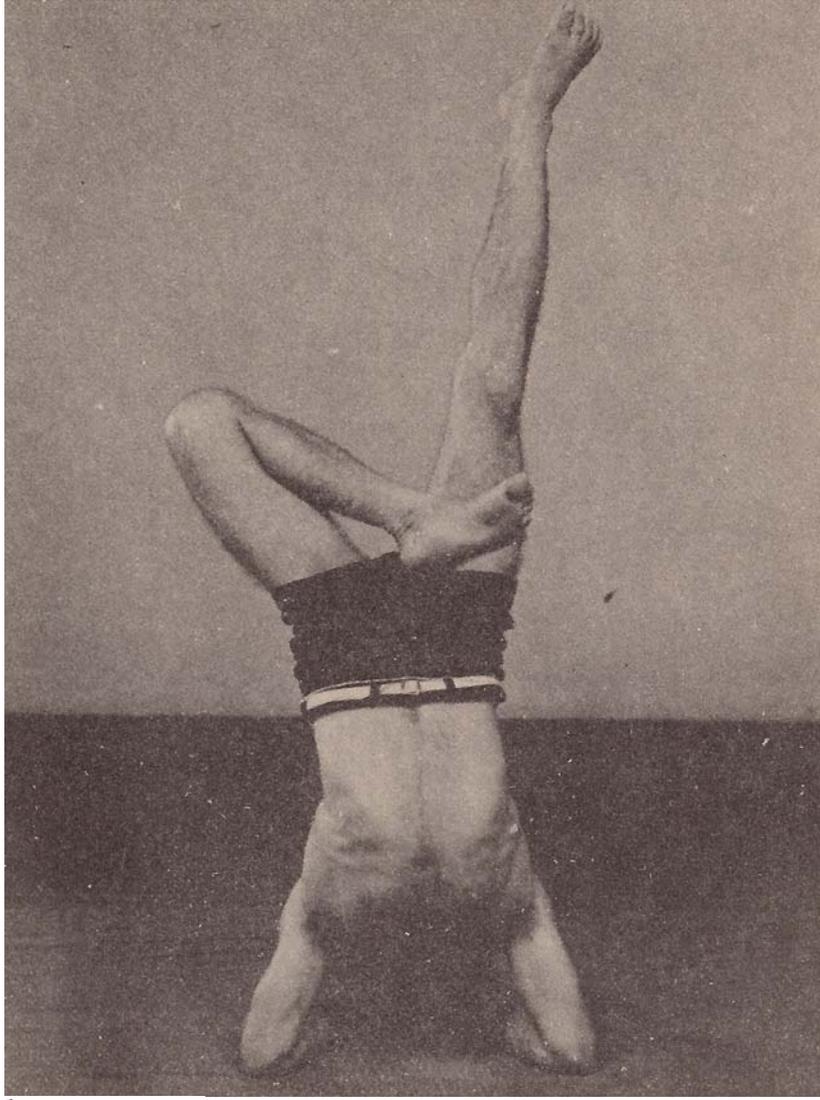
चित्र नं० ८९ शीर्षासन

शीर्षासन---इसमें एक पैर को मोड़कर पद्मासन की स्थिति की भाँति लगाये हुए हैं और दूसरा पैर बिलकुल सीधा है। क्रमशः पैर बदलकर करते हैं।
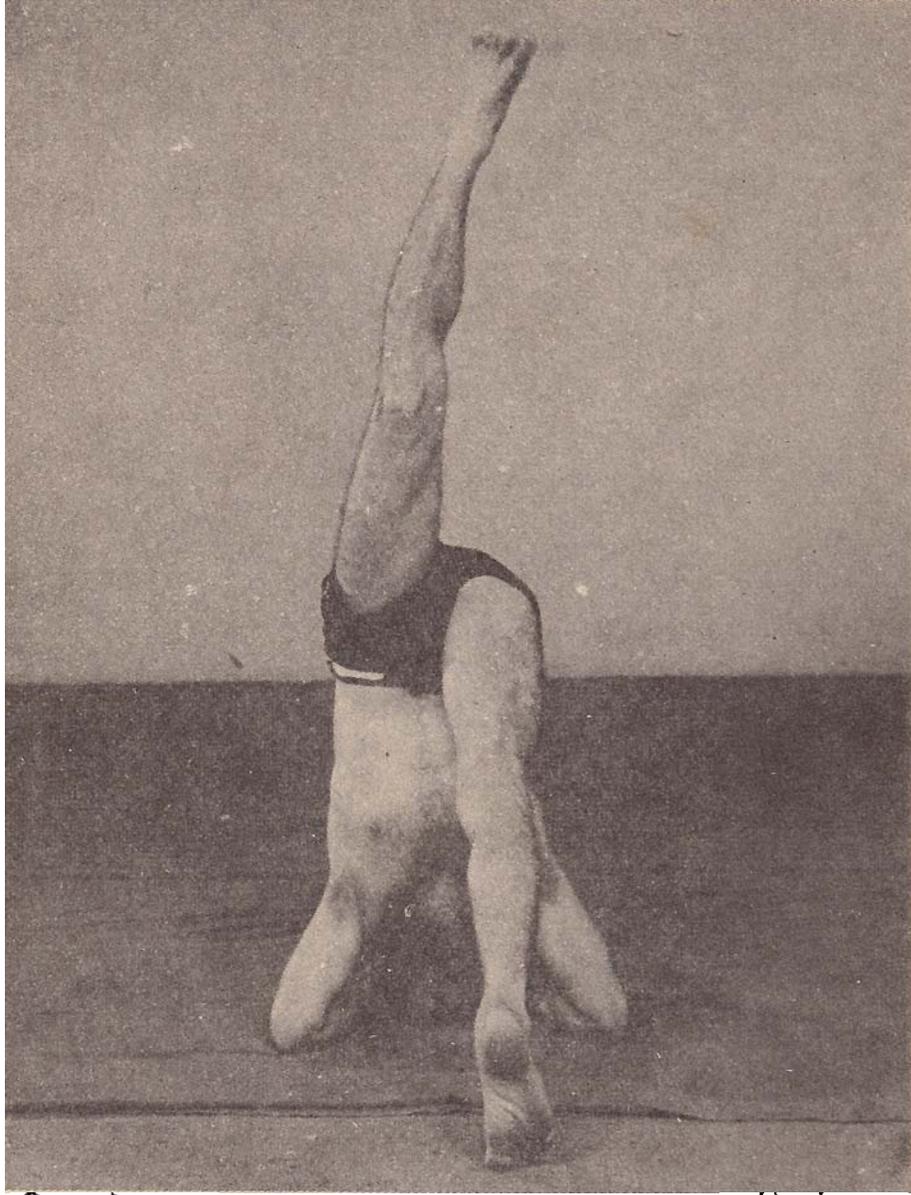
चित्र नं० ६०　　　　　　　　　　शीर्षासन

शीर्षासन—इसमें एक पैर को ऊपर की ओर सीधा रखकर दूसरे पैर के घुटने को सीधा रखते हुए अँगूठे से पृथ्वी को छू रहे हैं। क्रमशः पैर बदल कर करना चाहिए।
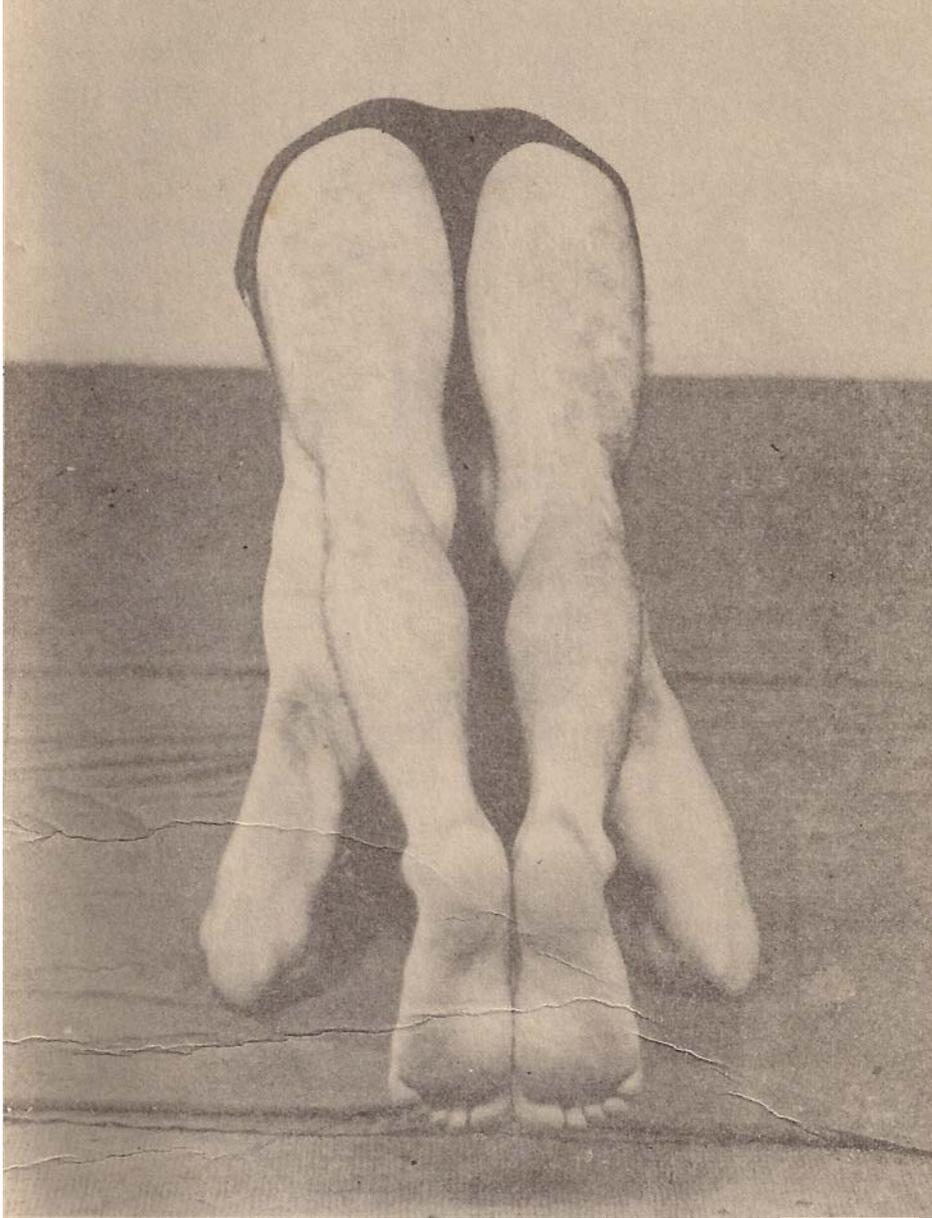
चित्र नं० ६१ शीर्षासन

शीर्षासन---इसमें सिर से कमर तक का विभाग सीधा रखकर, कमर से ऊपरी विभाग को मोड़कर जंघा से अँगूठे तक का भाग सीधा रखते हुए दोनों पैरों के अँगूठों से पृथ्वी को छू रहे हैं।
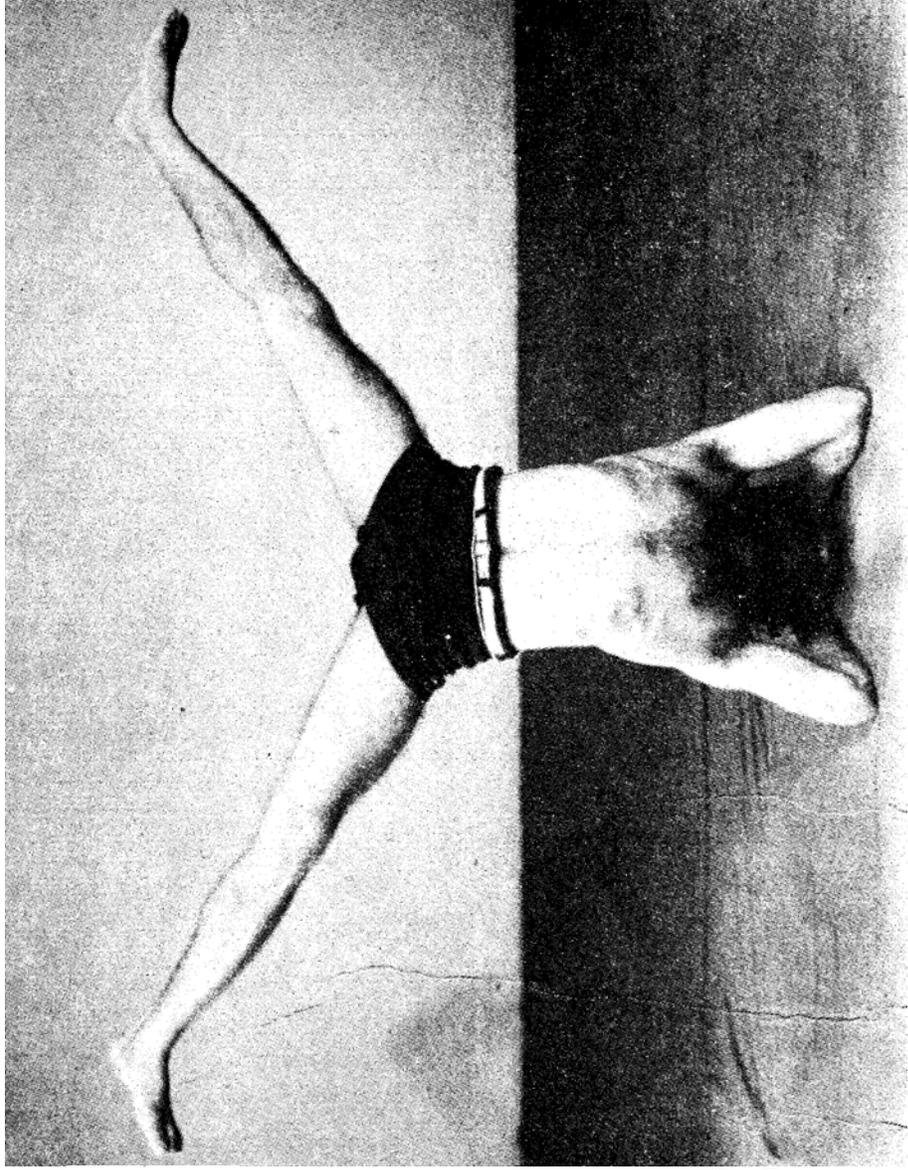
चित्र नं० ९२ शीर्षासन

शीर्षासन---इसमें दोनों पैरों को यथासाध्य फैलाकर आगे-पीछे, दायें-बायें, तिरछे कई प्रकार से पैरों को फैलाकर क्रिया कर रहे हैं
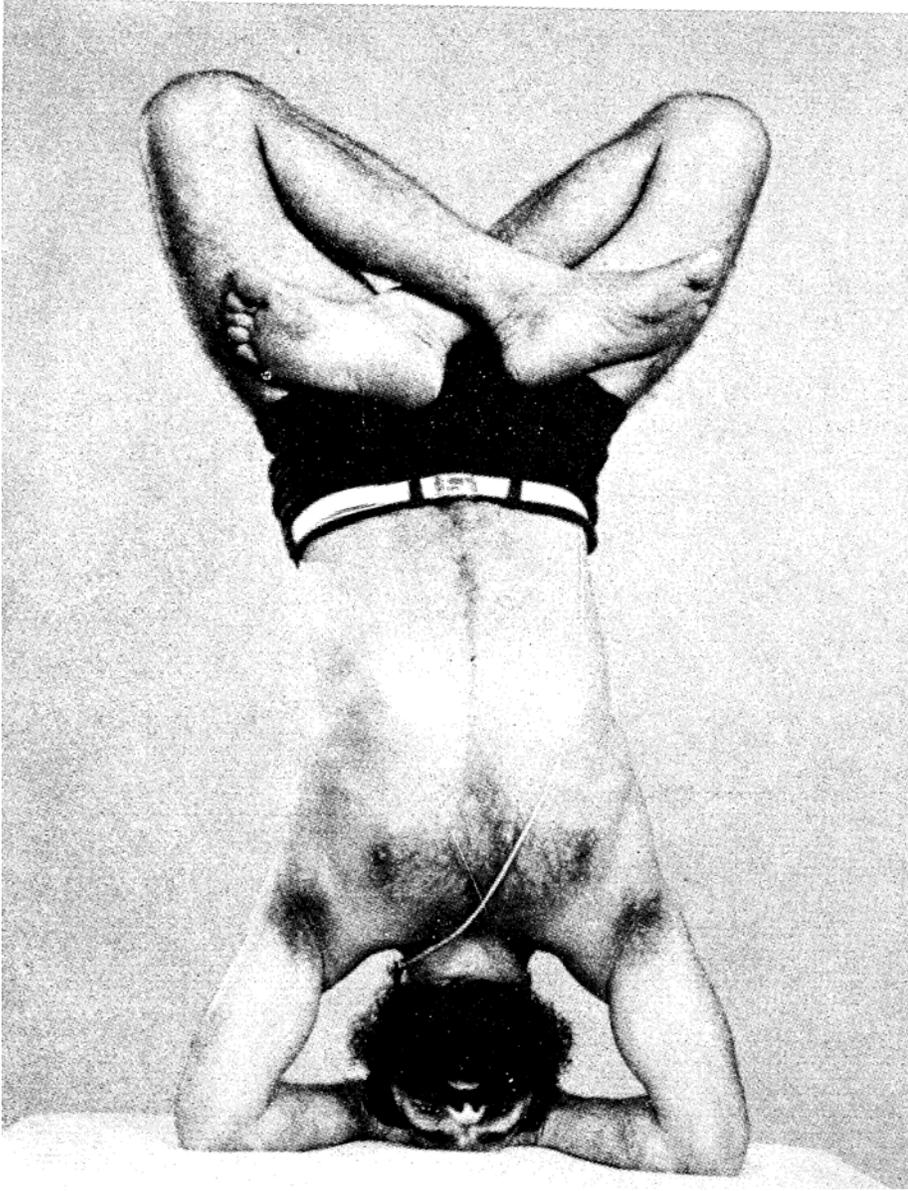
चित्र नं० ९३ शीर्षासन

शीर्षासन---इसमें दोनों पैरों को पद्मासन की भाँति लगा कर शरीर को बिलकुल सीधा रखते हुए स्थित हैं।
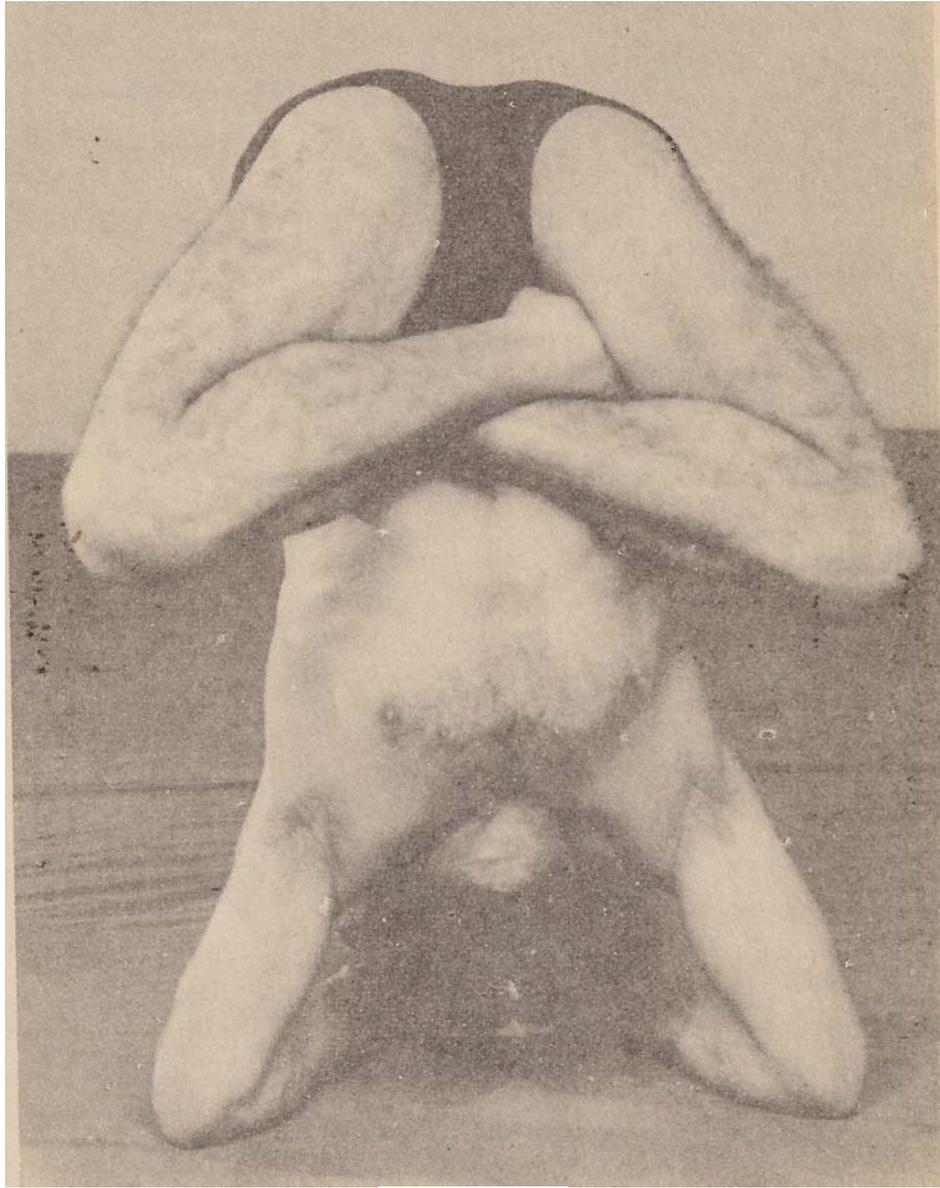
चित्र नं० ६४

शीर्षासन—इसमें पद्मासन लगाकर कमर तक के भाग को सीधा रखते हुए घुटनों और पिण्डलियों को मोड़कर इतना लाते हैं कि दोनों घुटने बगल में छू जायँ। लेकिन सारी परिस्थितियों में सिर के उसी भाग पर भार रहेगा, जो चित्र नं० ८५ में बतलाया गया है।

चित्र नं० ६५ शवासन
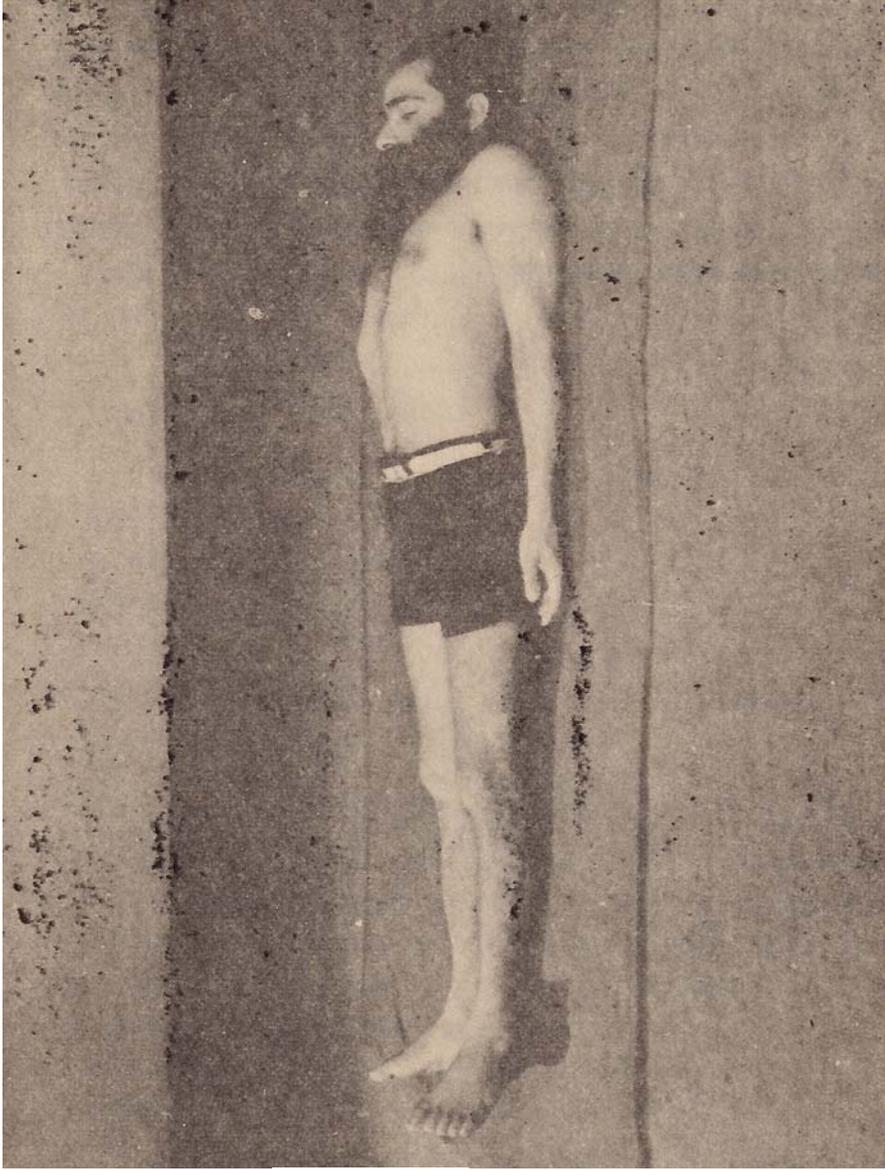
शवासन—इसमें शरीर का हर भाग इतना ढीला, स्वाभाविक स्थिति में छोड़ दिया जाता है, मानों मृतक शरीर पड़ा हो। एड़ियाँ मिली हुई हों, पंजे यथासाध्य खुले हों, हथेलियाँ ऊपर की ओर हों, नेत्र खुले अथवा बन्द रहें। नेत्र यदि खुले हों, तो पलकें स्थिर रहें।

पुस्तक में अन्य यौगिक आसनों का प्रसंग नहीं दिया गया, फिर भी शीर्षासन का प्रसंग देना पड़ा है, क्योंकि गलत शीर्षासन करने से स्कूल-कालेजों के लड़के-लड़कियाँ हानि उठाते हैं। अतः इस पुस्तक को पढ़कर जनता हानि से बचे। आसनों के विषय में "आश्रम-ग्रन्थमाला" नं० २ देखें। शीर्षासन के प्रसंग में एक बात और ध्यान रखने की है कि यदि किसी प्रकार नासिका से श्वास न चले या बन्द हो जाय, तो शीर्षासन उस समय न करें, फिर श्वास चलने पर कर सकते हैं। शीर्षासन सभी आसन करने के पश्चात् करना चाहिए।

नाभि-चक्र

परिचय--शरीर के अंग-प्रत्यंग तथा नस-नाड़ियाँ आदि अपना-अपना महत्व रखते हैं। प्रत्येक अंग एक दूसरे के साथ इस प्रकार गुथा हुआ है कि किसी छोटे-से-छोटे तथा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाग में विकार होने पर सारे शरीर पर उसका प्रभाव पड़ता है। शरीर में स्थूल नाड़ियों के साथ-साथ सूक्ष्म नाड़ियाँ भी विद्यमान रहती हैं। शरीर का अध्ययन हम उसके कुछ प्रमुख भागों में कर सकते हैं, जैसे मस्तिष्क, हृदय, नाभि इत्यादि।

शरीर में नाभि का बहुत महत्व है। शरीर रूपी मशीन का हर पुर्जा अपना कार्य ठीक से करे, नस-नाड़ियाँ रूपी तार, जो बहत्तर हजार के लगभग सारे शरीर में फैले हुए हैं, अपना कार्य ठीक से सम्पादित करें और इनका नियंत्रण ठीक रहे—ये सब नाभि के ही कार्य हैं। शरीर को ठीक तथा निरोग रखने के हेतु लोग अनेक प्रकार के साधन, व्यायाम, क्रियाएँ इत्यादि करते हैं; परन्तु यदि नाभि में कोई विकार है, तो सब परिश्रम व्यर्थ जाता है। जबतक नाभि में किञ्चित् भी विकार रहेगा, तबतक कोई लाभ न होगा।

यदि नाभि अपने स्थान से थोड़ी-सी हट जाती है, तो लोग उसकी परवाह नहीं करते। फिर उसमें धीरे-धीरे खराबियाँ आती रहती हैं, जिसका कारण वे स्वयं नहीं समझ पाते। किन्हीं ने यदि कुछ परवाह की भी, तो अयोग्य (न जानकार) व्यक्ति से अथवा घर में ही किसी से उल्टी-सुल्टी मालिश इत्यादि उपचार कर डाला, जिसका फल यह होता है कि नाभि और खराब तथा विकृत हो जाती है। आधुनिक डाक्टर तथा वैद्य इसकी खराबियों को पकड़ने में असमर्थ-से हैं। धीरे-धीरे कष्ट सहते-सहते रोगी को एक प्रकार की आदत-सी हो जाती है और वह इस विकार से उत्पन्न नाना प्रकार की बीमारियों का कारण डाक्टर-वैद्य द्वारा निर्धारित निर्णय को ही मानकर दुख भोगता रहता है। इसलिए शरीर में पेट सम्बन्धी या अन्य कोई खराबी मालूम होने पर अथवा कोई यौगिक साधन-व्यायाम आदि प्रारम्भ करने से पूर्व किसी योग्य नाभि के जानकार से नाभि-परीक्षा करा लेनी चाहिए।

परम पुनीत उपनिषदों में भी इसके विषय में बहुत कुछ लिखा है :—

तन्नाभिमण्डले चक्रं प्रोच्यते मणिपूरकम् ।
ऊर्ध्वं मेढ्रादधो नाभेः कन्दे योनिः खगाण्डवत् ।।
तत्र नाड्यः समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः ।
तेषु नाडिसहस्रेषु द्विसप्ततिरुदाहृताः ।।
प्रधानाः प्राणवाहिन्यो भूयस्तासु दशस्मृताः ।।

उदर के मध्य नाभि-संस्थान में मणिपूरक नाम का चक्र है। मेढ् अर्थात् स्वाधिष्ठानचक्र के ऊपर और नाभि के नीचे एक गोलाकार कन्द है। उसके बीच में पक्षी के अण्डे के समान नाड़ियों का उद्गम-स्थान है। इसी स्थान से बहत्तर हजार नाड़ियों की उत्पत्ति हुई है। इनमें प्राणवाही ७२ नाड़ियाँ प्रमुख हैं और उनमें भी १० नाड़ियाँ मुख्य हैं, जिनकी विशेष जानकारी के लिए शिक्षण लेना आवश्यक है।

नाभि टल जाने के कारण

प्रायः देखा गया है कि बाल्यावस्था में ही अनेक कारणों से नाभि खराब हो जाती है। खेल-कूद करते समय अथवा सीढ़ी से उतरते समय या एक हाथ से अथवा दोनों हाथों से अत्यधिक बोझ उठाने पर भी नाभि ऊपर को चढ़ जाती है। बाएँ, दाएँ तथा तिरछी नाभि टलने का एक मात्र यही कारण है कि एक पैर पर ही अकस्मात् भार अथवा झटका पड़ जाता है। यह अधिकतर कूदने से हो जाया करता है। यदि बाएँ पैर पर झटका या जोर पड़ता है, तो नाभि दाईं ओर ऊपर को चढ़ जाती है। इसी प्रकार दाएँ पैर पर जोर पड़ने से नाभि बाईं ओर चढ़ जाती है। अनुभव में आया है कि प्रायः पुरुषों की नाभि बाईं ओर और स्त्रियों की नाभि दाईं ओर हटा करती है।

नाभि-परीक्षा (केवल पुरुषों के लिये)

जिसकी नाभि टली हो, उसे पहले उत्तानपाद आसन करावें, जैसा चित्र नं० ६६ में है। तत्पश्चात् सिर और पैरोंको नीचे लाते हुए शवासनमें लिटा दें। फिर एक धागा लेकर उसका एक सिरा परीक्षक उसकी नाभि पर और दूसरा सिरा स्तन की कर्णिका (घुंडी)पर रखें। तत्पश्चात् नाभिचक्र पर हाथ स्थित रखते हुए ही दूसरे सिरे को पुनः स्तन की दूसरी कर्णिका (घुंडी) पर रखें, जैसे चित्र नं० ६७ में है।

त्र नं० ६६ नाभिचक्र

नाभि-परीक्षा—इस चित्र में उत्तानपादासन करा रहे हैं। इसमें केवल नितम्ब का भाग पृथ्वी से लगा हुआ है और नितम्ब से ऊपरी भाग तथा नीचे का भाग पृथ्वी से एक फुट उठा हुआ है।
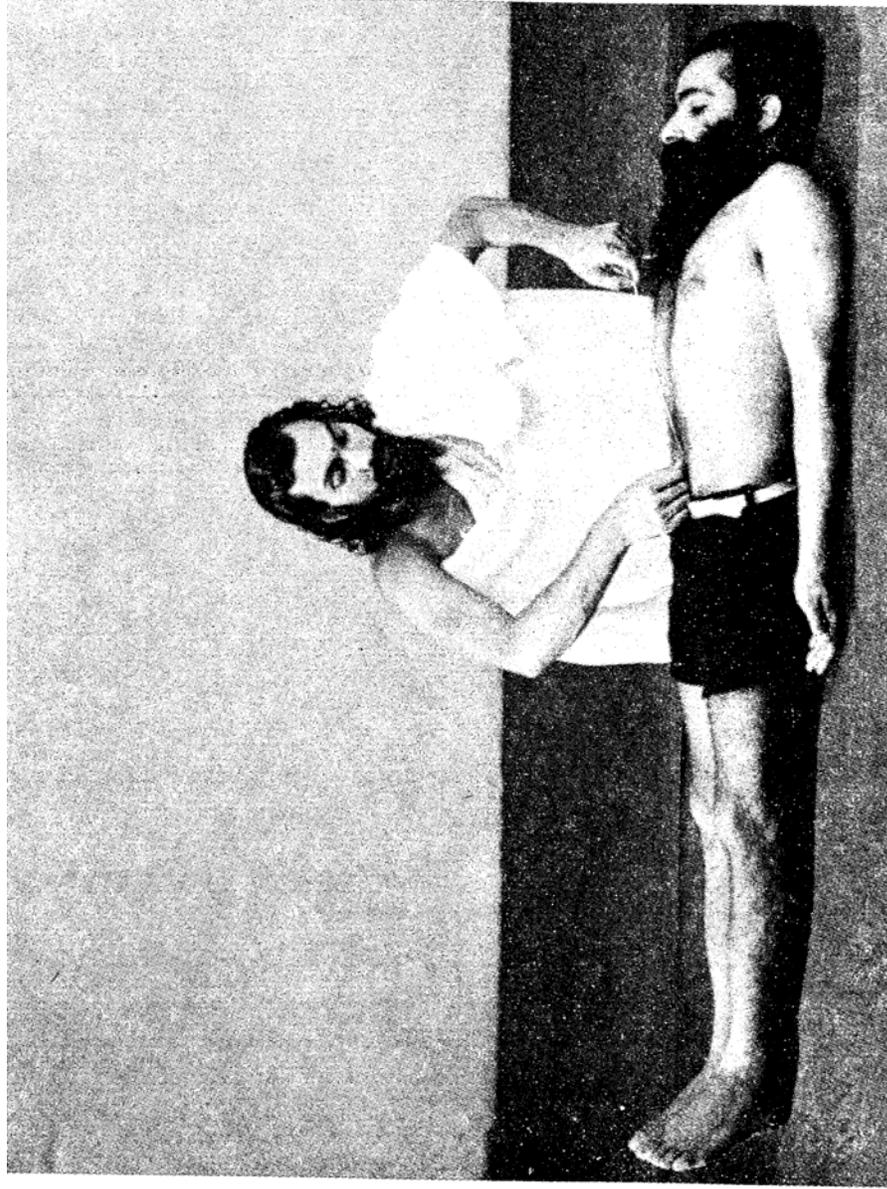
चित्र नं० ९७ नाभिचक्र

नाभि-परीक्षा---इसमें परीक्षक नाभि से स्तन-कर्णिका को नाप रहे हैं कि नाभि किस ओर टली है

यदि दोनों धागों का अन्तर समान ही हो, तो समझ लें कि नाभिमण्डल ठीक है। अगर नाप में कुछ भी कम या ज्यादा मालूम पड़े, तो समझना चाहिए कि नाभिमण्डल खराब है अर्थात् नाभि टली हुई है। इसके साथ यह भी पता चल जायगा कि नाभि किधर को टली है।

यदि नाभिमण्डल यथास्थान न हो, तो सब से पहले किसी नाभि के विशेषज्ञ द्वारा उसे यथास्थान करा लें। इसके बाद ही कोई साधन, व्यायाम, आसन, मुद्रा, प्राणायाम करना चाहिए, अन्यथा विशेष लाभ न होगा।

नाभि-परीक्षा (केवल महिलाओं के लिए)

पहले उत्तानपादासन करावें, फिर शवासन में लिटाकर दोनों पाँवों की एड़ियों को आपस में मिलाते हुए पंजों को यथासाध्य फैला दें। तत्पश्चात् एक धागा लेकर नाभि-चक्र की घुंडी पर एक सिरे को रखते हुए दूसरे सिरे को बाएँ पाँव के अँगूठे पर ले जायें। फिर उसी सिरे को उसी स्थान से पकड़े हुए दाएँ अँगूठे पर उसी प्रकार ले जायें, चित्र नं० ६८ देखें। यदि दोनों अँगूठे के माप में कम या ज्यादे हो, तो समझना चाहिए कि नाभि खराब है।

नाभि-परीक्षा (स्त्री-पुरुष दोनों के लिए)

नर या नारी को सर्व प्रथम शवासन में लिटा दें। तत्पश्चात् अपनी पाँचों अँगुलियों के अग्रभाग को आपस में मिलाकर उसके नाभिमण्डल की घुंडी पर इस प्रकार रखें, जैसे चित्र नं० ६९ में है। अगर नाभि की घुंडी पर हृदय की-सी धड़कन मालूम पड़े, तो समझना चाहिए कि नाभिमण्डल ठीक है। यदि धड़कन दाएँ-बाएँ या ऊपर-नीचे मालूम पड़े, तो समझना चाहिए कि नाभि खराब है। जिस जगह धड़कन मालूम पड़े, उसी जगह नाभि टली है।

नाभि ठीक करने की विधि

अगर किसी की नाभि खराब हो, तो पहले उसे शवासन में लिटायें। फिर परीक्षक पूर्वोक्त विधियों से देखें कि नाभि किस ओर टली है। तब उत्तानपादासन करायें। फिर तेल लेकर नाभि पर इस प्रकार मालिश करें कि टली हुई नाभि केन्द्र में आ जाय। ध्यान रहे कि मालिश की क्रिया किसी नाभि के जानकार से ही करायें, अन्यथा नाभि के और भी खराब हो जाने की सम्भावना रहती है।

यदि नाभि बाईं ओर ऊपर को चढ़ी हुई हो, तो रोगी के दाएँ पैर को दबाकर बाएँ पैर को पकड़कर इस प्रकार झटका दें, जैसा चित्र नं० १०० में है और दाएँ पैर को पकड़ एड़ी के पास तलवे में इस प्रकार हथेली का धक्का दें, जैसे चित्र नं० १०१ में है। यदि नाभि दाईं ओर ऊपर को टली हुई हो, तो यही दोनों क्रियाएँ उलटे ढंग से करें। यदि फिर भी ठीक न हो, तो पेट के बल लिटाकर परीक्षक उसके बाएँ हाथ और बाएँ पाँव पकड़कर अपना दायाँ पाँव उसकी कमर पर रखे, फिर धीरे-धीरे दोनों हाथों से इस प्रकार खींचे, जैसे धनुष पर बाण चढ़ाकर खींचा जाता है। फिर दूसरा हाथ तथा दूसरा पाँव पकड़कर भी वैसा ही करें। चित्र नं० १०२ देखें। यदि नापने पर फिर भी नाभि में फर्क मालूम पड़े, तो रोगी उष्ट्रासन के समान ही अपने दोनों हाथों से अपने पाँवों को पकड़े और परीक्षक अपने दोनों पाँवों के बीच में रोगी को लेकर इस प्रकार उठायें, जैसे चित्र नं० १०३ में है।

यदि किसी की नाभि ऊपर की ओर सीध में टली हुई हो, तो चित्र नं० १०४ के समान रोगी को उठाना चाहिए।

विशेष—ध्यान रहे कि चित्र नं० १०४ वाली क्रिया किसी योग्य नाभि के जानकार से सीखकर ही किसी रोगी को ठीक करें, अन्यथा परीक्षक अपनी नाभि स्वयं ही खराब कर बैठेंगे।

स्वयं नाभि ठीक करने की विधि

यदि कोई नाभि-विशेषज्ञ न मिले, तो स्वयं ही आसनों के द्वारा भी नाभि ठीक कर सकते हैं। इसके लिए सर्व प्रथम उत्तानपादासन करें। चित्र नं० १०५ देखें। फिर उष्ट्रासन करें। चित्र नं० १०६ देखें। फिर चक्रासन करें। चित्र नं० १०७ देखें। फिर मत्स्यासन करें। चित्र नं० १०८ देखें। परन्तु यदि किसी की नाभि बहुत खराब हो गई हो, तो पहले किसी योग्य नाभि के जानकार द्वारा नाभि ठीक करा लें। तत्पश्चात् यदि वह उपर्युक्त आसनों का निरन्तर अभ्यास करेगा, तो जीवनपर्यन्त कभी नाभि न टलेगी। नाभि ठीक करने की अनेक विधियाँ हैं, उनमें से कुछ यहाँ दी गई हैं।

विकृत नाभि से उत्पन्न दोष

यदि किसी की नाभि ऊपर टल गई हो, तो तुरन्त ही कब्ज हो जायगा, गैस बनने लगेगी, हृदय के रोग हो जायेंगे, दिल में धड़कन का रोग हो जायगा। यदि नाभि अधिक
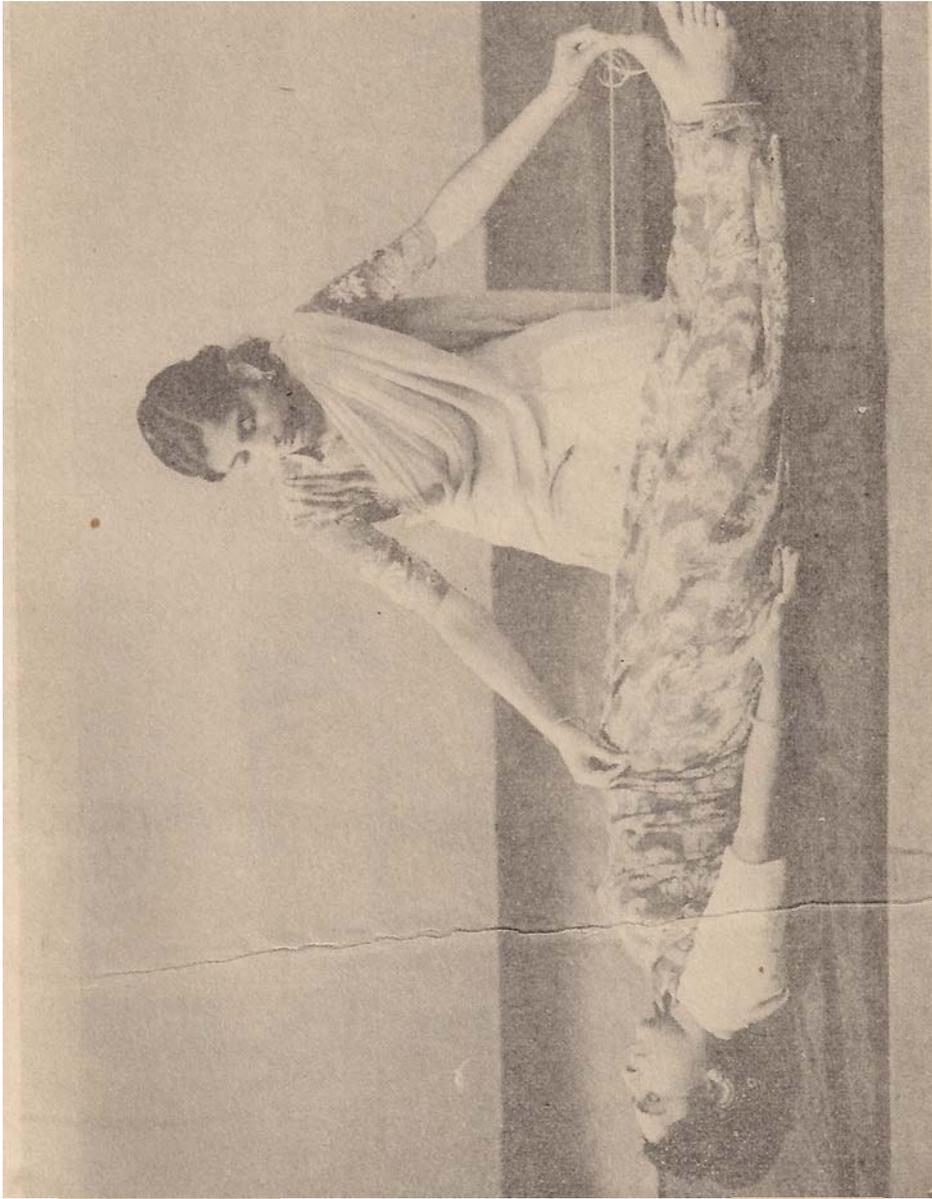
चित्र नं० ६८ — नाभिचक्र

नाभि-परीक्षा (केवल महिलाओं के लिये)—इसमें उत्तानपादासन कराने के पश्चात् नाभि और पांव के अंगूठे से माप रहे हैं कि नाभि किधर टली है।
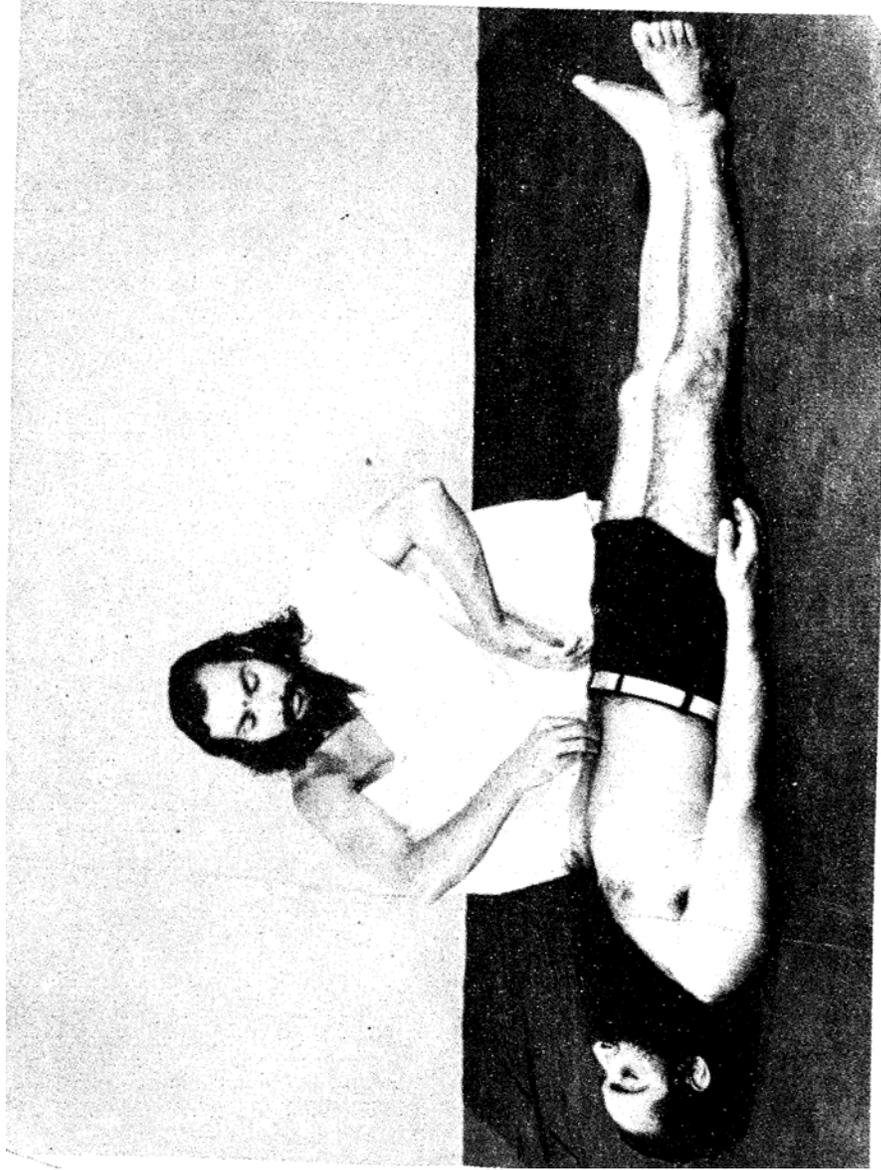
चित्र नं० ६६ नाभिचक्र

नाभि-परीक्षा (स्त्री-पुरुष दोनों के लिये)--इसमें नाभिमण्डल पर परीक्षक अपनी पाँचों अँगुलियों को आपस में मिलाकर देख रहे हैं कि नाभि किधर टली है।
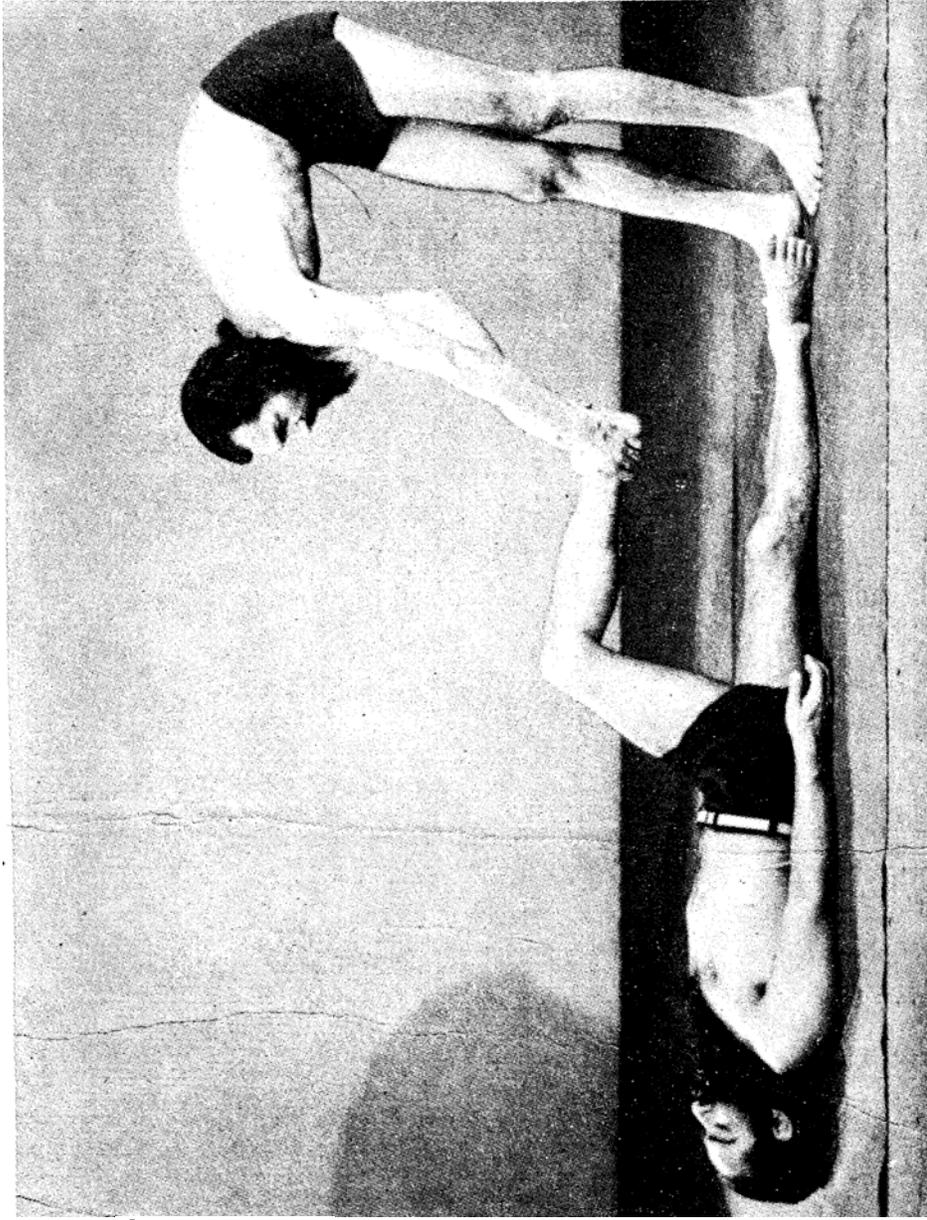
चित्र नं० १००　　　　　　　　　　　नाभिचक्र

नाभि ठीक करने की विधि--इसमें दाएं पांव को दबाकर बाएं पांव और अंगूठे को दोनों हाथों से पकडकर इस प्रकार झटका दे रहे हैं कि ऊपर टली हुई नाभि अपने स्थान पर आ जाये।
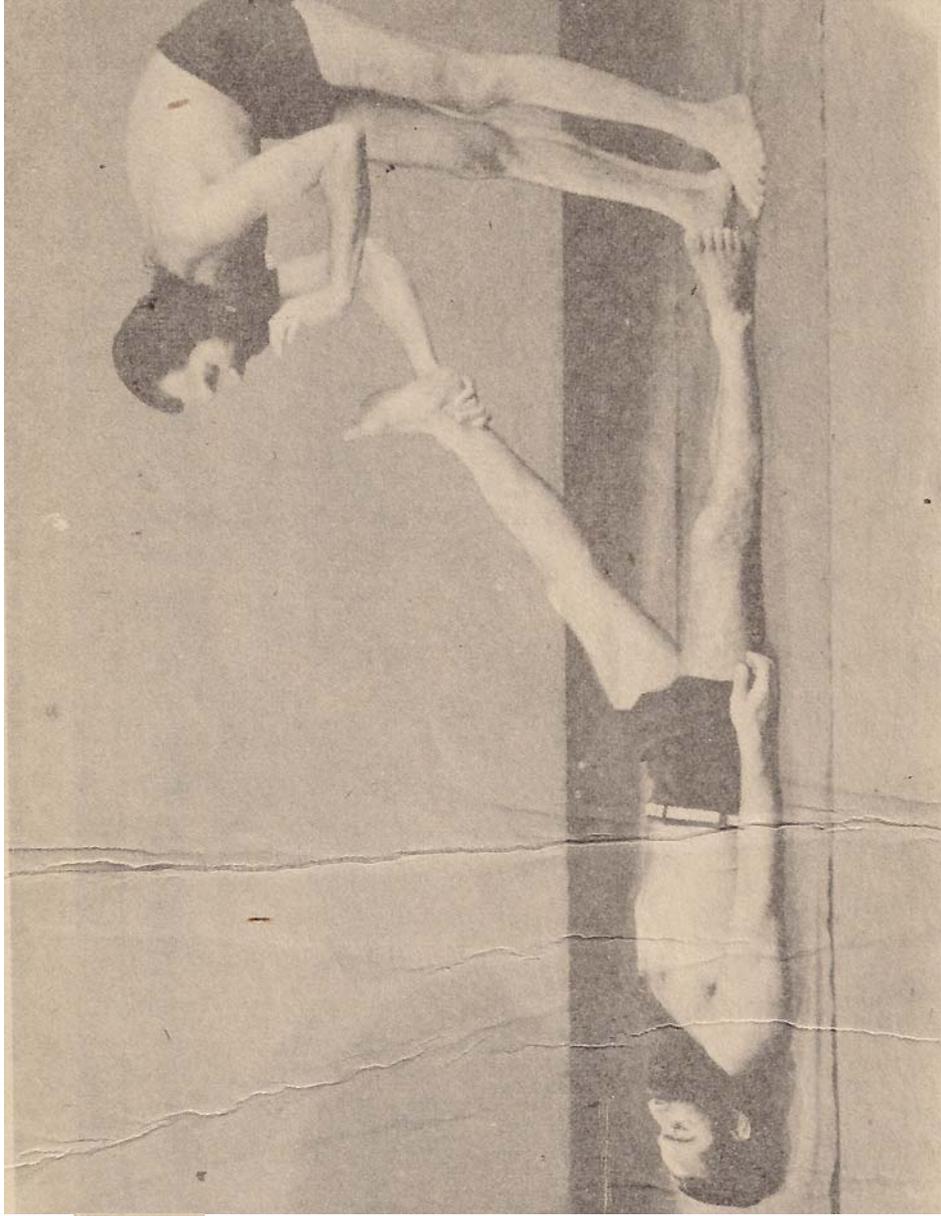
त्र नं० १०१

नाभिचक्र

नाभि ठीक करने की विधि—इसमें दायें पांव को दबाकर बायें पांव के तलुवे में परीक्षक अपने हाथ से इस प्रकार धक्का दे रहे हैं कि नाभि अपने स्थान पर आ जाये।
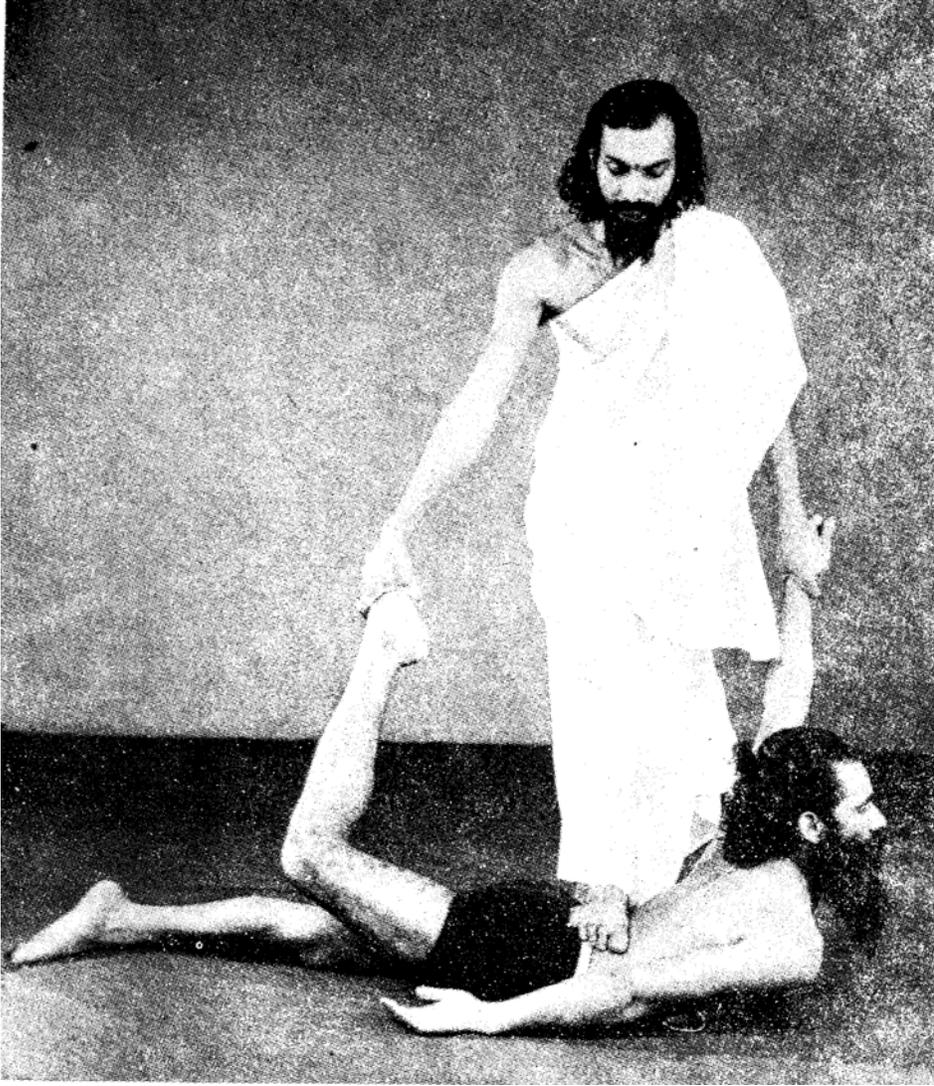
चित्र न० १०२ नाभिचक्र

नाभि ठीक करने की विधि——इसमें परीक्षक रोगी की कमर पर अपना दाहिना पैर रखकर रोगी के बायें हाथ और दाहिने पैर को पकड़कर इस प्रकार खींचें, जैसे धनुष पर बाण चढ़ाकर खींचते हैं।
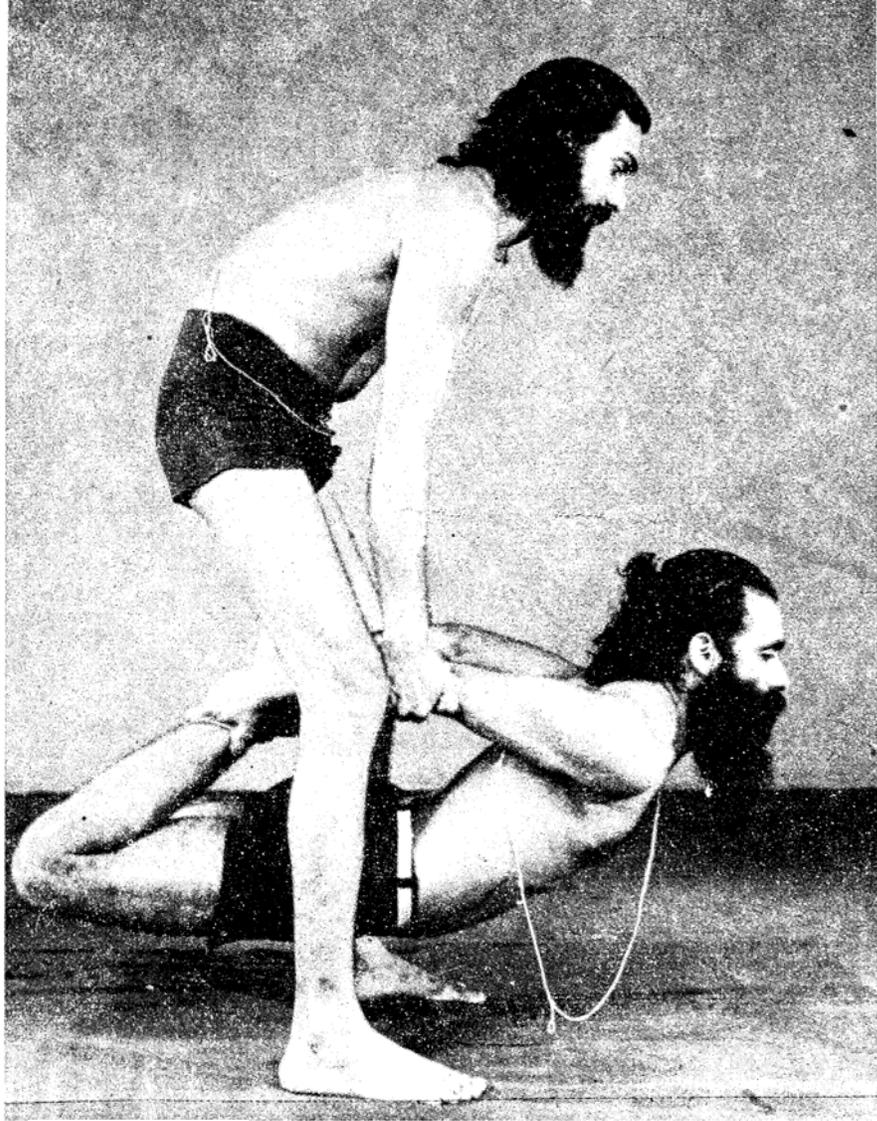
चित्र न० १०३ नाभिचक्र

नाभि ठीक करने की विधि—इसमें रोगी अपने पाँव को इस प्रकार पकड़े, जैसे उष्ट्रासन में पकड़ते हैं। परीक्षक अपने पैरों के बीच में रोगी को लेकर इस प्रकार उठावें कि पृथ्वी से शरीर का सारा भाग ऊपर उठ जावे।
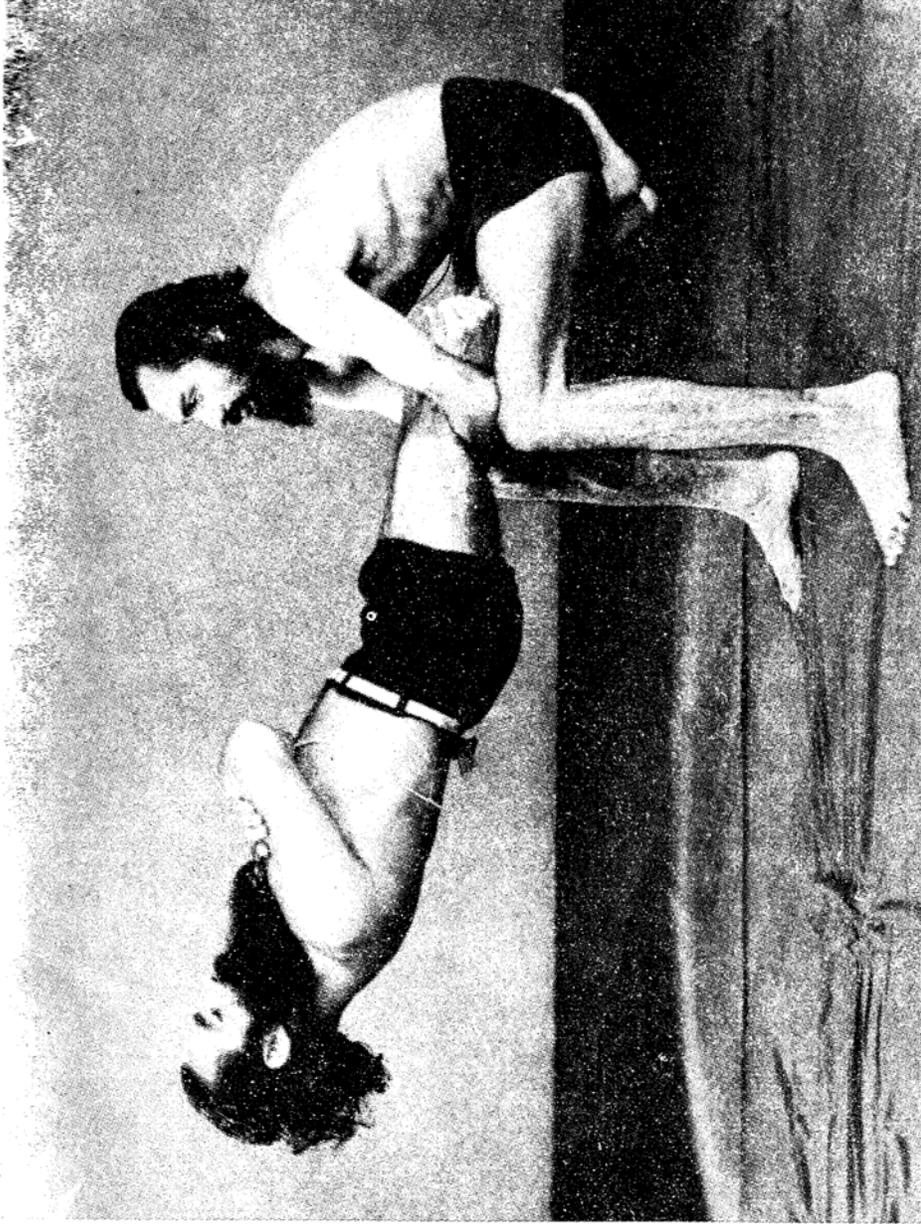
चित्र न० १०४ नाभिचक्र

ऊपर टली नाभि ठीक करने की विधि—रोगी अपने हाथों को आपस में बांधकर शवासन में लेट जाय।. परीक्षक रोगी को अपने दोनों पाँवों के बीच में लेकर घुटनों को पकड़कर इस प्रकार उठावें कि रोगी के पाँवों से सिर का भाग किंचित ऊँचा रहे।

चित्र न०१०५ नाभिचक्र

स्वयं नाभि ठीक करने की विधि—इस चित्र में उत्तानपादासन कर रहे हैं। इसमें नितम्ब का भाग केवल पृथ्वी से लगा हुआ है। नितम्ब से ऊपर और नीचे का भाग पृथ्वी से १ फीट ऊपर उठा हुआ है।

चित्र न० १०६ नाभिचक्र

स्वयं नाभि ठीक करने की विधि---इस चित्र में उष्ट्रासन किये हुए हैं। इस आसन की परिस्थिति में धीरे-धीरे पाँच मिनट रुकने का अभ्यास करना चाहिए।

चित्र नं० १०७ नाभिचक्र

स्वयं नाभि ठीक करने की विधि—इस चित्र में चक्रासन कर रहे हैं। इसमें दोनों हथेलियों और दोनों अँगूठों के बल शरीर को चक्राकार बनाकर ऊपर उठाये गए हैं।

चित्र नं० १०८ नाभिचक्र

स्वयं नाभि ठीक करने की विधि—इस चित्र में मत्स्यासन किये हुए हैं। इसमें पद्मासन लगा कर दोनों हाथों से अंगूठे पकड़ कर सिर और घुटने के बल सारे शरीर को ऊपर उठाये हुए हैं।

ऊपर टल जायगी, तो मल इतना कड़ा हो जायगा कि अँगुली से निकालने पर भी मुश्किल से निकल पायेगा। नाना प्रकार के रोग शरीर में उत्पन्न हो जायेंगे। आयुर्वेद के ग्रन्थ में लिखा है :—

सर्वरोगा मलाश्रयाः ।

इसी प्रकार यदि नाभि नीचे की ओर टल गई, तो पतले दस्त आने लगते हैं। भोजन नहीं पचता। पेट में दर्द होने लगता है। स्वप्नदोष अधिक होने लगते हैं। पेट में इस प्रकार की गड़गड़ाहट होने लगती है, जो बाहर तक सुनाई पड़ती है।

यदि नाभि बगल की ओर टल जाती है, तो पेट में तीव्र पीड़ा आरम्भ हो जाती है, जो किसी दवा तथा अन्य उपचार से ठीक नहीं होती, वरन् नाभिमण्डल को यथा-स्थान करने पर तुरन्त ही लाभ होता है।

इसी प्रकार महिलाओं की नाभि टल जाने से उन्हें नाना प्रकार के रोगों का दुःख उठाना पड़ता है। जैसे लिकोरिया, डिसमिनोरिया, ऋतुधर्म की गड़बड़ी, मासिक स्राव के रंग में अन्तर और नाना प्रकार के गर्भाशय के रोग हो जाते हैं। जिसके परिणाम-स्वरूप अंगहीन, अल्पायु सन्तान का होना तथा बाँझपन आदि और भी अनेक रोग शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

नाभि की गड़बड़ी से उत्पन्न रोगों की चिकित्सा में आधुनिक डाक्टर तथा वैद्य असमर्थ-से रहते हैं, क्योंकि उन्हें रोग के मूल कारण का पता नहीं चलता। कुछ दिन पश्चात् वह रोगी हो जाता है और उसका ध्यान अपने विकृत नाभिमण्डल की ओर नहीं जाता। फिर वह डाक्टर तथा वैद्य द्वारा निर्धारित निर्णय को मानकर ही दुःख भोगता रहता है। नाभि की खराबी के कारण असमय में बाल पक जाते हैं। पायरिया आदि रोग हो जाते हैं। नेत्रों की दृष्टि कमजोर हो जाती है। नाभि यदि एक चावल भर भी इधर-उधर हटी, तो शरीर रुग्न होने लगता है। यह केवल नाभि के यथास्थान होने पर ही ठीक हो सकता है। अतएव स्वास्थ्य के लिए कोई भी साधन, व्यायाम, आसन तथा यौगिक क्रियाएँ करने से पूर्व नाभि परीक्षा करा लेना अनिवार्य है। अन्यथा जब तक नाभि में गड़बड़ी रहेगी, सारा प्रयास निरर्थक होगा। आधुनिक समय में किशोरावस्था में ही दृष्टिदोष, पके बाल, क्षीण शरीर आदि नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त प्राणी दिखाई देते हैं। इसके

मूल कारण की खोज डाक्टर आदि नहीं कर पाते। उनकी खुद समझ में नहीं आता और फलस्वरूप उन्हें रोगों के निदान में सफलता नहीं मिलती। यह बात अनुभव सिद्ध है कि आजकल सौ में से पाँच की नाभि ठीक होती है, बाकी की कुछ-न-कुछ विकृत अवस्था में होती है।

षट्कर्म

यौगिक साधनों में सभी साधन अपने-अपने स्थान पर अपूर्व महत्व रखते हैं; परन्तु योग की साधना में षट्कर्मों का बहुत महत्व है। इसका अभ्यास किये बिना साधक का योगमार्ग में आगे बढ़ना असम्भव नहीं, तो दुर्गम अवश्य है। षट्कर्मों के अभ्यास से शरीर के सम्पूर्ण मल दूर होते हैं। जिस प्रकार झाड़ू आदि से कमरे की सफाई करके उसे बैठने योग्य बना लिया जाता है, उसी प्रकार षट्कर्मों द्वारा शरीर की शुद्धि करके उसे यौगिक साधन के योग्य बना लिया जाता है। यहीं से योगमार्ग की प्रथम सीढ़ी शुरू होती है। इस प्रकरण में हम षट्कर्मों की विधियों का वर्णन करेंगे, जिनका अभ्यास करके मनुष्य योगमार्ग पर अग्रसर होकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

योगशास्त्र में षट्कर्मों पर बहुत कुछ लिखा है, जैसे—

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिर्नौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्॥

अर्थात्—इन छः कर्मों से शरीर की शुद्धि की जाती है। वे ये हैं—(१) धौति, (२) बस्ति, (३) नेति, (४) नौलि, (५) त्राटक तथा (६) कपालिभाति (भस्त्रिका)।

श्लोकबद्ध करने के हेतु ही इन कर्मों के नामों को उलट-फेर कर रखा गया है। वस्तुतः इनके अभ्यास करने का क्रम निम्नलिखित है :—

कुंजल—गजकरणी

कुंजल शब्द कुंजर से बनता है। निरुक्त के नियमानुसार "र" का "ल" हो जाया करता है। अतः कुंजर से ही कुंजल शब्द बन गया। शास्त्रों में इस क्रिया का नाम गजकरणी प्रसिद्ध है। इसके विषय में 'भक्तिसागर' ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है :—

गजकर्म याहि जानिए, पिये पेट भरि नीर।
फेरि युक्ति सों काढ़िए, रोग न होय शरीर॥

जिस प्रकार हाथी सूँड़ से जल पीकर फिर सूँड़ द्वारा ही निकाल देता है और अपने को सदा निरोग रखता है, उसी प्रकार मनुष्य भी कुंजल करके अपने आपको नीरोग

रख सकता है। जैसे किसी बर्तन में पानी डालकर साफ करते हैं, उसी प्रकार गर्म पानी पीकर पेट (अन्नाशय) साफ किया जाता है।

साधन—सहने लायक गर्म जल साफ वस्त्र से छानकर पास रखें।

स्थिति—कागासन में बैठ जायँ। दोनों कोहनियाँ घुटने पर रहें। चित्र नं० १०६ देखें।

क्रिया—अब कागासन में बैठे हुए गिलास से पानी पीना आरम्भ करें और तब तक पानी पीते रहें, जब तक कि पेट पूर्ण न भर जाय या पीते-पीते वमन (कै) करने की इच्छा न होने लगे। चित्र नं० ११० देखें। जल पी लेने के पश्चात् दोनों पैरों को आपस में मिलाकर इस प्रकार खड़े हों कि नाभि पर नब्बे डिगरी का कोण बन जाय। तत्पश्चात् बाएँ हाथ को पेट पर रखकर दाएँ हाथ की तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका तीनों अँगुलियों को मिलाकर मुख के अन्दर वहाँ तक ले जायँ, जहाँ तक दूसरी छोटी जीभ है। उस जीभ पर धीरे-धीरे तीनों अँगुलियों को सावधानी से घुमावें। जब पानी बाहर निकलने लगे, तब अँगुलियों को तुरन्त बाहर निकाल लें। जब तक धार बँध कर पानी निकलता रहे, तब तक अँगुलियाँ बाहर रखें। फिर तुरन्त उसी प्रकार तीनों अँगुलियाँ छोटी जीभ पर घुमावें। ऐसा बार-बार करने से पेट का सारा पानी बाहर निकल जायगा। सारा पानी निकल जाने की पहचान यह है कि जब अँगुलियाँ मुख में डालेंगे और उल्टी आने पर पानी न निकले, तो यह समझना चाहिए कि पेट का सारा पानी बाहर आ गया। ध्यान रहे कि क्रिया करते समय शरीर को अधिक ऊपर-नीचे न करें। बैठकर तथा बिलकुल सीधे होकर क्रिया नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे हानि होती है। चित्र नं० १११ देखें।

विशेष—अन्त में जब खट्टा या कड़ुआ पानी निकले, तो पुनः एक गिलास गर्म जल पीकर पुनः उसी प्रकार निकालें। यह सदा ध्यान रखने की बात है कि पानी न अधिक गर्म हो और न ही ठंडा। ध्यान रहे कि कुंजल करने के दो-ढाई घंटे पश्चात् ही स्नान करना चाहिए। इससे पूर्व स्नान करने पर हानि की सम्भावना है।

समय—कुंजल कर्म सर्वदा सूर्योदय से पहले शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर करना चाहिए।

लाभ—इस कर्म के करने से कपोल-दोष, मुख पर होनेवाले फोड़े-फुन्सियाँ, दन्तरोग, जिह्वारोग, हृद्‌रोग, रुधिर-विकार, वक्षःस्थल के रोग, परिणामशूल, कब्ज,
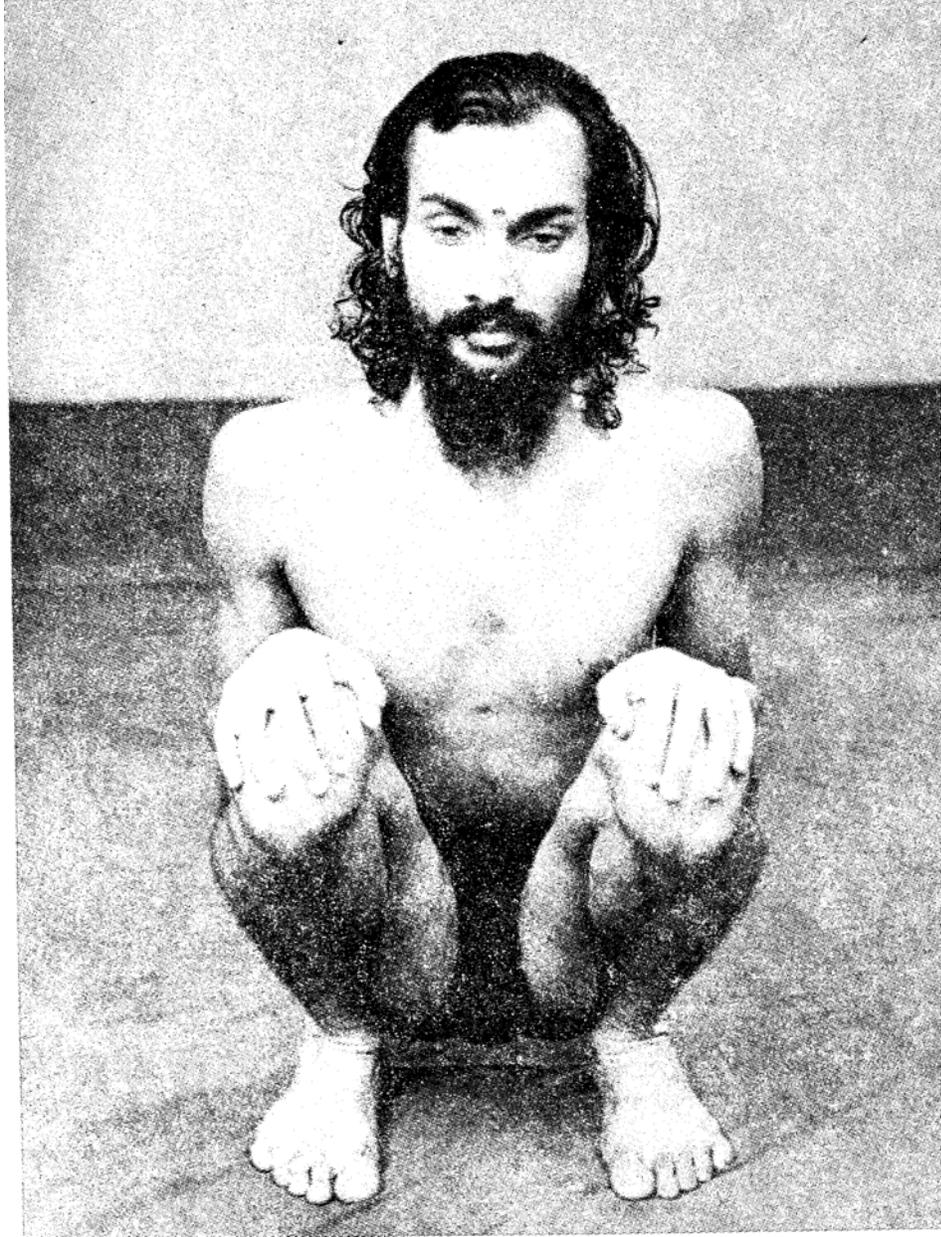
चित्र नं० १०६ षट्कर्म

यौगिक षट्कर्म कुंजल कागासन—इस चित्र में दोनों पाँवों के बीच में एक बालिश्त का अन्तर रख कर दोनों हाथों को घुटनों पर रखते हुए कागासन में बैठे हैं।
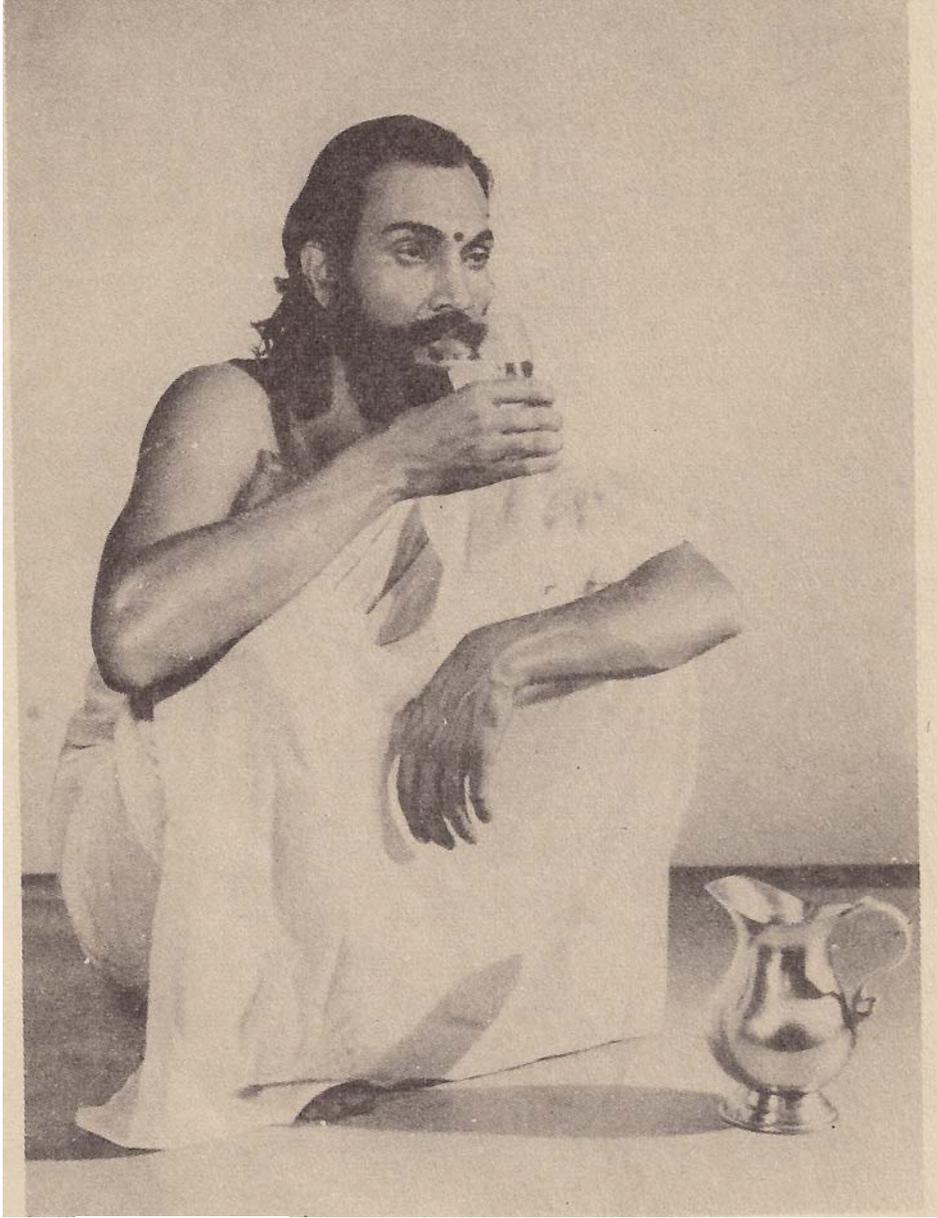
चित्र नं० ११०　　　　　　　　　　षट्कर्म

कुंजल—इस चित्र में कागासन में बैठे हुए कुंजल क्रिया करने के लिये पानी पी रहे हैं।

चित्र नं० १११ षटकर्म

कुंजल क्रिया--इसमें पिया हुआ पानी निकाल रहे हैं

चित्र नं० ११२ षटकर्म

नेति---कागासन में बैठकर दोनों नासिका में सूत्र नेति डाल कर मुख से निकाल रहे हैं

पित्त-प्रकोप, वात-प्रकोप, कफ-प्रकोप, मन्दाग्नि, खाँसी, दमा, मुख सूखना, कण्ठमाला, रतौंधी आदि अनेक बीमारियाँ दूर होती हैं। इसके लाभ अद्भुत हैं, जो अनुभवगम्य हैं। किसी योग विशेषज्ञ से इसका शिक्षण लेना चाहिए।

नेति—मातङ्गिनी

नेति शब्द परम पुनीत वेद की ऋचा में भी आया है, किन्तु उसका अर्थ मिथ्यात्व प्रपंच का बोध तथा स्वरूपोपलब्धि का संकेत है। षट्कर्मों के प्रसंग में नासिका के सम्बन्ध से ही "नेति" शब्द ग्रहण किया गया है। नेति कई प्रकार की बताई गई है, जैसे—(१) सूत्रनेति, (२) जलनेति, (३) दुग्धनेति, (४) घृतनेति। ये चार प्रकार की नेति हुई। सर्वप्रथम सूत्रनेति के निर्माण की विधि का वर्णन कर रहे हैं।

सूत्रनेति का निर्माण

बढ़िया बारीक ४० नं० का सूत्र लेकर लच्छी को दोनों ओर से काट दें। तत्पश्चात् लच्छी में से डेढ़ सूत मोटा सूत्र निकाल कर एक बालिस्त और दो अंगुल लम्बाई में माप लें। उसमें से एक धागा लेकर पानी में भिगा लें और नापी हुई जगह पर उसे तीन लपेटा देकर बाँध दें। बचे हुए भाग को चाकू से काट डालें। तत्पश्चात् नापे हुए एक बालिस्त दो अंगुलवाले सूत्र के सिरे को पकड़कर उसका तीन विभाग कर लें। पुनः प्रत्येक विभाग के मध्य भाग से ऊपर की ओर चाकू से इस प्रकार बारीक करें कि नीचे से ऊपर का भाग १/४ हो जाय। फिर जल में पूर्णतया भिगाकर दो लड़ियाँ लेकर आपस में रस्सी की भाँति बँट लें। तत्पश्चात् तीसरी लड़ी को भी इस प्रकार मिलाकर बाँटें कि तीनों मिलकर एक सुन्दर रस्सी बन जायँ। बँटे हुए हिस्से को ऊपर महीन पतले धागे से इस प्रकार बाँध दें कि आगे के हिस्से का धागा काटने पर रस्सी न खुलने पाये। अब बिना बँटे हुए विभाग को डेढ़ बालिस्त मापकर काट डालें और सारे सूत्रों को आठ-दस विभागों में बाँट दें। उसके बाद नेति को पूर्ण सुखा लेने पर शुद्ध शहद के छत्ते से निकाला हुआ मोम लेकर उसे किसी कटोरी में खूब गर्म करें और बँटे हुए भाग को उसमें डुबो दें। ऐसा करने से बँटे हुए भाग में मोम भीतर तक प्रविष्ट हो जायगा और नेति बन जायगी। मोम लगाने के बाद उस बँटे हुए हिस्से को इस प्रकार हाथों से मलें कि वह गोल हो जाय। ध्यान रहे कि केवल बँटे हुए सूत्र में ही मोम लगे। बिना बँटे हुए सूत्र में किंचित् भी मोम न लगे।

सूत्रनेति करने की विधि

सूत्रनेति को गर्म तथा नमकीन जल से पूर्णतया भिगोकर बँटे हुए विभाग को आगे से अर्धचक्राकार बनाकर कागासन में बैठे हुए ही दोनों हाथों से धीरे-धीरे एक नासिका-रन्ध्र में (जो स्वर चलता हो) डालें। जब कण्ठ में नेति आ जाय, तो तर्जनी और मध्यमा दोनों अँगुलियों को कण्ठ के अन्दर ले जाकर नेति के बँटे हुए भाग को आगे से पकड़कर धीरे-धीरे मुख के बाहर लायें। पुनः दूसरी सूत्रनेति भी पूर्वोक्त प्रकार से दूसरे नासिकारन्ध्र में डालकर मुख के बाहर निकाल लें। फिर एक हाथ से दोनों नेति के बँटे हुए भाग को पकड़कर और दूसरे हाथ से नेति के बिना बँटे हुए भाग को पकड़ कर धीरे-धीरे जैसे दही बिलोया जाता है, ऐसे अन्दर-बाहर पाँच-सात बार करके मुख के द्वारा दोनों नेति बाहर निकाल लें, जैसे चित्र नं० ११२ में है।

'भक्तिसागर' में इसके विषय में बड़ा सुन्दर वर्णन है :--

मिही जु सूत मँगाय कै, मोटी बाटै डोर।
ऊपर मोम रमाय कै, साधै उठकर भोर॥
साधै उठकर भोर, डेढ़ बालिश्त की कीजै।
ताको सीधी करै, हाथ अपने में लीजै॥
नासारन्ध्र में मेलकर, खींचै अंगुली दोय।
फेरि बिलोवन कीजिए, नेती कहिये सोय॥

दो०--नाक, कान अरु दाँत को, रोग न व्यापै कोय।
उज्ज्वल होवै नैन ही, नित नेती करि सोय॥

विशेष--सूत्रनेति करने के एक घण्टा पश्चात् गाय का शुद्ध घी मामूली गरम करके दस-दस बूँद दोनों नासिकारन्ध्रों में डालें। दिन या रात्रि में विश्राम करने के समय घृत डालने पर विशेष लाभ होता है। चित्र नं० ११३ देखें।

जलनेति

साधन--एक टोटीदार लोटा लें, जिसमें आधा सेर जल आ जाय। टोटी का अग्रभाग ऐसा होना चाहिए, जो नासिका के छिद्रों में ठीक आ जाय। लोटे में सहने लायक गरम जल लें तथा थोड़ा नमक मिलायें, उतना ही जितना दाल में डालते हैं।

स्थिति—कागासन में बैठकर नमकीन गरम जल से भरे लोटे को उठाकर हथेली पर रखें।

क्रिया—जो स्वर चलता हो, उस नासिकारन्ध्र में टोटी को लगायें। यदि दाएँ स्वर में टोटी लगी हो, तो बाईं तरफ सिर को यथासाध्य झुकावें। सिर झुकाते ही दूसरे नासिकारन्ध्र से पानी गिरने लगेगा। पहले नासिकारन्ध्र से जब एक लोटा पानी निकल जाय, तब दूसरे से भी इसी प्रकार एक लोटा जल निकालें। चित्र नं० ११४ देखें। ध्यान रहे कि क्रिया करते समय (पानी निकालते समय) मुख को खुला रखें और श्वास मुख से ही लें तथा छोड़ें। नाक से किंचित् भी श्वास न लें। नाक से श्वास लेने पर पानी ऊपर चढ़ने लगेगा और आप घबरा कर नेति छोड़ देंगे, अतएव नाक से बिलकुल श्वास न लें। तत्पश्चात् खड़े होकर इतना झुकें कि नाभि पर नब्बे डिगरी का कोण बन जाय। फिर ठुड्डी को कण्ठकूप से लगाकर सिर दाएँ-बाएँ तथा ऊपर-नीचे घुमावें। ऐसा करने से ऊपर चढ़ा हुआ पानी नासिकारन्ध्र से निकल जायगा। ध्यान रहे, झुकने की स्थिति में दोनों हाथ कमर पर रहेंगे। चित्र नं० ११५ देखें।

विशेष—जलनेति करने के पश्चात् भस्त्रिका करना आवश्यक है। चित्र नं० १२५ देखें। (भस्त्रिका करने की क्रिया के विषय में आगे प्रकरण में दिया हुआ है)।

लाभ—इसका अभ्यास करने से मस्तिष्क सम्बन्धी सारे दोष दूर होते हैं। नेति के जितने लाभ लिखे जायँ, थोड़े हैं। कैसा भी सिर का दर्द रहता हो, तुरन्त दूर होता है। अनिद्रा तथा अतिनिद्रा दूर होती है। बुद्धि तीव्र होती है। बालों का झड़ना तथा पकना दूर होता है। विस्मृति का दोष दूर करने में तो यह अद्वितीय है। नासिका सम्बन्धी सारे रोग इसके निरन्तर अभ्यास से दूर हो जाते हैं। नाक के अन्दर के फोड़े और बढ़ा मांस (एडिनायड) इसके द्वारा जाते रहते हैं। नजला-जुकाम आदि दूर हो जाते हैं। पागलपन दूर हो जाता है। नेत्र की ज्योति बढ़ती है। नेत्रों की लाली, आँख का आना, रतौंधी, धुन्ध, कीचड़ आदि सारे नेत्र-विकार इससे दूर होते हैं। कान बहना, कम सुनना, बिलकुल न सुनना, कर्णमूल आदि सारे विकार दूर होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि गले से ऊपर के सारे रोग इससे दूर होते हैं।

जलनेति और सूत्रनेति का पारस्परिक सम्बन्ध है। इसीसे सूत्रनेति के बाद जलनेति करना आवश्यक है। जितने गुण सूत्रनेति में हैं, वे सब जलनेति में भी हैं। योगशास्त्र में इसके विषय में लिखा है :—

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टि प्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौन्ध नेतिराशु निहन्ति च ।।

दुग्धनेति

कागासन में बैठकर जलनेति के समान ही टोटीवाले लोटे में गाय का धारोष्ण दूध डालकर मुख को सीधा रखते हुए एक नासिकारन्ध्र में टोटी लगावें। दूसरे नासिकारन्ध्र को अँगूठे से बन्द करके सिर को किंचित् ऊपर उठावें। ऐसा करने से दूध मुख में जाने लगेगा। उसे धीरे-धीरे पीते जायँ। शक्ति अनुसार ही दूध की मात्रा रखनी चाहिए, जिससे वह आसानी से पच जाय। ध्यान रहे कि जलनेति के पश्चात् भस्त्रिका से नाक को पूर्णतया साफ करने के बाद ही दुग्धनेति करें। चित्र नं० ११६ देखें।

घृतनेति

दुग्धनेति की भाँति घृतनेति भी की जाती है। इसमें भी शक्ति अनुसार जितना घी आप पचा सकें, बारी-बारी से दोनों नासिकारन्ध्रों से पीवें। घृत का किंचित् गरम रहना आवश्यक है।

विशेष—सूत्रनेति और जलनेति की भाँति ही इसके भी लाभ हैं। विशेषतया नाक से खून आनेवालों के लिए यह परम उपयोगी है।

वस्त्रधौति

चतुरङ्गुलविस्तारं हस्तपञ्च दशायतम्।
गुरूपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ।।
पुनः प्रत्याहरेच्चैतदुदितं धौतिकर्म तत्।

चार अँगुल से आठ अँगुल तक की चौड़ाई का महीन मलमल कपड़ा लेकर उसकी लम्बाई १५ हाथ रखें। अगर किसी चौड़े कपड़े में से फाड़ा गया हो, तो किनारे से दो-दो धागे निकाल दें। तत्पश्चात् साबुन से उसे भलीभाँति साफ करने के बाद गरम पानी में उबाल लें। पाँच मिनट तक उसी पानी में उबलता रहने दें। उसके बाद निकालें। फिर उसे भलीभाँति निचोड़कर ऐसी जगह सुखायें, जहाँ मक्खी आदि

चित्र नं० ११३ पट्कर्म

नासिका में घृत डालने की विधि——तख्त पर लेटाकर गरदन को पूर्णतया नीचे लटकाकर दोनों नासिकारन्ध्रों में घी डाल रहे हैं।

चित्र नं० ११४ षट्कर्म

जलनेति--इसमें कागासन में बैठे हुए, एक नासिकारन्ध्र में नमकीन गर्म जल भरे लोटे की टोटी लगाये दूसरी नासिका से जल निकाल रहे हैं।
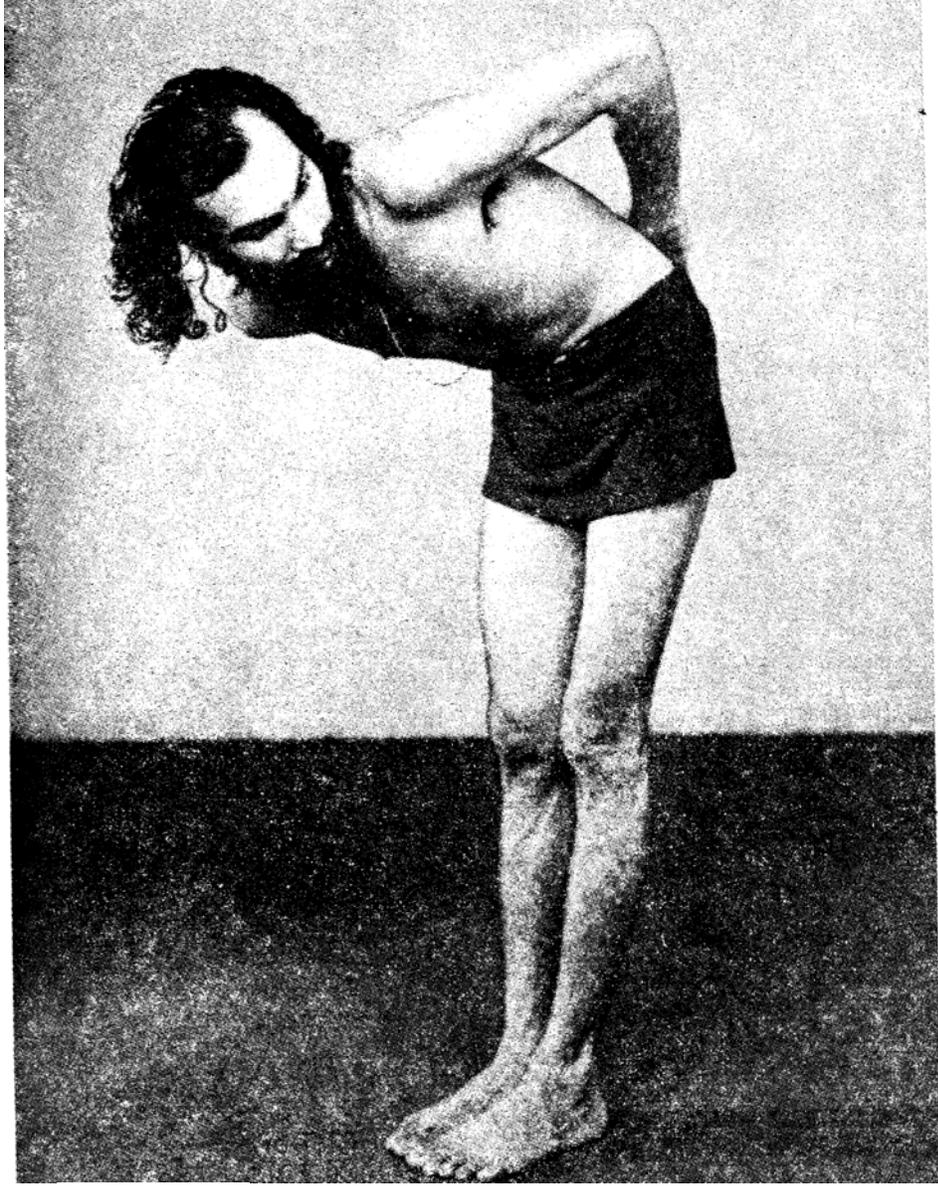
चित्र नं० ११५ षट्कर्म

जलनेति के पश्चात् नासिकारन्ध्रों से जल निकालने की विधि—इसमें दायें, बायें, ऊपर, नीचे गरदन घुमाकर रुका हुआ जल निकाल रहे हैं।

चित्र नं० ११६ षट्कर्म

दुग्धनेति—जलनेति के समान ही लोटे में धारोष्ण दूध लेकर एक नासिकाछिद्र को बन्द करके दूसरे नासिकाछिद्र में लोटे की टोंटी लगाकर गले को ऊपर उठाकर दूध पी रहे हैं।

उस कपड़े पर न बैठें। कपड़ा जब अच्छी तरह सूख जाय, तब उसे पट्टी की भाँति गोल लपेट लें। एक स्वच्छ कटोरे में तीन पाव खौलता हुआ पानी डालें। फिर उसमें धौति डाल दें।

स्थिति—कागासन में बैठे धौति के सिरे को अपने दाएँ हाथ की तर्जनी और मध्यमा अँगुलियों के अग्रभाग के बीच में इस प्रकार पकड़ें कि धौति का सिरा अँगुली के अग्रभाग पर हो।

क्रिया—मुख को पूर्ण खोलकर पकड़ी हुई धौति के सिरे को मुख के अन्दर वहाँ तक ले जायँ, जहाँ छोटी जीभ है। उसके बाद दोनों अँगुलियों को अलग करते हुए इस प्रकार बाहर निकालें कि अन्दर गई हुई धौति अँगुली के साथ बाहर न आ जाये। तत्पश्चात् जीभ से धीरे-धीरे धौति को अन्दर की ओर बढ़ायें। जिस प्रकार खाना खाते हैं, वैसे ही जीभ पर इकट्ठी की हुई धौति को बार-बार निगलें, जैसे चित्र नं० ११७ में है। ध्यान रहे, धौति तालु में न सटने पाये, अर्थात् जीभ पर ही रहे। इस प्रकार बार-बार निगलने पर धौति अन्दर जाने लगेगी। पहले दिन एक हाथ से अधिक नहीं निगलना चाहिए। निगलते समय यदि उल्टी आये, तो मुख बन्दकर दाँत पर दाँत बैठाकर मनोबल से रोकना चाहिए। इस प्रकार १५ दिन में १५ हाथ धौति निगलें।

धौति बाहर निकालने की विधि

मुख को पूर्ण खोलकर धौति के बाहर बचे सिरे को पकड़कर धीरे-धीरे निकालें। जब तक धौति आसानी से निकलती जाय, निकालते जायँ, परन्तु रुकने पर खींचना तुरन्त ही बन्द कर देना चाहिए। फिर से धौति निगलें, जैसे पहले निगल कर अन्दर ले गये थे। दो-तीन घूँट निगलने के पश्चात् पुनः मुख को पूर्ण फैलाकर पहले की तरह धौति को बाहर निकालें। ऐसा करने से गले से लेकर पेट तक धौति सीधी हो जाती है, अर्थात् रुकना बन्द हो जाता है तथा सारी धौति बाहर आ जाती है।

विशेष—अगर किसी कारण धौति बाहर न आती हो, तो जितना जल पी सकें, पी लें और खड़े होकर कुंजल की भाँति मुख में अँगुली डालकर निकालें। ऐसा करने से रुकी हुई धौति शीघ्र बाहर निकल आती है। लेकिन ऐसी घटना हजारों में एक-आध ही होती है।

अगर किसी को कफ की शिकायत न हो, पर पित्त अधिक हो, तो गरम पानी के स्थान पर गरम दूध में धौति भिगोकर निगल सकते हैं। यदि किसी को धौति निगलने में अधिक उबकाई आती हो, तो धौति के अग्रभाग पर शहद लगाकर या जगह-जगह शहद लगाकर निगलें। ध्यान रखें, धौति निगलते समय एक बालिश्त धौति मुख के बाहर अवश्य रहे, ताकि पुनः निगलकर निकालने में सुविधा हो।

धौति निगलने के पश्चात् खड़े होकर घुटने पर हाथ रखें और जिस प्रकार नौलि चलाते हैं, साढ़े तीन चक्र बाएँ से, साढ़े तीन चक्र दाएँ से देते हुए नौलि बार-बार चलायें। तत्पश्चात् बैठकर उपर्युक्त विधि के अनुसार धौति को मुख से बाहर निकालें।

लाभ––

प्लीहागुल्मज्वरं कुष्ठं कफपित्तं विनश्यति।
आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिनेदिने॥

अर्थात् इस क्रिया के अभ्यास से प्लीहा, गुल्म, ज्वर, कुष्ठ, कफ-पित्त दूर होते हैं तथा मनुष्य नीरोग और बलवान होता है। इसके अतिरिक्त इससे खाँसी, दमा, राजयक्ष्मा, परिणामशूल, मन्दाग्नि, कब्ज, कण्ठमाला, तुतलापन, मलेरिया, ज्वर आदि रोग दूर होते हैं। लिखा भी है :––

धोती कर्म यासों कहैं, पट्टी सोलह हाथ।
कोढ़ अठारह ना भवैं, करै जु नित परभात॥
चौड़ी अंगुल चारि की, मिही वस्त्र की होय।
जल में भेय निचोय करि, निगल कंठ सों सोय।
निगल कण्ठ सों सोय, सिराबाहर रहि जावै॥
फेरि निकासै ताहि, पित्त कफ दोऊ लावै॥
काया होवै शुद्धही, भजै पित्त कफ रोग।
शुकदेव कहैं धोती करम, साधै योगी लोग॥

दण्डधौति

साधन––कच्चे सूत की अनामिका अँगुली के बराबर मोटी तीन लड़ी की एक रस्सी बनायें, जिसकी लम्बाई तीन बालिश्त चार अंगुल हो और उसके मुख पर इस प्रकार धागा से बाँधें कि चौथाई इंच की दूरी पर उसका हिस्सा फूल के समान खिल जाय।
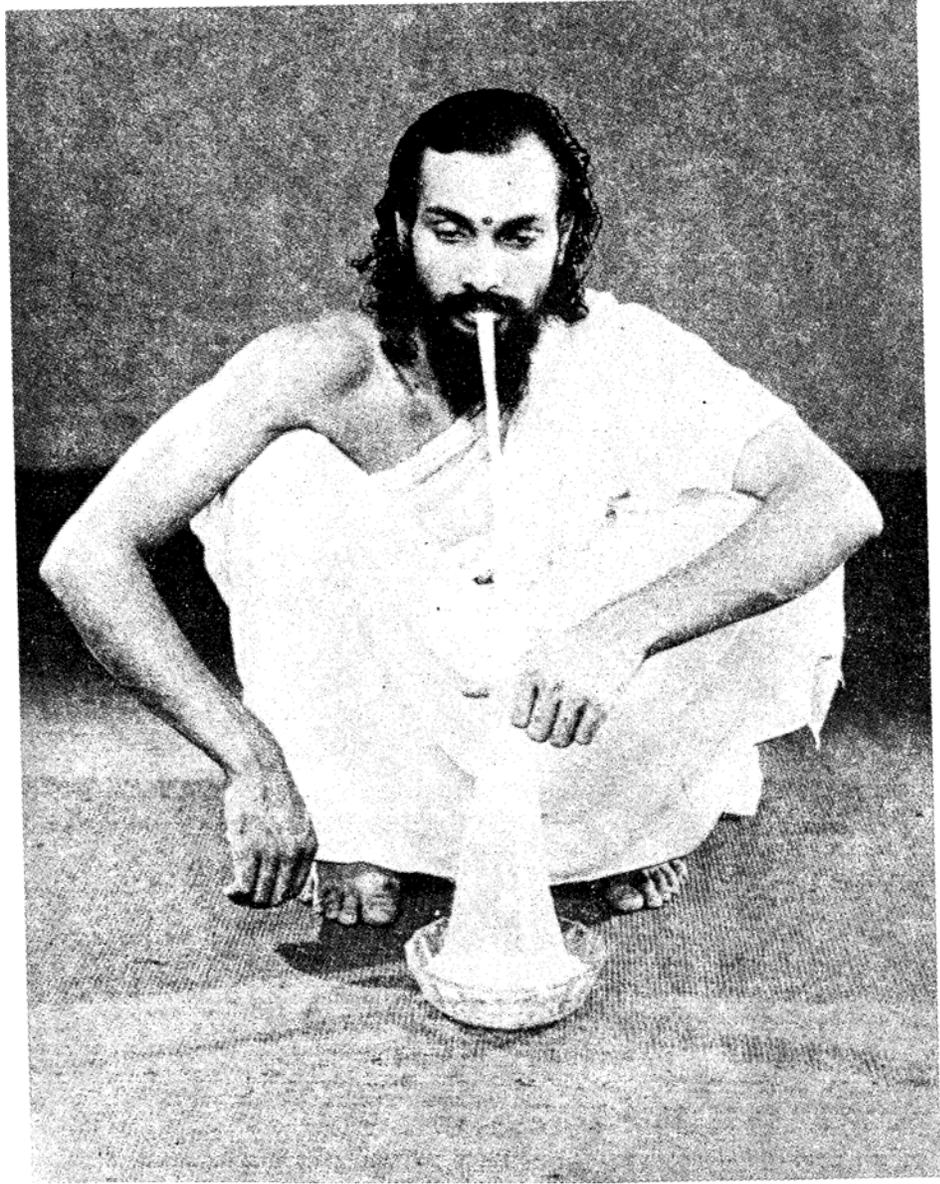
चित्र नं० ११७ षट्कर्म

वस्त्र धौति--इसमें कागासन में बैठें हुए धौति कर्म कर रहे हैं। सामने पात्र में चार अँगुल चौड़ी तथा २४ फुट लम्बी धौति मुख से खा रहे हैं।
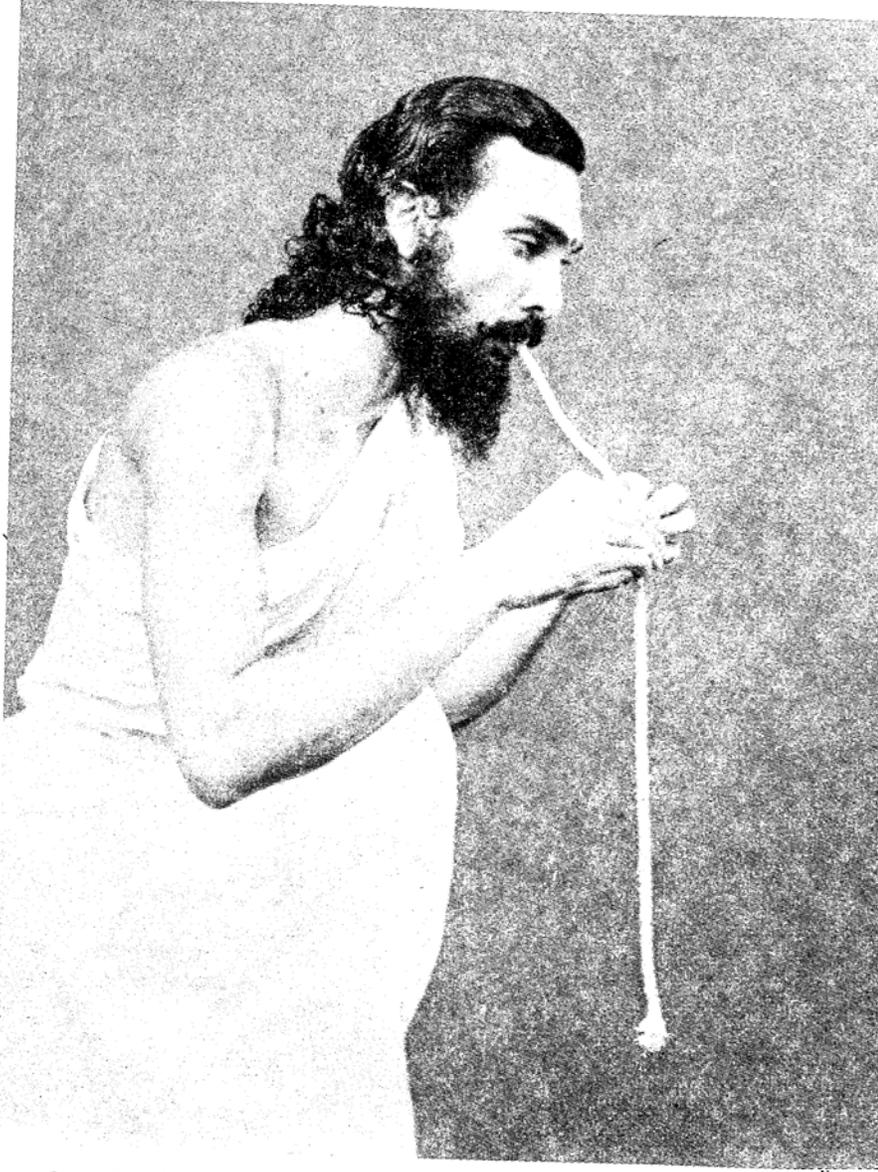
चित्र नं० ११८ षट्कर्म

दण्डधौति---इसमें सीधे खड़े होकर कमर से ऊपरी विभाग को किंचित झुकाकर दण्डधौति निगल रहे हैं।

स्थिति और क्रिया---कुंजल क्रिया के समान ही गरम जल यथासाध्य पी जाय, फिर कुंजल करने की स्थिति से कुछ ऊँचे खड़े होकर रस्सी भलीभाँति गरम पानी में भिगोकर मुख में कण्ठ के पास बगल से अन्दर डालने का प्रयत्न करें अथवा धीरे-धीरे निगलें, जैसे कि खाना खाया जाता है। चित्र नं० ११८ देखें। यदि बार-बार पानी निकले, तो निकलने दें। इस प्रकार अभ्यास करने से आप तीन बालिश्त तक रस्सी पेट में ले जा सकते हैं। इसका चार अँगुल का हिस्सा मुख के बाहर ही रखना चाहिए। तत्पश्चात् रस्सी को पकड़कर हिलाने से मुख से पानी काफी मात्रा में निकलेगा। पानी के साथ ही रस्सी को बाहर निकालें। ध्यान रहे कि बिना पानी के रस्सी पकड़कर न खींचें, अर्थात् जब पेट में पानी हो, तभी पूरी रस्सी खानी चाहिए।

लाभ---यह भी कुंजल तथा धौति के समान लाभदायक है। विशेषकर इसमें यह गुण है कि पित्त प्रकृतिवालों को या जिसे अधिक पित्त हो गया हो, उसे वस्त्रधौति की अपेक्षा दण्डधौति अधिक उपयोगी है।

नौलि

स्थिति---दोनों पाँवों के बीच एक फुट का अन्तर रखकर और दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखते हुए खड़े रहें।

क्रिया---अन्दर का श्वास बाहर निकालकर वाह्य कुम्भक की स्थिति में पेट को पूर्णतया पिचकायें। तत्पश्चात् हाथ पर बल देकर पेट को थोड़ा-सा ढीला करने के साथ ही वक्षःस्थल की तरफ कुछ खिंचाव देते हुए नल निकालने का प्रयत्न करें। चित्र नं० ११९ देखें। उसके बाद धीरे-धीरे श्वास बाहर छोड़ दें। इस प्रकार बार-बार करने से किसी समय आप-से-आप नल निकल आयेगा। लेकिन यह क्रिया करते समय पेट की ओर देखना चाहिए कि नल निकलता है या नहीं। यदि नल नहीं निकले, तो निराश न हों। दस-पन्द्रह मिनट रोज अभ्यास करने से यह अवश्य निकलने लगेगा। नौलि करनेवालों को विशेषतः दलिया और खिचड़ी खानी चाहिए।

वाम और दक्षिण नौलि

नल निकलने की स्थिति में बाएँ हाथ पर जोर देने से बाईं तरफ नौलि आ जायगी और दाएँ हाथ पर जोर देने से दक्षिण नौलि हो जायगी। इस प्रकार करने से नौलि को घुमाना या उसका चक्कर देना स्वयं आ जाता है। तत्पश्चात् इसको अति वेग

से साढ़े तीन चक्कर बाएँ और साढ़े तीन चक्कर दाएँ से बराबर घुमाना चाहिए। यह नौलि की पूरी क्रिया हुई। चित्र नं० १२० तथा १२१ देखें। लिखा भी है :—

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्षते ।।

अर्थात् अपने कन्धों को नीचा करके योगी बहुत तीव्र जल के भँवर के समान वेग से उदर को दाईं व बाईं ओर जोर से घुमावें। इस कर्म को सिद्धों ने नौलि कर्म कहा है।

लाभ योगशास्त्र में लिखा है :—

मन्दाग्निसंदीपनपाचनादि संधापिकानन्दकरी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः ।।

अर्थात् यह नौलि मन्द पड़ी हुई पेट की अग्नि को दीप्त करती है और भोजन किये गये अन्न को पचाती है। आदिपद से मल शुद्धि का होना ग्रहण किया गया है। हर समय आनन्द देती है और समस्त वात-पित्त-कफ के रोगों को सुखानेवाली है। इसलिए यह नौलि हठयोग की क्रियाओं में सबसे मुख्य है। धौति और वस्ति कर्म नौलि के बिना नहीं हो सकते। कुंजल और शंखप्रक्षालन आदि कर्म नौलि के बिना अधूरे रहते हैं। बज्रौली तो बिना भलीभाँति नौलि जाने ठीक हो ही नहीं सकती। इसके अभ्यास से कफ-वात-पित्त-जनित सर्व प्रकार के रोग दूर होते हैं।

वस्ति

साधन—किसी पहाड़ी प्रान्त की शुद्ध नदी, झरने या जलाशय में, शुद्ध जलवाले तालाब में अथवा किसी बड़े टब में शुद्ध ठण्डा जल रखकर वस्ति-कर्म करना चाहिए। बाँस की ६ अंगुल लम्बी एक नली लें, जिसके अन्दर एक छिद्र हो, जो हाथ की सबसे छोटी अँगुली (कनिष्ठिका) से बड़ा न हो। उसके ऊपर के पतले हिस्से को इस प्रकार पत्थर पर घिसें कि वह खुरदरा न रहे। तत्पश्चात् उसके ऊपर घी लगाकर रख लें और क्रिया करते समय कागासन में बैठकर मध्यमा अँगुली में घी लगाकर गणेश-क्रिया करें, अर्थात् गुदा के अन्दर मध्यमा अँगुली डालकर वहाँ का मल निकालकर पानी से बार-बार धोयें। इसे गणेश-क्रिया कहते हैं। तत्पश्चात् घी लगी हुई नली लेकर उसके पतले हिस्से को चार अंगुल गुदा के अन्दर धीरे-धीरे ले जायँ। गणेश-क्रिया करने पर गुदा के अन्दर नली प्रवेश करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

स्थिति——उत्कटासन में बैठकर दोनों कोहनियों को घुटने पर रखते हुए अँगुलियाँ एक दूसरे के पंजे में कसकर बाँध लें। चित्र नं० १२२ देखें। नाभि पर्यन्त जल में उत्कटासन से ही बैठे हुए नल निकालें। ऐसा करने से स्वतः ही पानी ऊपर चढ़ने लगेगा। जब तक नल निकाले रहेंगे, तब तक पानी ऊपर ही चढ़ता जायगा। नल छोड़ते ही नली से पानी बाहर आने लगेगा। इसलिए तुरन्त ही हाथ के अँगूठे से नली के मुख को बन्द कर देना चाहिए। तत्पश्चात् धीरे-धीरे नली को बाहर निकालें और उठ खड़े हों। नली को किसी शुद्ध स्थान में रखकर बार-बार नौलि को घुमावें। ऐसा करने से मल और पानी मिलकर मलाशय में एकत्र हो जायँगे। पुनः घुटने पर हाथ रखकर उसे बाहर छोड़ दें। ऐसा करने से पानी के साथ मल भी बाहर निकल जायगा।

इस क्रिया को कम-से-कम चार-पाँच बार करना चाहिए। पाँचवीं बार सफेद पानी ही आयेगा। पुनः मयूरासन से पानी, मल, वायु, सब को निकालने का प्रयत्न करें। चित्र नं० १२३ देखें। वस्ति के मध्य और अन्त में मयूरासन न करने से कुछ वायु तथा पानी का अंश अन्दर रहने की सम्भवना रहती है, जिससे लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है। अतः मयूरासन अवश्य करना चाहिए। लिखा भी है :——

नीर गुदा सों खैंचि करि, थाम्मै उदर मँझार।
कछुक डोल अस बैठ करि, फिर दे ताहि निकार॥
यहि जु बस्ती कर्म है, गुरु बिन पावै नाहिं।
लिङ्ग-गुदा के रोग जो गर्मी के नशि जाहिं॥

और भी कहा है :——

नाभिदघ्नजले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः।
आधाराकुञ्चनं कुर्य्यात्क्षालनं वस्तिकर्म तत्॥

लाभ——

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।
वस्तिकर्मप्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः॥
धात्विन्द्रियान्तःकरणप्रसादं दध्याच्च कान्तिदहनप्रदीप्तिम्।
अशेषदोषोपचयं निहन्यादभ्यस्यमानं जलवस्तिकर्म॥

इस क्रिया के करने से गुल्म, प्लीहा, यकृत, आँख के रोग, २५ प्रकार के प्रमेह, गर्मी, आतशक, सूजाक, मन्दाग्नि, कब्ज, बदहजमी, बवासीर, भगन्दर, मस्से, फोड़े, आँत की गर्मी, आँख आना, मलाशय तथा बड़ी आँत सम्बन्धी सारे विकार दूर होते हैं। चित्त में प्रसन्नता आती है। सिर-दर्द, दिमाग की कमजोरी, पागलपन, स्मरणशक्ति की कमी, बालों का पकना आदि दोष दूर होते हैं। चेहरे की कान्ति आकर्षक हो जाती है।

त्राटक

साधन---त्राटक-कर्म करने के कई विधान हैं और उनके अलग-अलग गुण भी हैं। योगशास्त्र में किसी वस्तु पर निश्चल दृष्टि स्थिर करने को ही त्राटक-कर्म कहा है। एक फुट लम्बे-चौड़े श्वेत कागज पर चवन्नी, अठन्नी या रुपये के बराबर काला या हरा गोल निशान बनायें। अथवा किसी ऊँची जगह पर, जहाँ हवा का वेग न हो, दृष्टि के बराबर ऊँचाई पर घृत का दीपक जलाकर रखें।

स्थिति---सिद्धासन अथवा पद्मासन में बैठकर अपने से डेढ़ गज की दूरी पर ठीक नेत्र के सामने दीवाल पर कुछ अँधेरे कमरे में निशानवाले कागज को सामने लगायें अथवा उपर्युक्त विधि से घृत-ज्योति को स्थापित करें। चित्र नं० १२४ देखें।

क्रिया---दोनों नेत्रों को पूर्ण खोलकर तब तक उस बिन्दु अथवा ज्योति पर देखें, जब तक आँखों में आँसू न आ जायँ। आँसू आने से पूर्व ही आँख मीच लें। इसी प्रकार इसे बार-बार सुखपूर्वक करने का अभ्यास करें। दस या पन्द्रह मिनट निश्चल दृष्टि रखने के पश्चात् आपको उस पर प्रकाश मालूम होगा और उसके चारों ओर भी छोटी-छोटी प्रकाश-किरणें मालूम होंगी। लेकिन साधक अपने लक्ष्य को छोड़कर केवल प्रकाश को देखने का प्रयत्न न करें। यदि साधक प्रकाश के लालच में बिन्दु के बगलवाले प्रकाश को देखेंगे, तो सारा प्रकाश लुप्त हो जायगा। पुनः क्षणभर भी बिन्दु पर दृष्टि केन्द्रित करने पर पहले की भाँति प्रकाश आ जायगा। इसकी सिद्धि का लक्षण यह है कि जिस दिशा में दृष्टि जमाकर बैठे हों, उस दिशा में प्रकाश ही प्रकाश दिखाई दे, कोई और वस्तु, बिन्दु अथवा दीप भी न दिखाई दे। इसकी पूरी सिद्धि तब ही समझनी चाहिए, जब सारा प्रकाश हृदय के मध्य ले आ सकें। यह विषय गुरुगम्य है, केवल पुस्तक के पढ़ने से ही समझ में नहीं आ सकता।
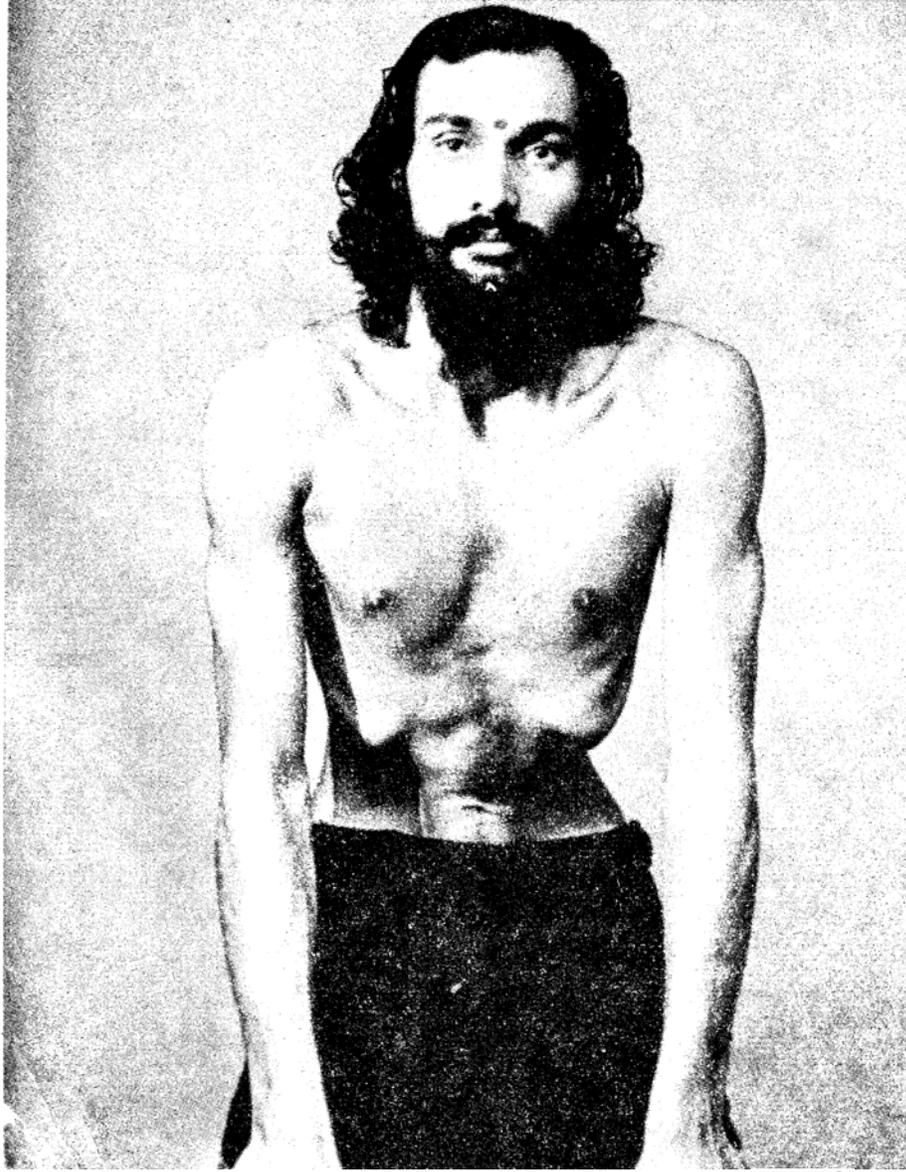
चित्र नं० ११९ षट्कर्म

मध्यनौलि—इसमें श्वास बाहर निकालकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर बीच का नल निकाले हुए हैं।
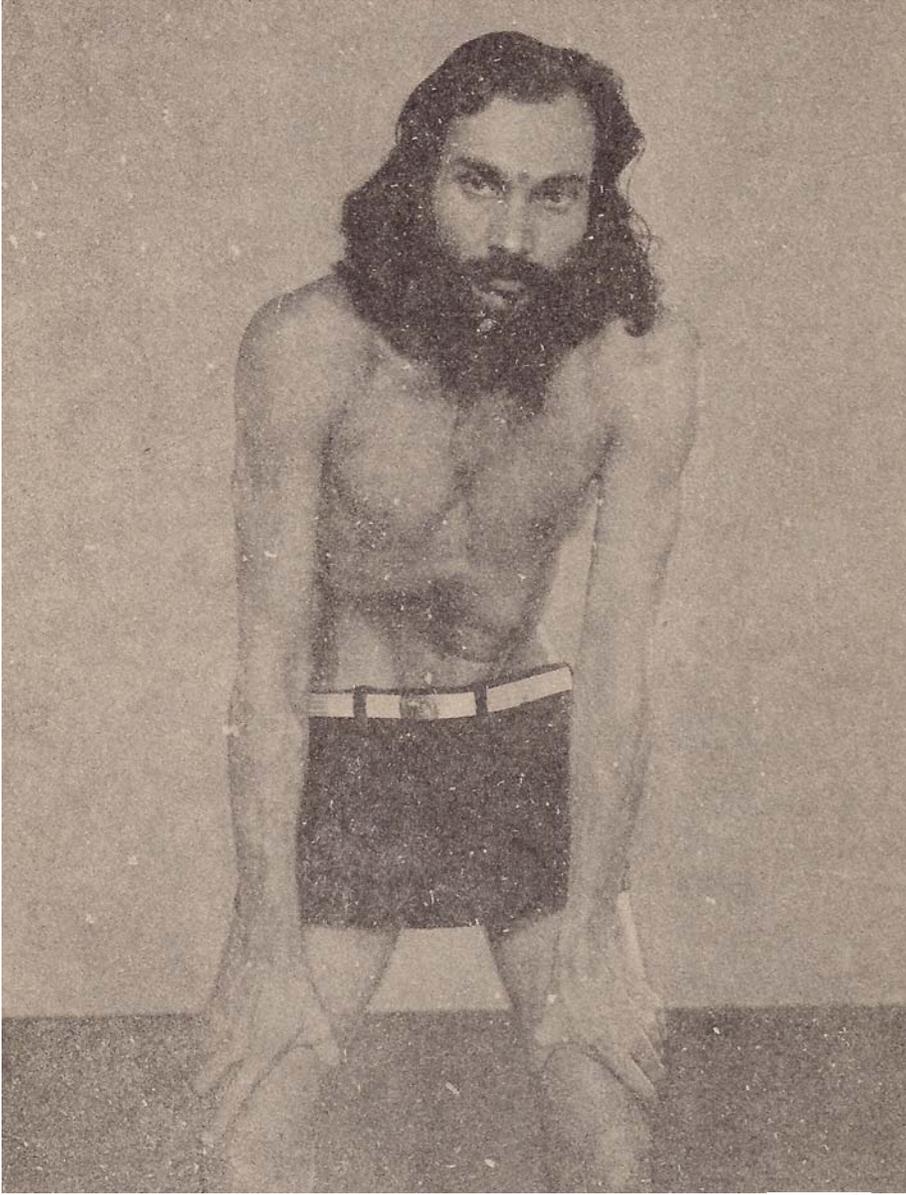
चित्र नं० १२० षट्कर्म

वामनौलि—पहले मध्यनौलि निकालकर बाएँ हाथ पर जोर देने से बाईं ओर नल निकल आया है।
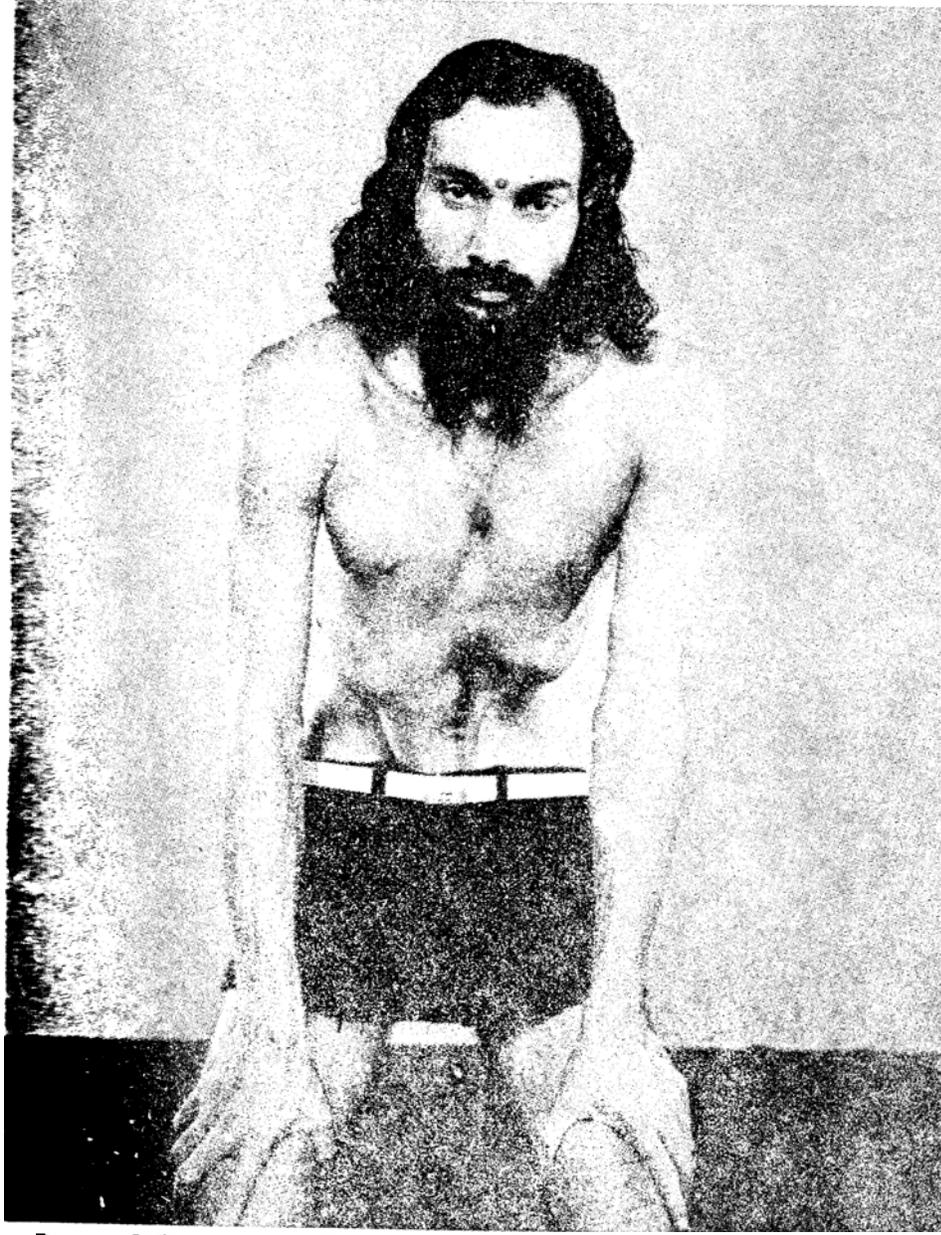
दक्षिणनौलि—पहले मध्यनौलि निकालकर दाहिने हाथ पर जोर देने से दाहिनी ओर नल निकल आया है ।
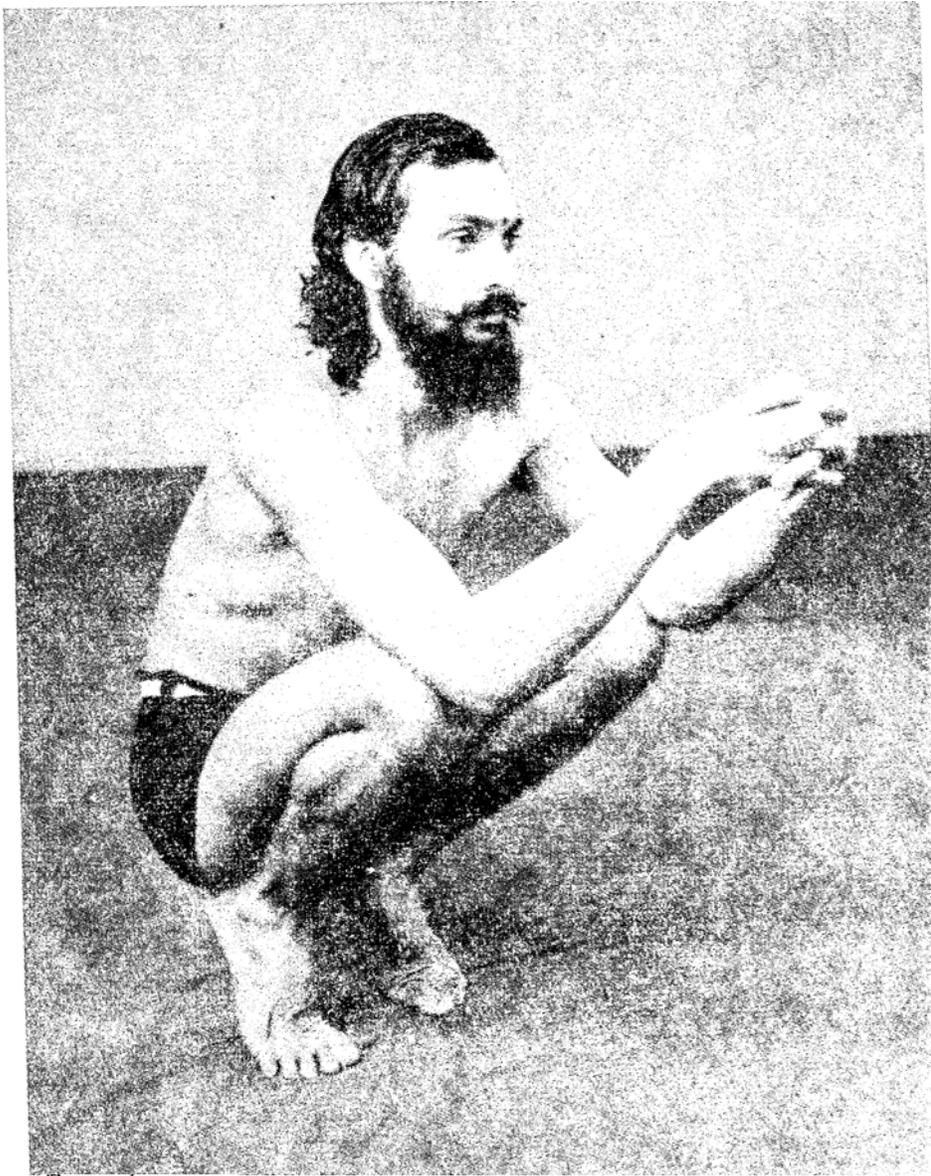
चित्र नं० १२२ षट्कर्म

वस्ति—उत्कटासन में बैठे हुए वस्ति करने की परिस्थिति में हैं।
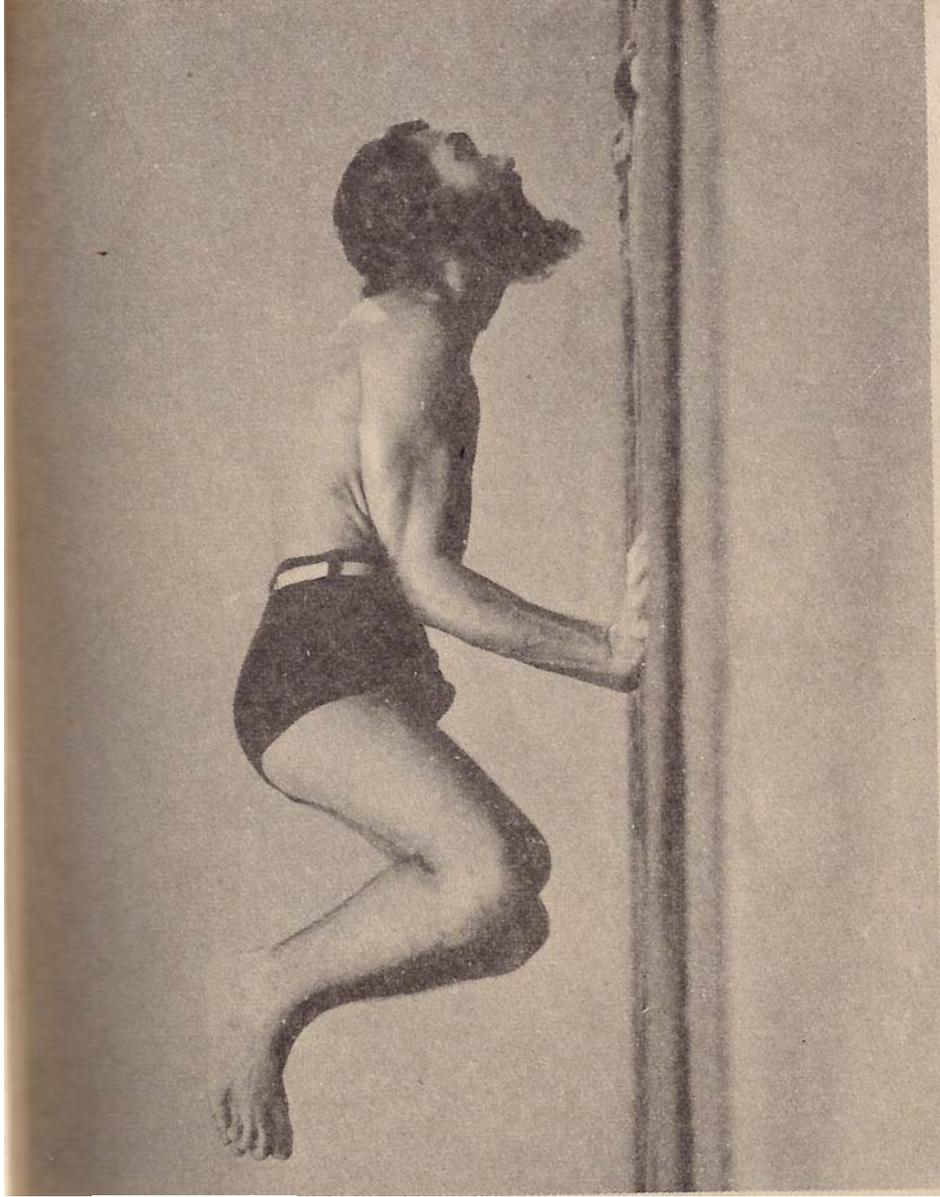
चित्र नं० १२३ षट्कर्म

वस्ति---वस्ति कर्म करने के पश्चात् मयूरासन कर रहे हैं। इसमें पैरों को पूर्णतया न फैलाकर इसी प्रकार रखा जाता है।
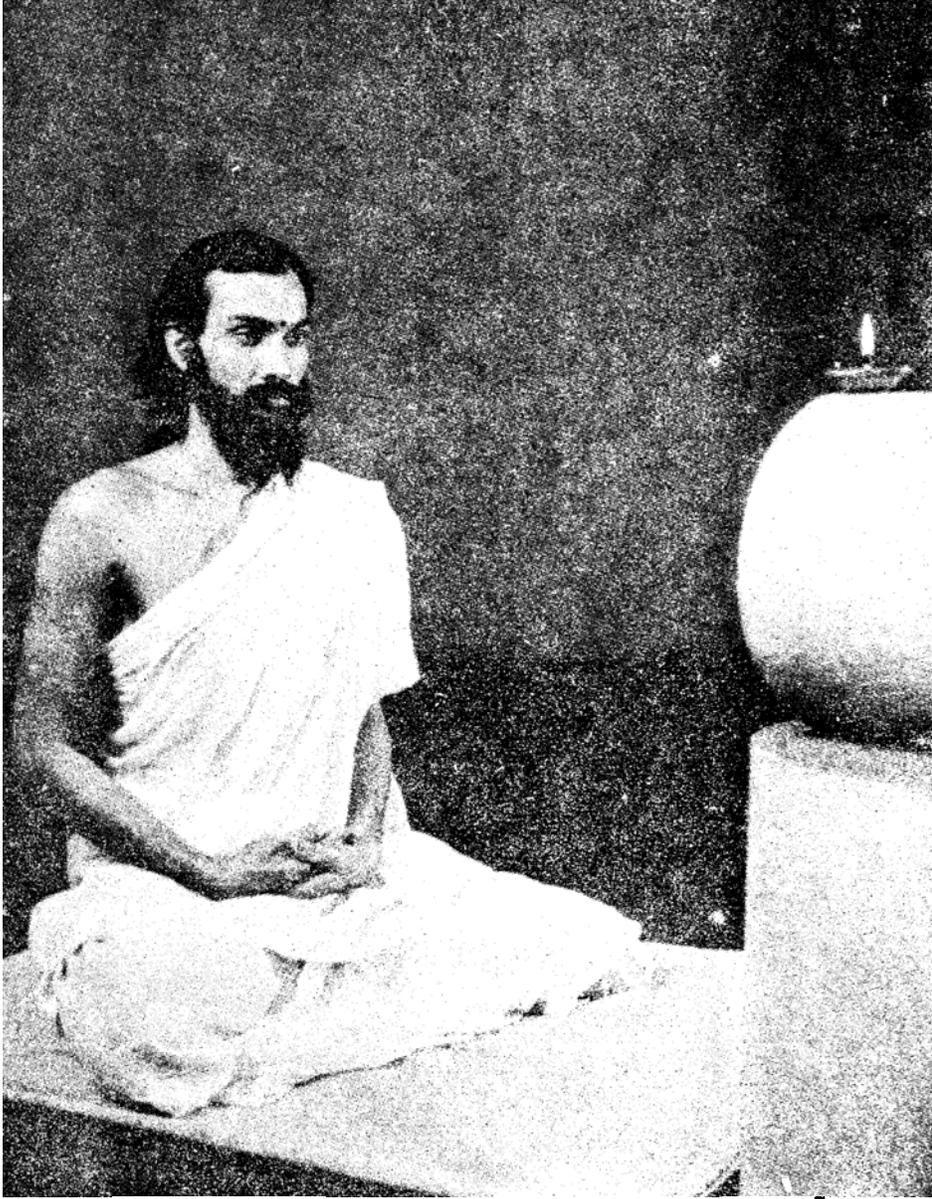
चित्र नं० १२४ षट्कर्म

त्राटक कर्म—त्राटक-क्रिया में लिखी हुई विधि के समान वात-रहित स्थान में दीप-ज्योति पर त्राटक कर रहे हैं।

त्राटक सिद्ध हो जाने की परिस्थिति को ही शाम्भवी मुद्रा कहते हैं। परम पुनीत उपनिषदों के योग-प्रकरण में इसके विषय में लिखा है :—

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसंपातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्॥

अर्थात्—साधक एकाग्र चित्त होकर निश्चल दृष्टि द्वारा सूक्ष्म लक्ष्य को तब तक देखे, जब तक आँखों में आँसू न आ जायँ। इसे मत्स्येन्द्र आदि आचार्यों ने त्राटक कर्म कहा है।

लाभ—इससे नेत्र के सारे रोग दूर होते हैं। आध्यात्मिक मार्ग में यह विशेष काम आता है। मन को एकाग्र करने के लिए यह अद्वितीय है। इसके विषय में कहा भी है :—

अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनो योगी सदा वर्तते।
दृष्ट्वानिश्चलतारया बहिरधः पश्यन्नपश्यन्नपि।
मुद्रेयं खलु शाम्भवी भवति सा लब्धा प्रसादाद्गुरोः।
शून्याशून्यविलक्षणं स्फूर्ति तत्तत्त्वं परं शाम्भवम्॥

अर्थात्—जब प्राण तथा चित्त त्राटक कर्म में बैठे हुए योगी के अन्दर ही विलीन हो जाते हैं और वे निश्चल तारिकावाली दृष्टि से किंचित् नीचे की ओर दृष्टि जमाये हुए भी कुछ नहीं देखते हैं, तो यही शाम्भवी मुद्रा की उत्तम स्थिति है। इस मुद्रा में शून्याशून्य से विलक्षण तत्पदवाच्य परमोत्तम शिवतत्त्व स्फुरित होता है। यह मुद्रा ईश्वरानुग्रह और गुरुकृपा से प्राप्त होती है। क्लेशों का मुद्रण (नाश) करनेवाली होने से इसे मुद्रा कहा है। कहा है कि जब योगी अनन्य बुद्धि रखता हुआ, निरन्तर आनन्द से अन्तर लक्ष्य को देखता हुआ, दृष्टि के उन्मेष और निमेष से रहित देखता हुआ हो, इस अवस्था को शाम्भवी मुद्रा कहते हैं। तत्त्व और तन्त्र-मन्त्र को जाननेवाले श्रीमहादेवजी ने इसे गुप्त रखा है। यह दुर्लभ मुद्रा योगियों के मन को लय करनेवाली और मुक्ति देनेवाली है।

भस्त्रिका

स्थिति—पद्मासन में बैठकर दाएँ हाथ की अनामिका और मध्यमा अँगुलियों से नासिका के बाएँ स्वर को और अँगूठा से दाहिने स्वर को बन्द करें।

क्रिया—अँगूठा हटाकर बाएँ स्वर को बन्द किये हुए ही दाएँ स्वर से यथासाध्य बलपूर्वक रेचक करें। फिर तुरन्त ही दाएँ स्वर से पूरक करके अँगूठे से दाहिने स्वर को दबाकर बाएँ स्वर से रेचक करें। पुनः बाएँ स्वर से ही पूरक करके दाएँ से पहले की भाँति रेचक करें। इस क्रिया को बार-बार इसी प्रकार करें। ध्यान रहे कि क्रिया करते समय पेट फूले तथा पिचके। आरम्भिक क्रम २५ बार। चित्र नं० १२५ देखें।

लाभ—इसके विषय में योगशास्त्र मे कहा है :—

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी॥

अर्थात—लोहार की धौंकनी के समान अधिक वेग से रेचक पूरक करने को कपाल-भाति कहते हैं। यह बीस प्रकार के कफ-दोषों को सुखानेवाली है। निदान-ग्रन्थ में कहा है—**"कफरोगाश्च विंशतिः।"**

जलनेति के पश्चात् यह क्रिया अवश्य करनी चाहिए, जिससे नासिका के भीतर का पानी सूख जाय।

षट्कर्मों के अन्तर्गत बहुत-सी गुप्त क्रियाएँ हैं, जिन्हें ऋषि-महर्षियों ने प्रायः गुप्त रखा है, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :—

गजकरणी अरु धौंकनी बाघी शंखपखाल।
चार कर्म ये और हैं इन्हीं छहों के नाल॥

इन क्रियाओं के विषय में ग्रन्थों में सूत्र रूप से वर्णन मिलता है। इनका विशेष विवरण, सुगम विधियाँ आदि गुरुगम्य हैं। मैंने इनको योग्य गुरु से सीखा है तथा इन्हें गुरु आज्ञानुसार ही जनता के हितार्थ आधुनिक सरल ढंग से प्रकाशित किया है। इन साधनों का शिक्षण लेकर हजारों आबाल-युवा-वृद्ध नर-नारी मात्र ने अपूर्व लाभ प्राप्त किया है। ये शारीरिक तथा आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से सर्वोपयोगी हैं।

बाघी

साधन—बाघी क्रिया करने के लिए कुंजल के समान ही इतना गरम पानी रखें कि तीन-चार बार कुंजल करने के लिए पर्याप्त हो।

स्थिति तथा क्रिया---भोजन करने के तीन घण्टे पश्चात् और चार घण्टे के अन्दर ही बाघी क्रिया की जाती है। कागासन में बैठकर इतना पानी पीयें कि पेट पूरा भर जाय। तत्पश्चात् खड़े होकर कमर के ऊपरी भाग को नीचे झुकाकर कुंजल की भाँति मुख में अँगुली डालकर सारा पानी तथा खाये हुए भोजन को निकाल दें। जब गाढ़ा अन्न अन्दर से निकलने लगे, तब पुनः दो-चार गिलास और पानी पीकर पेट को हिलायें और फिर उस पानी को उसी प्रकार बाहर निकालें। इस प्रकार तीन-चार बार करने से पेट का सारा अन्न बाहर निकल जाता है। जब साफ जल निकलने लगे, तो क्रिया बन्द कर दें।

क्रिया करने के पन्द्रह-बीस मिनट बाद एक पाव के लगभग खीर, जो न बहुत पतली हो और न गाढ़ी हो, अवश्य खानी चाहिए। न खाने से या देर करके खाने से उष्णता बढ़ जाती है और लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना रहती है। इसलिए पहले खीर का प्रबन्ध करने के बाद बाघी क्रिया करनी चाहिए। बाघी क्रिया करने के बाद आहार के प्रसंग में ध्यान रहे कि खीर के अतिरिक्त कुछ नहीं खाना चाहिए। खीर भी भर पेट नहीं, वरन् अपने भोजन का चौथाई भाग खाना चाहिए। खीर खाने के तीन घण्टे पश्चात् पहले के समान भोजन कर सकते हैं।

विशेष---ध्यान रहे कि बाघी क्रिया भोजन के तीन घण्टे पश्चात् और चार घण्टे के अन्दर ही करें। इससे अधिक समय देकर कदापि न करें। जिस रोज बाघी क्रिया करनी हो, उसके पहले खिचड़ी, दलिया आदि हल्का भोजन उत्तम रहता है। बाघी रोज नहीं करनी चाहिए। इसे एक दिन का अन्तर देकर कर सकते हैं।

लाभ---इस क्रिया का नाम बाघी इसलिए रखा गया है कि इसे अधिकतर बाघ किया करता है। बाघ अत्यधिक खून और मांस खाने के बाद वायु का रेचक करके सारा खाया हुआ बाहर निकाल देता है। इस क्रिया के करने से ही वह संसार के सारे जानवरों में अधिक शक्तिशाली है। इस क्रिया के अभ्यास से कमर पतली और सीना चौड़ा हो जाता है। शरीर के आन्तरिक और बाह्य बल में शेर के समान अत्यधिक वृद्धि होती है। शरीर में एक नई स्फूर्ति आती है। स्थूल शरीरवाले लोगों के लिए यह क्रिया परम उपयोगी है। वे थोड़े दिनों के अभ्यास से शरीर को स्वाभाविक स्थिति में सुगमता से ला सकते हैं।

खाने के तीन घण्टे के अन्दर अन्न का सारा रस नाड़ियाँ खींच लेती हैं। नीरस अन्न पचाने के लिए आँतों को बहुत श्रम करना पड़ता है। इस क्रिया से आँतों की व्यर्थ की मेहनत बच जाती है। शरीर को यथायोग्य शक्ति मिल जाती है। साथ ही साथ कफ, वात और पित्त के रोग दूर हो जाते हैं। इसमें सबसे अधिक यह गुण है कि चित्त में प्रसन्नता रहती है, क्योंकि अनावश्यक सब मल निकल जाता है। सारे शरीर पर अद्भुत कान्ति आ जाती है। भूख बहुत लगती है।

शंखप्रक्षालन—वारीसार

शंख में चक्राकार मार्ग होता है। उसके मुख में पानी डाल देने से चक्राकार मार्ग से घूमता हुआ जल जिस प्रकार बाहर आ जाता है, उसी प्रकार मुख से जल पीने पर निम्नलिखित क्रिया द्वारा जल कुछ समय पश्चात् मल को साथ लेकर अँतड़ियों को शुद्ध करता हुआ गुदाद्वार से बाहर आ जाता है।

साधन—कुंजल से कुछ अधिक गरम पानी में इतना नमक मिलायें, जितना दाल में मिलाते हैं, अर्थात् भलीभाँति पानी नमकीन हो जाये।

स्थिति—कागासन में बैठकर दो गिलास पानी पी लें।

क्रिया—पानी पीने के पश्चात् तुरन्त ही क्रमशः दाएँ-बाएँ से चार बार सर्पासन करें। चित्र नं० १२६ देखें। इसके बाद शीघ्र ही ऊर्ध्व हस्तोत्तानासन लगभग चार बार दाएँ से, चार बार बाएँ से करें। चित्र नं० १२७ देखें। इसके बाद शीघ्र कटिचक्रासन करें। चित्र नं० १२८ देखें। इसके बाद शीघ्र ही उदराकर्षासन क्रमशः चार बार दाएँ-बाएँ से करें। चित्र नं० १२९ देखें। एक गिलास पानी फिर पीयें और पहले की भाँति ही क्रमशः चारों आसन करें। किसी को दो, किसी को चार और किसी-किसी को छै अथवा आठ गिलास (४ सेर) जल पीने पर शौच की हाजत मालूम पड़ती है। थोड़ी-सी भी शंका होने पर शौच के लिए शीघ्र चले जायँ और शौच बैठने के समय भी चित्र नं० १२९ के समान ही आसन करें। ऐसा करने से पहले मल निकलेगा, फिर पतला मल निकलेगा और उसके पश्चात् पीला पानी निकलेगा। शौच से आकर फिर उसी प्रकार एक गिलास जल पीयें और चारों आसन बारी-बारी से करें। फिर शौच की हाजत होगी और इस बार केवल पानी ही निकलेगा। फिर पहले की भाँति पानी पीकर आसन करने के पश्चात्
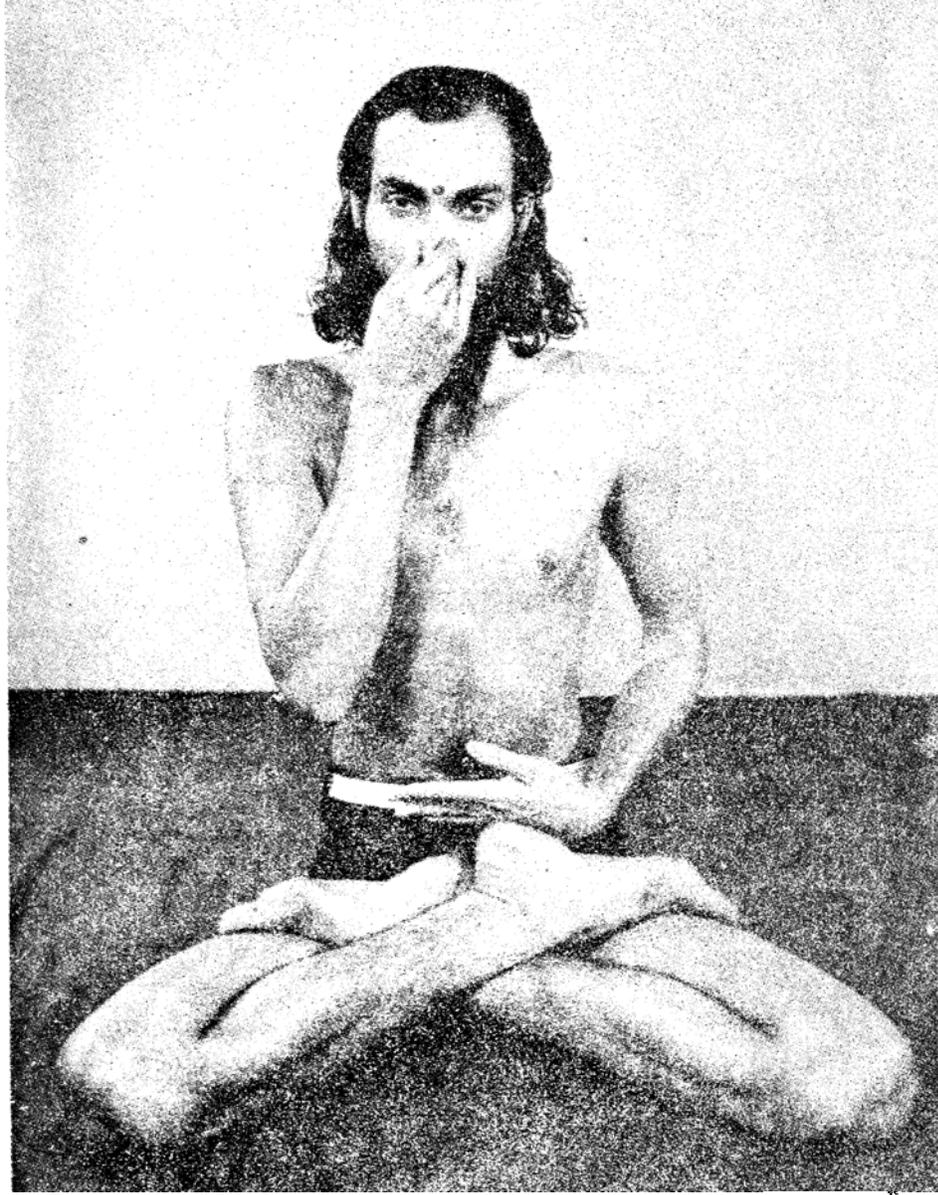
चित्र नं० १२५ षट्कर्म

कपालभाति (भस्त्रिका)—पद्मासन में स्थित होकर कपालभाति कर रहे हैं।
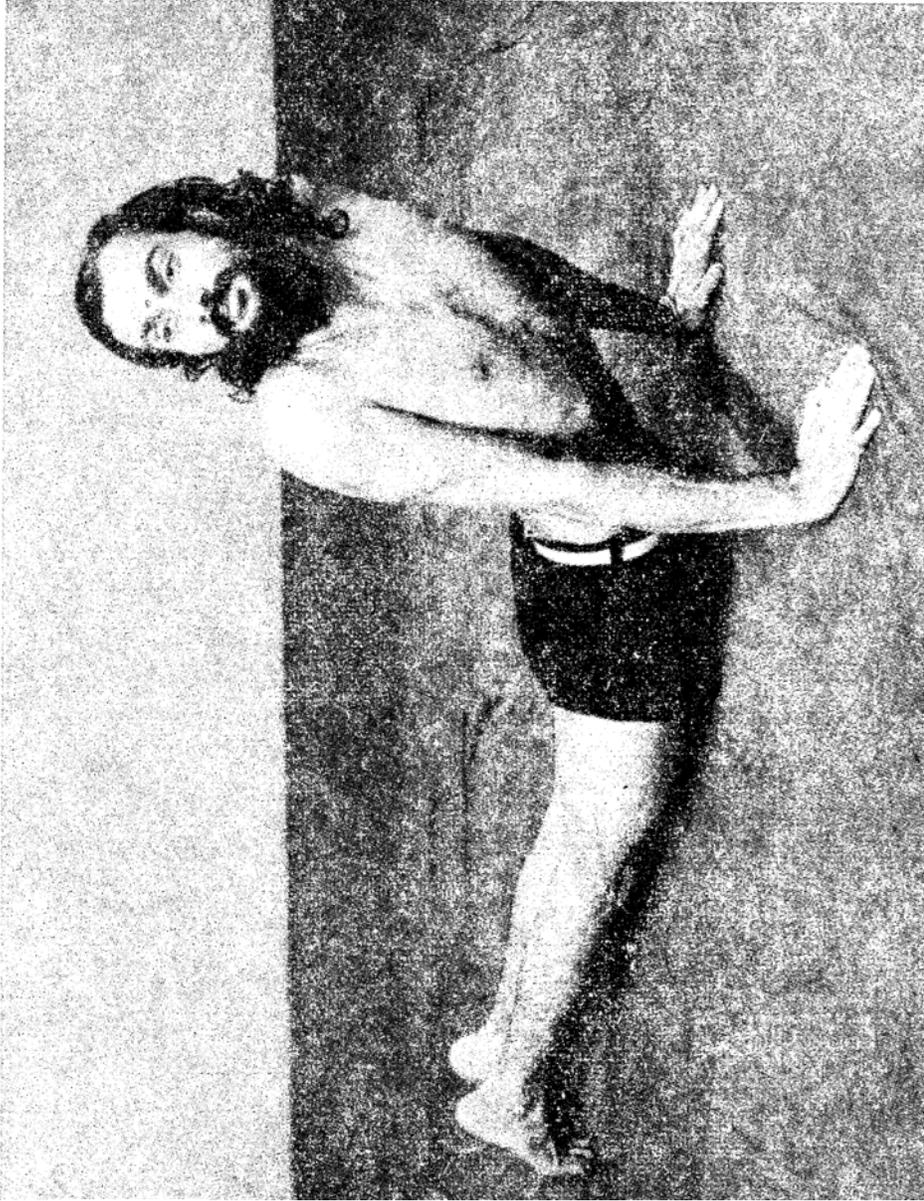
चित्र नं० १२६ षट्कर्म

शंखप्रक्षालन : सर्पासन (१)---दोनों पंजों को आपस में मिलाकर दोनों हथेलियों के बल कमर से ऊपरी विभाग को बायें-दायें बारी-बारी से मोड़ते हुए सर्पासन कर रहे हैं।
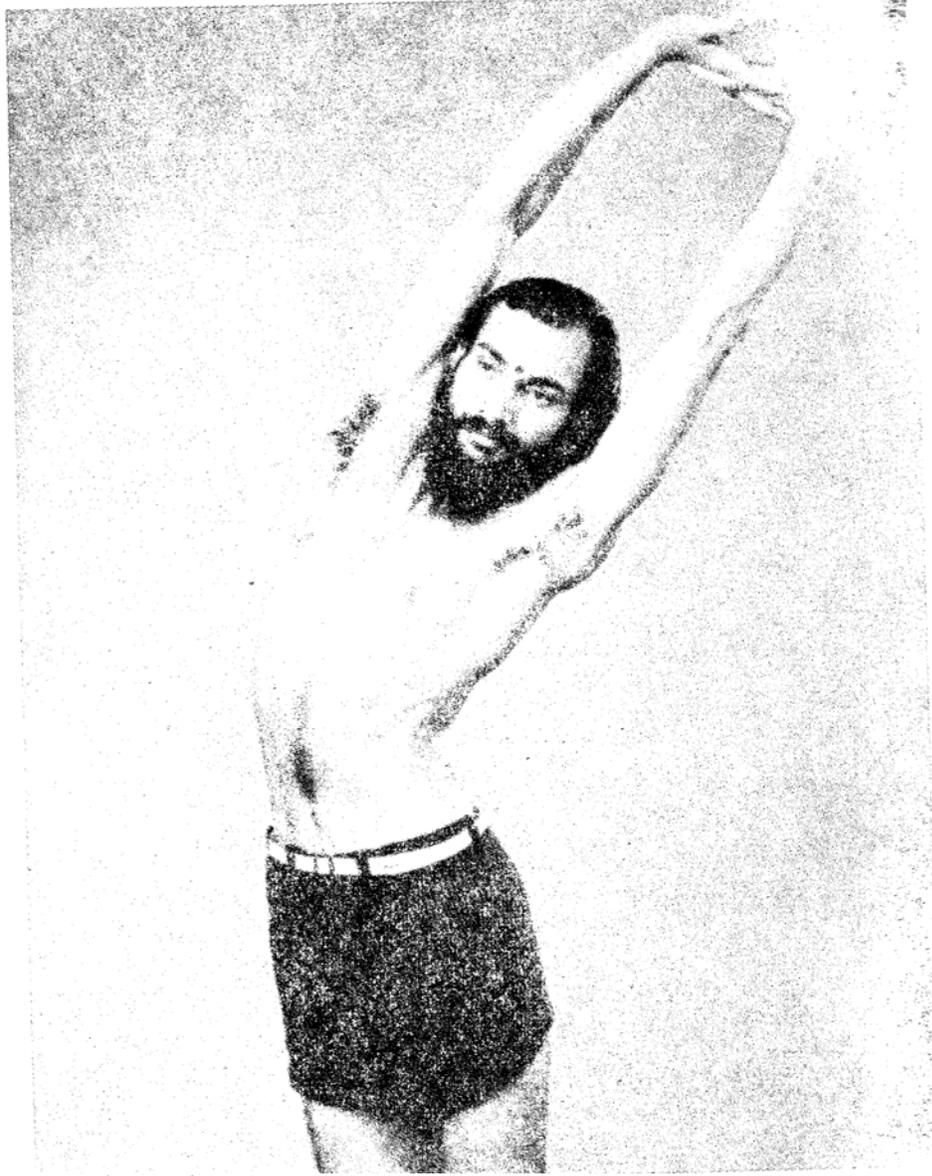
चित्र नं० १२७ षट्कर्म

शंखप्रक्षालन : ऊर्ध्व हस्तोत्तानासन (२)—इसमें कमर से ऊपरी विभाग को उत्तान देते हुए क्रमशः दाएँ-बाएँ मोड़ रहे हैं।
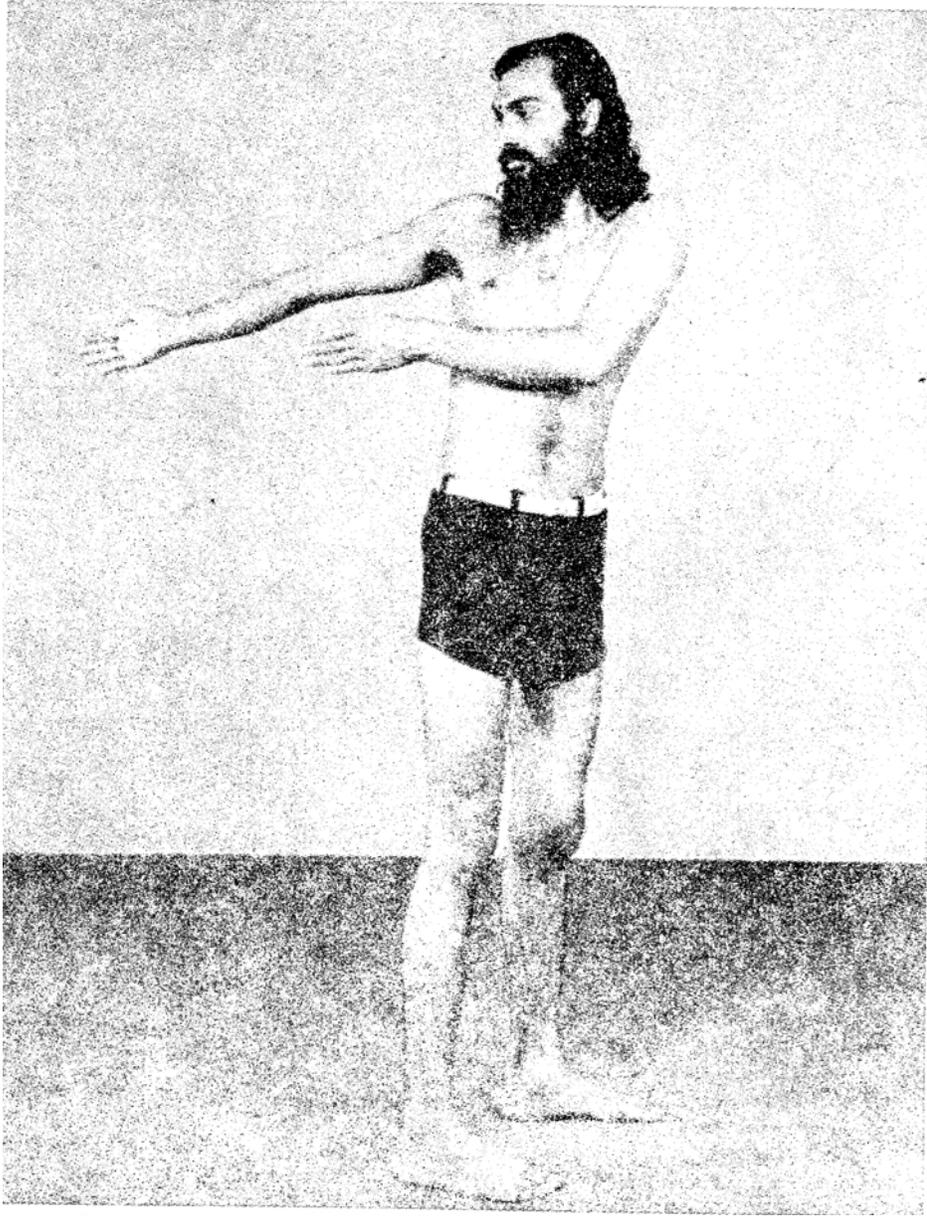
चित्र नं० १२८ षट्कर्म

शंखप्रक्षालन : कटिचक्रासन (३)—यौगिक सूक्ष्म व्यायाम की कमर की पाँचवीं क्रिया की भाँति बिना श्वास लिये-छोड़े, कमर से ऊपरी भाग को क्रमशः बाएँ-दाएँ मोड़ रहे हैं।

चित्र नं० १२६ षट्कर्म

शंखप्रक्षालन : उदराकर्षासन (४)—इसमें कागासन में बैठकर बाएँ पाँव के घुटने को मोड़कर दाएँ पाँव की पिंडली के पास लाते हुए पृथ्वी से कुछ ऊपर ही रखे हैं। साथ ही कमर से ऊपरी भाग को क्रमशः दाईं-बाईं ओर मोड़ रहे हैं।

सफेद पानी निकलेगा, अर्थात् जैसा पानी मुख से पी चुके हैं, वैसा ही गुदाद्वार से निकलेगा। जब तक सफेद पानी न आने लगे, तब तक बार-बार पानी पीकर बारी-बारी से चारों आसन करने चाहिए। सफेद पानी निकलने के पश्चात् बिना नमक का सादा गर्म पानी दो-तीन गिलास पीकर कुंजल कर डालें। कुंजल न करने से बहुत देर तक पानी निकलता ही रहेगा। अतः कुंजल करना अति आवश्यक है। इस क्रिया को करने के बाद ध्यान रहे कि ठण्डे पानी से स्नान करना सर्वथा मना है। गर्म पानी से बन्द कमरे में हवा से बचाव रखकर स्नान करें और स्नान के पश्चात् कपड़े पहन कर स्नान-घर से बाहर निकलें, ताकि शरीर में ठण्डी हवा न लगे। अथवा स्नान न करें। शंखप्रक्षालन के बाद एक घण्टे के अन्दर ही भोजन कर लें। भोजन भी इसके विधान से ही करना चाहिए। लालमिर्च, खटाई से रहित चावल और मूंग की खिचड़ी अथवा गेहूँ या जौ का दलिया खायें। खाते समय अधिक-से-अधिक एक छटाँक और कम-से-कम आधी छटाँक शुद्ध गौ का घी डालें। खिचड़ी और दलिया बनाते समय अधिक घी नहीं डालना चाहिए। खिचड़ी खाते समय पानी पीना मना है। भोजन के एक घण्टे के बाद पानी पी सकते हैं। यदि किसी प्रकार प्यास से न रहा जाय, तो भोजन के कुछ देर बाद थोड़ा पानी पी सकते हैं। खिचड़ी खाने के चार घण्टे बाद मुलायम फल वगैरह खा सकते हैं। रात्रि में जो भोजन करते हों, कर सकते हैं।

विशेष––ध्यान रहे कि शंखप्रक्षालन करने के बाद अधिक देर भूखा कभी भी न रहें। भूखा रहने पर बहुत हानि होती है। शंखप्रक्षालन के पश्चात् एक घण्टे के अन्दर ही भोजन कर लेना चाहिए। जिस दिन शंखप्रक्षालन करें, उसके बाद २४ घण्टे तक दही-दूध खाना मना है। इन क्रियाओं में कभी भी मनमानी नहीं करनी चाहिए, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि होती है।

लाभ––इसके विषय में योगशास्त्र में लिखा है :––

वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारकम्।
साधयेत्तं प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते॥

इस श्लोक में शंखप्रक्षालन को वारिसार कहा गया है। इससे देह निर्मल होती है। विधिपूर्वक साधन करने से देवदेह की प्राप्ति होती है। इसके अभ्यास से सिर-रोग, नेत्ररोग, कर्णरोग, नासिका के दोष, पायरिया आदि मुखरोग, टान्सिल, हृदय के रोग, पेट और गुदा के समस्त रोग दूर होते हैं। संक्षेप में मुख से अन्नाशय तक की

नाड़ियाँ, पक्वाशय, मलाशय तथा गुदा पर्यन्त नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं। इस क्रिया के अभ्यास से 'एपेनडिसाइटिज', आँतों के घाव, सूजन आदि दूर हो जाते हैं। औरतों के गर्भाशय जनित सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं, जैसे लिकोरिया, डिसमिनोरिया, मासिक समय पर न होना तथा स्वाभाविक रंग का न आना आदि रोग दूर होते हैं। बाँझपन को दूर करने के लिये भी यह परम उपयोगी है। इससे २५ प्रकार के प्रमेह, आतशक, सूजाक आदि समस्त रोग दूर होते हैं। इस क्रिया के इतने अद्भुत गुण हैं कि सारे गुणों का वर्णन करने पर एक मोटी पुस्तक बन जायगी। यह क्रिया स्वस्थ पुरुषों तथा स्त्रियों को पन्द्रह दिन में एक बार करनी चाहिए। एसा करने से शरीर पूर्ण नीरोग रहता है तथा शरीर की कान्ति बनी रहती है।

वास्तव में मेरा स्वरूप देह से विलक्षण, अत्यन्त सूक्ष्म, इन्द्रियातीत, अनुभवगम्य है। यह देह विश्वहितकारी सेवा करने का एक यन्त्र है। विश्वनिर्माता तथा इस शरीर के सहित सम्पूर्ण विश्व ही हमारा ऐश्वर्य है। हम कभी भी दरिद्र नहीं हैं।

विश्वनिर्माता से उद्भासित होने के कारण समस्त विश्व ही हमारा वृहद् भवन तथा लोकान्तर, देशान्तर, द्वीपान्तर आदि भुवनान्तर कमरों की भाँति हैं। सभी चराचर निवासी हमारे सगे सम्बन्धी हैं। सभी देश अपने देश हैं। हम अपने जीवन को किसी प्रकार सीमित एवं विरोधी पक्षपात में न रखकर, विशाल विश्वसुखकारी कर्त्तव्यों के साँचे में ढालेंगे, ढालेंगे।

अपने मन, वाणी और इन्द्रियों को निर्विकार बनाना है। सद्विचार वृद्धि के लिये अन्य प्राणियों के विचारों से विमर्श करना है। किसी के द्वारा अपमानित होने पर उसका अपमान न करेंगे या क्रुद्ध न होकर सदा विपक्षी का सम्मान ही करेंगे।

कैसा ही दु:खी व्यक्ति क्यों न हो, निज शरीर की भाँति घृणारहित होकर उसकी सेवा में तत्पर रहेंगे।

हमारी भावना में यह कभी भी न आये कि हम से कोई आगे न बढ़े, बल्कि यही भावना रहे कि हमारे द्वारा सब बढ़ते रहें और हम सबको बढ़ा देखकर अपने कर्त्तव्य की सफलता एवं अपने को कृतार्थ समझें।

उत्तम दर्जा उनका है, जो इन्द्रियों को विषयों से उपराम रखकर, निर्विकारी बनते हुए जगत की सेवा में सब प्रकार से तल्लीन हैं।

दूसरा नम्बर उनका है, जो सामयिक गृहस्थोचित आचरणों में तत्पर होते हुए अखिन्न चित्त से पूर्ण उदारतापूर्वक सब प्रकार से जगत-सेवा में तल्लीन हैं।

हमारा हृदय कैसा हो? मातृ-हृदय की नाईं हमारा हृदय विश्व के प्रति हो।

हम लोगों की वाणी को बिना विचार किये हुए कहने का जो अभ्यास पड़ गया है, उसको पूर्णतया त्यागकर सुमधुर, हितकारी, यथार्थ तथा चित्ताकर्षक अनुद्वेगकर शब्दों का संकलन करके हम बोलने का अभ्यास करेंगे। हमारी सारी परिचर्याएँ उपर्युक्त भावनाओं से परिपूर्ण हों।

भाव-शुद्धि

वृत्ति होवे ब्रह्माकार, हृदय होवे निर्विकार।
मन में होवे सद्विचार, इन्द्रिय से हितकर व्यवहार।
जीवन के फल हैं यह चार, कार्त्तिकेय इनसे कर प्यार।।
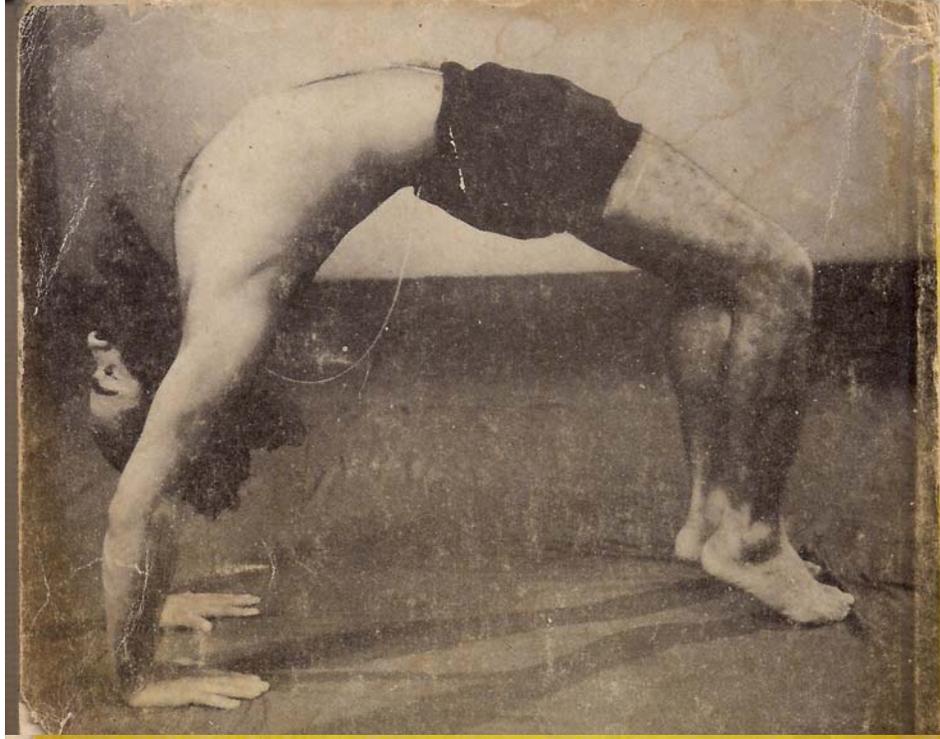
हमारे प्रकाशन

1. यौगिक सूक्ष्म व्यायाम ··········· (हिन्दी)
2. यौगिक सूक्ष्म व्यायाम ··········· (इंगलिश)
3. योगासन विज्ञान ·············· (हिन्दी)
4. योगासन विज्ञान ·············· (इंगलिश)
5. मुद्रा और प्राणायाम ··········· (हिन्दी) यन्त्रस्थ
6. मुद्रा और प्राणायाम ··········· (इंगलिश) यन्त्रस्थ
7. यौगिक सूक्ष्म व्यायाम चार्ट ······ (हिन्दी)
8. यौगिक सूक्ष्म व्यायाम चार्ट ······ (इंगलिश)
9. योगासन चार्ट ················ (हिन्दी)
10. योगासन चार्ट ················ (इंगलिश)